प्रायश्चित्त

द्वितीय भाग

नवसर्जन-ग्रन्थावली
पानकोरनाका
अहमदाबाद

: सम्पादक :

श्री इन्द्र वसावड़ा

श्री कान्तिलाल शाह

योजना

क्रान्तिकारी-विचार फैलानेवाला, कम-से-कम बारह सौ पृष्ठों का उपयोगी-साहित्य, ग्राहकों को घर बैठे, निम्नलिखित चन्दे पर भेजा जाता है।

	देश में	ब्रह्मदेश में	विदेश में
अजिल्द	४)	४॥)	आठ शिलिंग
सजिल्द	५)	५॥)	दस शिलिंग

प्रायश्चि-त

द्वितीय भाग

लेखक

श्री 'सोपान'

भारती-साहित्य-संघ

पानकोरनाका

प्रथम वर्ष] अहमदाबाद्

—हमारी शाखाएँ—

प्रिन्सेस स्ट्रीट	बालाजी रोड	डेन्सो हॉल	सौराष्ट्र रोड
बंबई	**सूरत**	**कराँची**	**राणपुर**

सजिल्द का फुटकर मूल्य
दो रुपये

प्रथमावृत्ति दिसम्बर १९३८
२२०० प्रतियाँ

: प्रकाशक :
लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम गांधी
भारती-साहित्य-संघ
पानकोरनाका
अहमदाबाद

: मुद्रक :
मनुभाई अमृतलाल शेठ
स्वाधीन-मुद्रणालय
सौराष्ट्र रोड
राणपुर

शताब्दियों पुराने पाप को धोने के लिये, जो
निःस्वार्थ-भाव से अपना रक्त तथा
पसीना बहा रहे हैं, उन हरि-
जनसेवकों को यह कथा
विनम्र-भाव से अर्पण
करता हूँ।

—'सोपान'

प्रथम भाग की प्रस्तावना

मै सन् १६३४ में जेल में था, तभी यह पुस्तक लिखनी शुरू कर दी थी। लगभग ढाईसौ पेज लिख डाले थे। किन्तु, इसी समय अचानक ही जेल से छुट्टी मिल गई। जेल के अधिकारियों ने, वह लिखा हुआ सारा मेटर, जाँचने के लिये रख लिया। उसके बाद, कई बार पता लगाया, लेकिन वह जॉच समाप्त हुई हो, ऐसा नहीं जान पड़ा। अन्त में, मैंने नये-सिरे से लिखना प्रारम्भ किया। प्रारम्भ ही में यह बात मालूम थी, कि इस पुस्तक के तीन-तीनसौ पृष्ठ के दो भाग होंगे। एक ही भाग में कथा समाप्त हो जाय, ऐसी इच्छा तो थी, किन्तु वैसा होना असम्भव जान पड़ा।

इस कथा की **सविता**, केवल मेरी कल्पना की ही उपज नहीं है। पाठकों को शायद वह वैसी जान पड़े। सच्ची-सविता, आज इस दुनिया में नहीं है। मैंने, उसका जैसा चित्रण इस कथा में किया है, वैसी ही वह थी भी नहीं। किन्तु, योगायोग से एक अन्त्यज के यहाँ जन्म पाकर भी, एक सुखी सवर्ण-परिवार में उसका लालन-पालन हुआ था। सोलह वर्ष की अवस्था होने तक, वह सवर्ण ही थी-प्रतिष्ठित थी। एक दिन वह पहचान ली गई और क्षणभर में ही उसे अस्पृश्य बन जाना पड़ा। इसके बाद, वह, जीवित न रह सकी। इसी सत्य-घटना के आधार पर, मैंने अपनी कल्पना की इमारत खड़ी की है। पाठकों को यह कथा कितनी रुचिकर होगी, यह बात मैं कैसे बतला सकता हूँ? हाँ, इतना मैं अवश्य ही जानता हूँ, कि इसके छपे हुए पेजों ने बहुतों को रुलाया है। जिनका वाक्यों के साथ कम सम्बन्ध होता है और केवल अक्षरों से ही पहचान होती है, वे कम्पोजीटर भी, सविता की कथा कम्पोज करते समय आर्द्र हो उठे हैं। स्वतः मेरी दशा भी इस कथा को लिखते समय ऐसी ही हुई है।

कभी-कभी, मेरे मन में यह प्रश्न उत्पन्न होता है, कि यह कथा आखिर मैंने क्यों लिखी? सम्भव है, पाठकों के मन में भी यह प्रश्न उत्पन्न हो। किन्तु, यदि पूज्य बापूजी ने आँखें न दी होतीं, तो मैं शायद न तो इस दृष्टिकोण से देख ही पाता और न लिख ही पाता। यानी, इसके लिखने का उद्देश्य तो अस्पृश्यतानिवारण के महाकार्य में नम्र-भाव से किंचित् सहायता देना मात्र ही है। किन्तु, ऐसा लिखते समय, मुझे अपार-संकोच होता है। कारण, कि जो प्रश्न, संसार के बड़े-से-बड़े मनुष्य को यज्ञ की बलिवेदी पर चढ़ जाने की प्रेरणा कर सकता है, जिसकी प्रेरणा से धर्मशुद्धि का महान्-यज्ञ प्रारम्भ हो सकता है, उस प्रश्न के सन्मुख, स्याही से लिखी हुई इस पुस्तक की क्या कीमत है? किन्तु, इसके लिखते समय, मेरे हृदय में जो-जो मनोभाव उत्पन्न हुए हैं, वे ही मनोभाव पाठकों के हृदय में उत्पन्न कर देने की

सामर्थ्य यदि इस पुस्तक में होगी, तो इसका प्रकाशन व्यर्थ कदापि नहीं जा सकता।

इस पुस्तक को लिखते समय, मुझे यह भी जान पड़ा, कि मेरी क़लम में इतनी ताकत नहीं है और न मेरी कल्पना में ही ऐसी शक्ति है, कि मै अपनी पुस्तक में उस भयंकर-स्थिति का ठीक-ठीक चित्रण कर सकूँ; जितनी वह वास्तविक-जगत् में भयानक एवं करुणोत्पादक है। उस चित्र का सम्पूर्ण-चित्रण करने के लिये तो, किसी प्रवीण-चित्रकार की क़लम चाहिये। अधिक विचार करने पर, यह प्रश्न मेरे मन में पैदा हुआ, कि आख़िर बड़े-बड़े तथा समर्थ-लेखक, इस दिशा में अपना ध्यान क्यों नहीं देते? हमारे इस अभागे देश में, साठ लाख के लगभग साधु-सन्यासी हैं और वह संस्था है भी हज़ारों वर्ष पुरानी। उस संस्था की बातें भी कहनी ही पड़ेगी! जेल की कहानियाँ तो लिखी जाने लगी हैं। वेश्याजीवन पर भी लोगों की दृष्टि पड़ी है। फिर भी, अभी तक, जहाँ देश की अधिकांश जनता बसती है, भील हैं, सासी हैं, साधु-फकीर हैं, अनेक ख़ानाबदोश जातियाँ हैं, चोरी का ही व्यवसाय करनेवाली, बात-बात में ख़ून कर डालनेवाली, मनुष्यता की छाया से दूर रहनेवाली जो अनेक जातियाँ इस देश में मौजूद हैं, उनके पास आगे-पीछे जाना तो पड़ेगा ही। उनलोगों में भी स्नेह होगा, अभिलाषाएँ होंगी, विकार एवं वासनाएँ होंगी, तथा धर्म और समाज भी होगा। उन सब पर कौन दृष्टि फेंकता है?

यह पुस्तक, वास्तव में गुजराती भाषा में लिखी तथा प्रकाशित की गई थी। इस समय इसका हिन्दी-संस्करण प्रकाशित हो रहा है, यह श्री. भजामिशंकर दीक्षित के प्रयत्न का परिणाम है। इसके लिये, उनका आभार मानने के अतिरिक्त, और क्या कह सकता हूँ? यह कथा, हिन्दी पाठकों को भी प्रेरणा देगी, इसी विश्वास से, मैंने इसे

हिन्दी-साहित्य-जगत् के सन्मुख प्रस्तुत करने का साहस किया है। मैं आशा करता हूँ, कि जनता तथा समालोचक महानुभाव, इसका उचित मूल्यांकन करने की कृपा करेंगे।

इस कथा का प्रथम भाग मुझे कथा की शुरुआत-सा ही प्रतीत होता है। मेरी तो यह इच्छा है, कि पाठकगण दोनों भाग पढ़ें। किन्तु, मै भली-भाँति जानता हूँ, कि मेरी इच्छा दूसरों के लिये प्रतिबन्ध नहीं हो सकती।

अन्त में, स्वर्गीया वास्तविक-सविता का स्मरण करके, मै अपना निवेदन समाप्त करता हूँ।

१ मई १९३८ ई०

—'सोपान'

निवेदन

इस पुस्तक के साथ 'नवसर्जन-ग्रन्थावली' अपना प्रथम वर्ष पूर्ण करता है। इस एक वर्ष में हमें हिन्दी प्रकाशन करते हुए क्या क्या अनुभव हुए, यह सम्पूर्ण कथा लिखने बैठें तो एक छोटी-मोटी पुस्तक तैयार हो सकती है। इस ग्रन्थावली के शुरू करने के समय हमने अपनी आँखों के सामने जिन-जिन मुश्किलियों की कल्पना की थी, उनसे ज्यादा तो जिनकी कल्पना भी नहीं की थी ऐसी नई मुश्किलियों ने हमको परेशान कर डाला। इस कारण हमारे मित्र-मंडल में अनेक बार यह विचार आगया कि हिन्दी-माला को अब हमेशा के लिये बंद कर दें। परन्तु हमको जो कटु अनुभव हुए हैं, उनके मीठे फल चाखने की आशा हम छोड़ नहीं बैठे हैं, इसलिये 'नवसर्जन-ग्रन्थावली' के बंद करने के विचार दूर किये हैं।

इस वर्ष हमारी अनभिज्ञता और अनुभव-हीनता के कारण जो जो भूलें हमसे हुई, उनकी पुनरावृत्ति हम नहीं करना चाहते। इस वर्ष के अनुभव से हम इतना सीखे हैं कि जो इस ग्रन्थावली को समृद्ध बनानी हो तो किसी हिन्दी-भाषा-भाषी साहित्यकार संपादक की प्रथम आवश्यकता है। इसी तरह इस ग्रन्थावली का छाप-काम और मुख्य कार्यालय, अहमदाबाद के हमारे गुजराती वातावरण में नहीं, अपितु युक्तप्रान्त अथवा कलकत्ता जैसे स्थानों में रखना आवश्यक है। तीसरी वस्तु, यह भी आवश्यक है कि इस ग्रन्थावली में कम से कम आधी पुस्तकें तो हिन्दी साहित्यकारों की ही देनी चाहिये।

इस निवेदन के लिखने के समय तक इन तीनों वस्तुओं को हम प्राप्त नहीं कर सके हैं; नहीं तो इस विषय की विस्तृत जाहिरात हम इसी में रख सकते। अभी तो इसकी तैयारी के लिये हमको समय चाहिये। हमारे पास अभी सब वस्तुएँ तैयार होतीं तो हमारे चालू ग्राहकों के पास से वार्षिक चन्दा लेने की तथा उनको सम्पूर्ण जानकारी कराना हमको सरल पड़ता, परन्तु तैयारी हो नहीं सकी है, इसलिये हम इस निवेदन द्वारा तमाम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि तैयारी होते ही एक परिपत्र द्वारा हम सब समाचार पहुँचावेंगे।

इस वर्ष हमको जिन अपरिचित मनुष्यों का और जिन हिन्दी सज्जनों का साथ मिला है, उन सबको हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं। हमारे मित्र संपादक श्री इन्द्र वसावड़ा ने भी सारे वर्ष दरमियान अपने व्यवसाय में से समय निकालकर हमारे लिये कष्ट सहन किया है, इसलिये हम उनके भी कृतज्ञ हैं।

हम परिपत्र द्वारा जो समाचार पहुँचाना चाहते हैं, वह सब प्रकार से पूर्ण होगा। इस परिपत्र में हम आगामी वर्ष देनेवाली पुस्तकों के परिचय के साथ जाहिरात देंगे। 'नवसर्जन-ग्रन्थावली' के हिंदी विद्वान सम्पादक का नाम भी देंगे, और ग्रन्थावली का मुद्रणस्थान तथा मुख्य कार्यालय का स्थान भी प्रकट करेंगे। हम इस निवेदन द्वारा हिंदी विद्वानों से, प्रेस के मालिकों से, और इस काम के अनुभवी लोगों से विनती करते हैं कि इस बाबत में वे हमको कुछ मार्ग-दर्शन करावें।

अहमदाबाद
२-१२-३८

मुख्य संचालक
भारती साहित्य संघ

प्रस्तावना

"प्रायश्चित्त" के इस दूसरे भाग में उपन्यास के उद्भव का मूल कहाँ है? यह लिखने की आवश्यकता नहीं है। हिन्दी वाचकों ने पहला भाग तो देखा ही है. यह दूसरा भाग भी उन्हें प्रिय होगा कि नहीं? इस विषय में मुझे शंका है। गुजराती भाषा में इसकी दूसरी आवृत्ति के समय जो सुधार किये वे हिन्दी अनुवाद में भी कायम रक्खे हैं। इस अनुवाद के यशभागी भी, पहले भाग के समान ही, मेरे मित्र श्री भजामिशंकर दीक्षित हैं।

अहमदाबाद
२-१२-३८

सोपान

अनुक्रमणिका

प्रायश्चित्त

१

नया परिचय.

अनेक विचार करता हुआ श्रीकान्त, रामदेव के पास आकर खड़ा होगया। रामदेव को भी जाने की जल्दी थी, फिर भी वह श्रीकान्त की तरफ देखता तथा उसी तरह हँसता हुआ खड़ा रहा। थोड़ी देर में मुसाफिर कम होगये और प्लेटफॉर्म खाली हुआ। कुछ भी बोले बिना, एक-दूसरे के सामने देखकर दोनों स्टेशन के बाहर निकले। बाहर, मैदान में आते ही श्रीकान्त ने पूछा—

"आप कहाँ जायँगे ?"

"एक मित्र से मिलने के लिये यहाँ आया हूँ, रात को वापस लौट जाऊँगा"।

"कल ही आपको दीक्षा मिलेगी ?"

"हाँ, क्या तुम्हें कुछ आश्चर्य होता है ?"

"आश्चर्य क्यों न होगा ? आखिर आपको हिन्दू-धर्म क्यों छोड़ना पड़ रहा है ?"

"क्यो छोड़ना पड़ रहा है ! मेरी इतनी बात सुनकर भी तुम न समझ पाये ? मैं, मनुष्य हूँ, इसलिये ? मुझे जीवित रहना है और सुखमय-जीवन व्यतीत करना है, इसलिये !"

"लेकिन, इसके लिये धर्म छोडने की क्या आवश्यकता है ?"

"तुम, जवान और पढे-लिखे होने पर भी, अभी नादान जान पड़ते हो। दुनिया किस तरह चलती है, इसका तुम्हें किंचित भी पता नहीं है।"

श्रीकान्त, उद्धताई से बोलनेवाले इस युवक की तरफ देखता रह गया।

"मेरी तरफ देखते हो? मै सच कह रहा हूँ। हिन्दू बने रहने पर मुझे पशु से भी अधिक बुरी-जिन्दगी बितानी पड़ेगी, यह बात तुम्हारी समझ में क्यों नहीं आती है? और हिन्दू धर्म में ऐसी कौन-सी चीज भरी है, जिसके लिये मैं इस दुनिया की सुख-सामग्री को लात मार दूँ?"

"लेकिन, धर्म कैसे छोड़ा जासकता है?"

"तुम, कुछ समझते ही नहीं—मिस्टर! तुम्हारे सुख तथा वैभव में धर्म बाधक नहीं होता, इतनी ही बात नहीं है, बल्कि तुम्हारी सहायता भी करता है, इसीलिये वह तुम्हें रुचिकर प्रतीत होता है। लेकिन, मेरा तो सारा जीवन ही हिन्दू धर्म बर्बाद कर डालेगा, अतः वह मुझे रुचिकर कैसे होसकता है?" मौन खड़े श्रीकान्त के कन्धे पर हाथ ठोककर रामदेव ने कहा।

"अच्छा, तो अब इजाजत हो। बुरा लगा हो, तो माफ कीजियेगा।" इतना कहकर उसने चलना प्रारम्भ कर दिया। श्रीकान्त, उसी की तरफ देखता रहा। सहसा उसके मुँह से निकल गया—"रामदेव!"

रामदेव, वापस लौटा।

"मुझे, आपके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी है। क्या आप अपना परिचय नही दे सकते?"

"मेरे परिचय में से, तुम्हें जानने योग्य एक भी बात न मिलेगी, सिवा हिन्दूजाति द्वारा मुझ पर किये हुए जुल्मों के! और यदि तुम मुझे हिन्दू धर्म छोड़ने से रोकने की उम्मीद रखते हो, तो मैं तुमसे कहे देता हूँ, कि ऐसा कभी सम्भव ही नहीं है। मेरी माँ, यही आशा करती-करती इस समय खाट पर पड़ी है और हमारे काना भगत, जिन्होंने मुझ पर बहुत-से उपकार किये हैं, छियानवे वर्ष की अवस्था में बेचारे मेरे लिये दुःखी हैं। किन्तु, मैंने तो निश्चय ही कर लिया है।"

"मैं, आपको क्रिश्चियन होने से नहीं रोकना चाहता। केवल आपके जीवन के सम्बन्ध में जानकारी ही प्राप्त करनी है।"

"जानकर क्या करोगे?" रामदेव की वाणी में, श्रीकान्त ने पहली बार ही थोड़ी-सी मृदुता अनुभव की।

"कुछ नहीं, केवल जिज्ञासा की तृप्ति के लिये ही"।

"तुम्हें, यह मालूम है, कि मैं अपने जीवन की कथा कहते समय, प्रत्येक वाक्य पर प्रज्वलित हो उठूँगा? केवल अपनी जिज्ञासा तृप्त करने के लिये ही, मेरे हृदय में गड़े हुए दुःखों को उखाड़ने को मुझसे न कहो। तुम्हें इस बात का क्या पता है, कि आत्म-हत्या करने की इच्छा उत्पन्न होजाय, इस तरह का जीवन मुझे बिताना पड़ा है? तुम, मेरी माँ को कहाँ पहचानते हो? ओफ़, उसका मेरे ऊपर कैसा प्रेम है! आज, मैं उसके प्रेम की अवहेलना क्या यों ही कर रहा हूँ? क्या केवल थोड़े-से सुख या सुविधा के लिये ही? मेरी अकेले की ही नहीं, बल्कि मुझ जैसे लाखो मनुष्यों की जिन्दगी बर्बाद होरही है, यह बात मैं स्पष्ट देख रहा हूँ। इस तरह की बातें देखकर, मेरी आँखों में खून आजाता है। माता के प्रति की स्नेहभावना, मुझे अपनी निर्बलता प्रतीत होती है, अतः उसकी अवहेलना करके तथा पत्थर का हृदय बनाकर, मैं क्रिश्चियन बनने को

तयार हुआ हूँ। क्रिश्चियन बननेवाला, मैं अकेला ही नहीं हूँ। अबतक, लाखों मनुष्य क्रिश्चियन बन चुके हैं और कल एक ही साथ हम ग्यारह युवक क्रिश्चियन बननेवाले हैं। हमलोगो ने तो यह प्रतिज्ञा की है, कि इस जीवन का उपयोग, हिन्दू धर्म का नाश करने में ही करेंगे।" रामदेव, इतना कहकर कुछ रुका और श्रीकान्त की तरफ सामान्य ममत्व की दृष्टि से देखता हुआ फिर बोला—"तुम्हें, मेरे ये शब्द चुभते होंगे, यह मै जानता हूँ। किन्तु, जब अपनी माता की भावनाओं का मैने कुछ विचार नहीं किया, तो फिर संसार में ऐसी कौन-सी दूसरी भावना है, जो मुझे रोक सके?"

"आप, ज्यों-ज्यों बोलते हैं, त्यों-त्यों मेरी जिज्ञासा बढ़ती जारही है। क्या आप थोड़ा-सा कष्ट सहन करके मुझे अपनी आत्मकथा न सुना सकेंगे! मैं, सवर्ण हूँ, लेकिन जैसा आप जानते होंगे, वैसा नही।"

"तुम, बहुत-अच्छे आदमी होसकते हो और शायद हमारे प्रति तुम्हारे हृदय मे दया भी हो। तुम्हारे जैसे मनुष्य अब बढते जाते हैं। लेकिन, हमे तुम्हारी दया की जरूरत नहीं है। हमें तो न्याय चाहिये।"

"आप, ये सब बाते कहते हैं, लेकिन मै अभी तो इन्हें भली-भाँति समझ भी नहीं पाता। सच पूछो, तो आज से दो महीने पहले, मुझे आपलोगों के दुःख का जरा-सा भी भान न था। रामदेव! आपको इस बात की कल्पना भी नहीं होसकती, लेकिन आज मै भी इसी प्रकार की वेदना अनुभव कर रहा हूँ। जिस तरह आप हिन्दू धर्म छोड़ने को तैयार हुए हो, उसी तरह मै अपना घर छोड़कर भंगी बनने को तैयार हुआ हूँ।"

"कैसे?" रामदेव चौका और आँखें फाड़-फाड़कर श्रीकान्त की तरफ देखने लगा।

"ये सब बातें मैं आपसे कहूँगा, लेकिन आप इस तरह मुझसे दूर-दूर न भागिये। यह तो मैं नहीं जानता, कि ऐसा क्यों होरहा है, लेकिन आपकी बात सुनते समय मेरे मन में एक उद्वेग उत्पन्न होता है और निरन्तर यह अभिलाषा बढ़ती ही जाती है, कि आपकी जीवनकथा सुनूँ।"

"मैं कहूँगा" रामदेव का स्वर बिलकुल बदल गया। उसकी आकृति पर सभ्यता के चिह्न प्रकट होने लगे। बातचीत का ढंग भी शिष्टतापूर्ण हो गया!

"आप, शहर से वापस कब लौटेंगे?"

"और आप कब लौटेंगे?"

"यदि आप आवें, तो तीन बजे की गाड़ी से हमलोग यहाँ से रामनगर चलें। वहाँ से, रात की गाड़ी में आप चले जाइयेगा।"

"अच्छी-बात है, लेकिन आप भी अपनी बात कहेंगे न?"

"जरूर"

दोनों अलग हुए। श्रीकान्त, धीरे-धीरे चलता तथा रामदेव की तरफ नजर डालता हुआ, स्टेशन के मैदान से बाहर निकला। इस नये-परिचय ने, उसके मन को प्रभावित कर लिया था। थोड़ी देर के लिये अपनी वेदना भुलाकर, दुःख की ज्वाला-सी रामदेव की वाणी उसके कान में गूँजने लगी और हृदय में अवर्णनीय-मन्थन होने लगा।

श्रीकान्त, शहर में गया और सारा काम यन्त्र की तरह पूरा करके तीन बजे से पहले ही वापस स्टेशन पर आगया। उसके आने से पहले ही रामदेव वहाँ आचुका था। श्रीकान्त ने, रामदेव के साथ आये हुए उसके मित्र को भी देखा। वह मित्र, कोट-पतलून तथा हैट पहने था, अतः उसे देखते ही श्रीकान्त ने जान लिया, कि यह क्रिश्चियन है।

"ये आपके मित्र हैं ?" श्रीकान्त ने नमस्कार करते हुए पूछा।

"हाँ, ये अभी तीन महीने पहले ही क्रिश्चियन हुए हैं"।

"यह तो उनके पहनावे से ही मालूम होता है"।

वह मित्र ज़रा हँसा !

"अच्छा, तो अब हमलोग टिकिट ख़रीदें ?" समय होने पर श्रीकान्त ने जाने की तैयारी बतलाई। रामदेव ने, अपने मित्र से बिदाई ली और हँसते-हँसते दोनों अलग हुए।

उन मित्र के चले जाने के पश्चात्, ये दोनों गम्भीर बन गये। बिना कुछ बोले ही, दोनों टिकिट ख़रीदकर गाड़ी में जा बैठे। दोनों के मन में नये-परिचय का मीठापन तथा कुतूहलवृत्ति थी। रामदेव, कुछ विशेष आश्चर्यपूर्वक श्रीकान्त की तरफ़ देख रहा था। श्रीकान्त विचार में डूबा हो, इस तरह सिर झुकाकर बैठा था।

"मुझसे, आज आपका अपमान होगया" थोड़ी देर रुककर धीरे-से रामदेव ने कहा।

"नहीं-नहीं, उसमें अपमान की कौन-सी बात थी ?"

"आपके प्रति, मैंने अकारण ही अपना रोष प्रकट किया, ऐसा मुझे जान पड़ता है। मैं, आशा करता हूँ, कि आप..."

"मुझे, उससे ज़रा भी दुःख नहीं हुआ। इतने अधिक कष्ट सहन करने के पश्चात्, यदि आप उबल उठें, तो इसमें आपका क्या दोष होसकता है ?"

"मुझे, अपनी व्याकुलता के लिये किंचित् भी अफ़सोस नहीं है। लेकिन, मुझे आपसे इस तरह की बातें कहना उचित न था।"

"मुझसे ऐसी बातें कहना क्यों उचित न था ?" श्रीकान्त ज़रा हँसकर बोला-"क्या मैं हिन्दू नहीं हूँ ?"

"हो, किन्तु आपके हृदय में और लोगों की–सी निर्दयता नहीं है"।

"तो मुझ जैसे तो हिन्दू जाति में बहुत लोग होंगे"।

"नहीं–नहीं, ऐसा होता, तो यह ज़ुल्म कभी रह ही नहीं सकता था"।

"यह तो चाहे जो हो, लेकिन मुझ जैसे बहुत–से लोग हैं, इस बात का मुझे दृढ़ विश्वास है"।

रामदेव मौन रहा। उसे विचार में पड़ा देखकर, श्रीकान्त अधिक न बोला। गाड़ी, रामनगर की तरफ दौड़ने लगी।

२

रामदेव की कथा.

रामनगर आपहुँचा रामदेव, अपना पूर्वजीवन याद करता हुआ गम्भीर बन गया। श्रीकान्त, उस युवक का मुखभाव देख-देखकर, अपनी भावी की कल्पना कर रहा था। गाड़ी से उतरकर, बँगले के नजदीक पहुँचने तक, दोनों के बीच कोई खास बात न हुई। बँगले में जाते समय, रामदेव ठिठका। श्रीकान्त ने, उसकी तरफ देखा। रामदेव ने, सूचक दृष्टि से अपने मनोभाव व्यक्त कर दिये। श्रीकान्त, उसके मन की बात समझ गया। "कोई हर्ज नहीं है" कहकर श्रीकान्त ने रामदेव की दुविधा कम की। दोनों, साथ ही दरवाजे में दाखिल हुए। उमादेवी और हरिदास सेठ, दोनों बैठे-बैठे राह ही देख रहे थे। नये-मेहमान को देखकर, दोनों को जरा आश्चर्य हुआ। वेशभूषा तथा आकृति देखकर, इतना तो वे जान ही गये, कि आगन्तुक हमारे वर्ण का मनुष्य नहीं है। श्रीकान्त ने, हँसते-हँसते रामदेव का परिचय देते हुए कहा-"ये, मेरे एक नये मित्र हैं। चन्द्रपुर जाते हुए इनसे मेरा परिचय हुआ है।" दोनों ने हँसकर रामदेव का स्वागत किया। थोड़ी देर सामान्य-पूछताछ करते हुए सब लोग वहीं बैठे रहे। फिर, श्रीकान्त और रामदेव वहाँ से उठकर पीछेवाले बरामदे में आगये। वहाँ पहुँचने पर, रामदेव ने कुछ स्वतन्त्रता अनुभव की। सामने बहनेवाली नदी और दूर का रमणीय-प्रदेश देखकर, उन लोगों की गम्भीरता कुछ कम हुई।

"आपको, रात को तो जाना ही पड़ेगा, क्यों ?" श्रीकान्त ने पूछा।

हाँ, इसके बिना छुटकारा ही नहीं है। कल सबेरे, मुझे प्रेमनगर पहुँच ही जाना चाहिये। नौ बजे दीक्षा-संस्कार की विधि सम्पन्न होनेवाली है।"

"हाँ" श्रीकान्त, जरा रुककर बोला-"तो अब अपनी कथा कहोगे ?"

"जरूर, क्यों नहीं ?" आवाज में जरा परेशानी का भाव मालूम होरहा था "लेकिन समझ में नहीं आता, कि कहाँ से शुरू करूँ और किस तरह शुरू करूँ। मेरे किस प्रसंग में आपको कितनी दिलचस्पी होगी और उसे सुनकर आपको क्या लाभ होगा, आदि विचार मेरे मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं।"

"मुझे, खूब दिलचस्पी होगी और फायदा मैं स्वतः उसमें से ढूँढ लूँगा। आपकी जिस तरह तबियत चाहे, उस तरह कह डालिये। मैं, आपकी बातें ठीक करके अपने मन में जमा लूँगा।"

"हाँ, लेकिन मैं रात तक शायद सब बातें न कह सकूँगा"।

"यदि, अधूरी रह जायँगी, तो मैं आपके साथ-साथ ट्रेन में चलूँगा"।

"ऐसा !" रामदेव आश्चर्यपूर्वक बोला "आपकी इतनी अधिक उत्सुकता है ? लेकीन मेरी समझ में नहीं आता, कि इसका कारण क्या है ?"

"मैने बतलाया न, कि मेरे जीवन में कुछ ऐसी स्थिति उत्पन्न होरही है, जो मुझे यहाँ से बाहर निकालकर भंगीपुरे में फेंक देना चाहती है"।

"लेकिन, आप अपनी बात कब कहेंगे ?

"आपकी बात पूरी होजाने के बाद"।

किसी के पैरों की आहट, सुनाई दी, अतः श्रीकान्त ने पीछे की तरफ दृष्टि डाली। उसने, दरवाजे के पास से हरिदास सेठ को वापस जाते देखा।

"हाँ, तो सुनो" रामदेव ने गम्भीर–आवाज में कहना प्रारम्भ किया "मैं, काठियावाड़ की हद पर के एक गाँव में पैदा हुआ हूँ। गाँव का नाम है हरिपुर। प्रेमनगर से, उसका बीस माइल अन्तर है। रेल, तार, डाक आदि की वहाँ कोई व्यवस्था नहीं है। तीन माइल दूर कोटड़ा गाँव में डाकखाने का ब्रांच–ऑफिस है और हफ्ते में सिर्फ एक वार हरिपुरा में डाक आती है। पाठशाला है, लेकिन उसमें भंगी–चमारों के लड़कों को नहीं बैठने दिया जाता। बस्ती, लगभग सातसौ मनुष्यों की है, जिनमें डेढ़सौ हमारे जैसे हैं और वे सब गाँव से बाहर निचले भाग में, छोटी-छोटी झोंपड़ियाँ बनाकर रहते हैं। गाँव में, मुख्य–बस्ती कुर्मी तथा कोरियों की है। चार घर बनियों के, दो ब्राह्मणों के और एक घर खोजा का है। उसी गाँव में, आज से लगभग पच्चीस वर्ष पहले मेरा जन्म हुआ था। मेरे पिता बुनाई का काम करते थे। मेरी माँ, उनके काम में मदद करती और जंगल से घास या सेंठी काटकर नजदीकवाले बड़े गाँव में बेच लाती। इस तरह, हमारा गुजर–बसर चलता था। मैं, अपने माता–पिता का अकेला लड़का: अतः मुझ पर उनका अत्यन्त–स्नेह था। किन्तु, पितृप्रेम का आनन्द, मेरे भाग्य में न बदा था। मैं, दो ही वर्ष का था, तभी मेरे पिता की साँप के काटने से मृत्यु आगई होगी, इसी–लिये वे मरे होंगे, लेकीन मुझे जान पड़ता है, कि यदि हमलोग उन घूरों के बीच न रहते होते, तो उनकी इस तरह कभी मृत्यु हो ही नहीं सकती थी। और इससे अधिक मुझे यह जान पड़ता है, कि हमारे मुहल्ले में से कोई भी, उनको बचाने का कुछ प्रयत्न न कर सका। बीस माइल दूर तक, एक भी डॉक्टर या अस्पताल न था। इस तरह, मेरे कुटुम्ब के तथा मेरे बचपन के कितने ही दुःखद–प्रसंग,

जो मुझे उस समय सामान्य एवं दैवयोग से हुए जान पड़ते थे, आज अन्याय में से पैदा हुए जान पड़ते हैं।"

"मेरे पिता मर गये, किन्तु मेरी माताजी ने मुझे कभी भी कष्ट न अनुभव होने दिया। उस बेचारी ने, और अधिक मज़दूरी करना प्रारम्भ किया। पिछली रात के चार बजे उठकर वह जंगल को जाने लगी। उसके हृदय में, मेरे प्रति अपार-स्नेह था। हिन्दू जाति के प्रति, मेरी रोष-ज्वालाएँ दावानल का रूप नहीं ग्रहण करतीं, इसका एकमात्र कारण यही है। मेरी दयामयी-माता की आकृति, एक क्षण के लिये भी मेरी आँखों से ओझल नहीं होती। उसने, जो-जो दुःख सहन करके मुझे पाला है, उन्हें मैं कभी नहीं भुला सकता। और, मैं क्रिश्चियन बनूँगा, इस विचार का उसे जो आघात लगा है, वह देखकर तो राक्षस भी काँप उठे। किन्तु, मैंने अपनी छाती वज्र की बना ली है। मेरी मनोदशा को, शायद आप नहीं समझ सकते और सम्भव है, मैं आपको निर्दय तथा जड़-सा प्रतीत होऊँ। हो सकता है, कि आपके हृदय में मेरे प्रति तिरस्कार एवं रोष की भावना उत्पन्न होजाय। लेकिन, चाहे जो हो, मेरा निश्चय तो दृढ़ ही है......"।

"आप, ऐसा क्यों मान लेते हैं?" श्रीकान्त ने बीच ही में पूछा "मैंने, आपसे क्या कुछ कहा है?"

"हाँ, आपने तो नही कहा है, लेकिन आपको ऐसा ख़याल होसकता है, यह बात मेरा हृदय बारम्बार कहता है। चाहे जो हो, मुझे प्रतिक्षण यह विचार आता ही रहता है, कि मेरा यह कार्य आपको किसी तरह अच्छा नहीं लग सकता। मैं....मैं...." आवाज़ में ज़रा कठोरता आगई और रामदेव रुक गया।

"आप, शान्तिपूर्वक अपनी कथा ही कहिये न! अकारण ही इस तरह की उलटी-सीधी कल्पनाएँ क्यों कर लेते हैं? आपने, दृढ़-

निश्चय कर लिया होगा, लेकिन आपकी बातचीत से तो यह स्पष्ट मालूम होता है, कि आपके मन में अभीतक भय घुसा है।"

"नहीं-नहीं, मुझे कोई डर नहीं है। मैं, दूसरा मार्ग तो किसी तरह ग्रहण ही नही कर सकता। चाहे जो होजाय, मैं अपने निश्चय से कभी नहीं डिग सकता। आपको मालूम है, कि मुझ पर क्या क्या बीती है? आप, उसे नहीं समझ सकते, वह सब तो आपको अत्युक्ति जान पड़ेगी।"

"रामदेव!" श्रीकान्त ने अत्यन्त-धैर्यपूर्वक कहा "आप, शान्त होकर एक बार अपनी सारी कथा कह जाइये। मै क्या सोचूँगा, इस बात का ख़याल ही अपने दिमाग़ से निकाल दीजिये। और मैं सोच ही क्या सकता हूँ? अधिक-से-अधिक आपके इस कार्य को अनुचित कह दूँ, यही तो न! यदि ऐसा हो, तो आपको मेरे कथन की परवा न करनी चाहिये, और क्या?"

रामदेव, कुछ शान्त हुआ। उसे जान पड़ा, कि वह अकारण ही परेशान हुआ। क्षणभर शान्त रहकर तथा अपने-आपको व्यवस्थित करके, उसने फिर बोलना प्रारम्भ किया।

"मेरे पिता की तो मृत्यु होगई और मेरी माँ ने मजदूरी करने में अपना शरीर लगा दिया। वह बेचारी छाछ-रोटी खाती और किसी भी तरह मुझे दूध तथा थोड़ा-सा घी प्रतिदिन खिलाती थी। मेरा, उसने खूब प्रेम से लालन-पालन किया। काना भगत से मैंने सुना है, कि तंगी के वक्त, मेरी माँ ने उपवास करके भी मुझे दूध-रोटी खिलाई है। हमारे उन काना भगत के सम्बन्ध में भी मुझे आपसे बहुत-सी बातें बतलानी हैं। मेरी कथा में, उनका बहुत-बड़ा भाग है। वे, मेरे इस आचरण से, मेरी माँ के बराबर ही दुःखी हो-रहे हैं। उन्हें, मुझसे अपार-स्नेह है। और केवल मुझसे ही नहीं, मुहल्ले के प्रत्येक बालक से उन्हें वैसा ही स्नेह है। यदि, वे न होते, तो

हमारा मुहल्ला चमारवास नहीं, बल्कि सभी तरह से नर्कवास बन गया होता। आज तो वे मौत के किनारे बैठे हैं और बिलकुल अशक्त बन गये हैं, किन्तु फिर भी सारे मुहल्ले पर उनकी छाया है। मै तो यहाँ तक कहता हूँ, कि केवल उन्हीं के कारण, वहाँ बसनेवाले मनुष्यप्राणी, पशु बनते-बनते रह गये। काना भगत के कुटुम्ब में कोई नहीं है। युवावस्था में उनकी स्त्री मर गई और उसके बाद एक छोटा-सा छोकरा था, वह भी मर गया: लोगों ने बहुत-कुछ कहा, लेकिन उन्होंने दूसरा विवाह न किया। इसके बाद से, उन्होंने मुहल्ले की सेवा और रामजी की भक्ति करना प्रारम्भ किया। मेरे हृदय में, उनके प्रति अत्यन्त-पूज्यभाव है। उनके सामने, क्रिश्चियन बनने की बात कहते हुए, मुझे अनेक विचार आये। उनके दु:ख की कल्पना करके, मै अनेक बार मौन ही रह गया। किन्तु, अन्त में मैने उन्हें भी दु:खी किया ही। उन्होंने, मुझे ख़ूब समझाया। लेकिन, उनकी बात मुझे पसन्द न आई। वे, मुझे शान्ति की तथा प्रभु के नाम की बातें सुनाते थे। लेकिन, मुझे तो सुख चाहिये था, मुझे ऐसी स्थिति चाहिये थी, जिसमें कोई मेरा अपमान न कर सके, कोई मुझ पर थूक न सके। एक दिन, मेरी माँ को एक बनिये ने मारा था। उस तरह का हृदयविदारक-दृश्य फिर न देखना पड़े, ऐसी स्थिति की मुझे आकांक्षा थी। मै, हिन्दू रहकर ऐसी स्थिति कैसे प्राप्त कर सकता था? क्रिश्चियन होने का विचार तो आज से चार वर्ष पहले ही मेरे दिमाग़ में उत्पन्न होगया था, लेकिन काना भगत और मेरी माँ, मेरे रास्ते में बाधक थे। उन्हें, अपने मार्ग से हटा सकूँ, इतना मनोबल प्राप्त करने में, मुझे चार वर्ष लग गये। मेरे शिक्षागुरु, विलियम तथा पादरीबाबा हैं। मैं, उनकी क्या तारीफ करूँ? उन्होंने, मुझ पर जो प्रेम प्रदर्शित किया है और मुझे सत्य-धर्म का जो रहस्य बतलाया है, उसे मै सारे जीवन कभी भुला ही नहीं सकता। उस धर्म में, मनुष्यमात्र समान हैं। उस धर्म

में प्रेम है, सुख है, आनन्द है। उसमें, न तो कोई चमार है और न कोई ब्राह्मण। और यही कारण है, कि आज सारे संसार पर उसका साम्राज्य छाया हुआ है।

भावनाओं के वशीभूत रामदेव की तरफ श्रीकान्त देख रहा था। उसके लिये, यह दुनिया बिलकुल नई थी। लेकिन, रामदेव की इतनी बातचीत से, वह किंचित् भी आकर्षित न होसका। उसे, रामदेव उत्तेजित प्रतीत हुआ।

"आपको, यह असत्य जान पड़ता है?" श्रीकान्त को अपनी तरफ ताकता देखकर रामदेव ने पूछा। "मै, ये सब बातें साबित कर देने के लिये तैयार हूँ। सात वर्ष की लम्बी-अवधि में मैंने जो-कुछ सुना है, वह मेरे दिमाग में मौजूद है। अपनी किसी भी बात का समर्थन करने के लिये मै तैयार हूँ।"

"लेकिन, मैं कहाँ शंका कर रहा हूँ? मैं तो ध्यानपूर्वक आपकी बात सुन रहा हूँ। आप, बातें करते-करते, इतने शंकाशील क्यों हो जाते है, यही मेरी समझ में नही आता।"

"हाँ" कहकर रामदेव कुछ शान्त पड़ा। फिर बोला-"मै, बोलता-बोलता भावनाओं के वश होजाता हूँ और उसीके फल-स्वरूप बातों का प्रवाह बदल जाता है। अब, मैं आपसे अपने जीवन के प्रसंग ही एक के बाद एक करके सुनाये देता हूँ।" इतना कहकर रामदेव ज़रा रुक गया। श्रीकान्त ने, बाहर की तरफ नज़र फेंककर कहा-

"हमलोग बाहर घूमने चले? दूर की टेकरियों पर बैठेंगे, तो वहाँ शायद आपको अधिक अच्छा लगेगा।"

"ठीक है" कहकर रामदेव उठा और दोनों साथ-ही-साथ बाहर निकले।

३

पाठशाला के चबूतरे पर.

रामदेव तथा श्रीकान्त, दोनों बाहर निकलकर अभी थोड़ी ही दूर गये थे, कि हरिदास सेठ उसी दरवाजे के पास आकर खड़े होगये। उनकी चिन्तातुर आँखे, उन दोनों की पीठ पर चिपक रही थीं। उनके चेहरे पर सीमातीत-घबराहट थी। उन्होंने, धीरे-धीरे अपनी आँखे बन्द कर ली और मूँदी हुई पलकों पर हाथ फेरा। श्रीकान्त तथा रामदेव, बिना पीछे देखे, बातें करते हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ते जारहे थे।

"मेरी तो समझ में ही नहीं आता, कि हिन्दूलोग इतने अधिक निष्ठुर कैसे हो पाते हैं!" रामदेव ने चलते-चलते कहा "क्या उनके हृदय ही नहीं होता?"

श्रीकान्त मौन रहा।

'मै, आपसे पूछता हूँ" रामदेव ने, श्रीकान्त का विशेषरूप से ध्यान खींचते हुए कहा "इन भंगी-चमारों का इतना अधिक तिरस्कार करने का क्या कारण है, इसकी आप कल्पना कर सकते हैं?"

श्रीकान्त, इस प्रश्न से चौंका। उसने, बिना कुछ विचार किये, सिर हिलाकर नाहीं की।

"आपको जान पड़ता है, कि ऐसे धर्म में रहने से हमलोगों का कल्याण हो सकता है?"

श्रीकान्त ने उत्तर न दिया—दे ही न सका।

"बोलते क्यों नहीं हो?"

"कुछ नहीं, यों ही। मुझे तो धर्म का अधिक ज्ञान ही नहीं है।"

"लेकिन, आप हिन्दू तो हैं न?"

"हाँ" श्रीकान्त ने हिचकते हुए कहा।

"तब तो फिर आपको मेरे प्रश्नों का उत्तर देना ही चाहिये"।

"लेकिन, यदि मैं न जानता होऊँ, तो क्या उत्तर दूँ?"

"तो यों कहो, कि मै हिन्दू नहीं हूँ"।

"ऐसा तो कैसे कहा जासकता है?"

"यह कैसे चल सकता है?"

श्रीकान्त, हैरान होगया। थोड़ी देर रुककर उसने कहा—

"शास्त्रों में चाहे जो लिखा हो, लेकिन आपलोगों के प्रति अन्याय तो होता ही है"।

"अन्याय? या घोर-अत्याचार?"

"हाँ, अत्याचार ही"

"तो फिर आप ऐसे धर्म में क्यों रहते हैं?"

"रामदेव! मैंने कभी ऐसा विचार ही नहीं किया है। मेरा ख़याल है, कि इस सम्बन्ध में हमलोग फिर कभी बातें करेंगे और तबतक मैं कुछ जान भी लूँगा।"

रामदेव ने, और प्रश्न पूछना बन्द कर दिया। दोनों, आसपास के प्रदेश की रमणीयता की बातें करते हुए टेकरी के पास आपहूंचे।

टेकरी पर अच्छी-जगह ढूँढकर बैठने के पश्चात्, श्रीकान्त ने रामदेव से अपनी कथा प्रारम्भ करने को कहा। चारों तरफ एक नज़र फेककर रामदेव ने फिर कहना प्रारम्भ किया।

'मैं, छः वर्ष का हुआ तब काना भगत ने मेरी माँ के सामने, मेरे पढ़ाने का प्रश्न धरा। मेरी माँ ने, यह बात हर्षपूर्वक स्वीकार कर ली। लेकिन, मुझे पढ़ाने की इच्छामात्र से ही मैं पढ़ जाऊँ, ऐसा तो था नहीं। हमारे गाँव में पाठशाला तो थी, लेकिन उसमें चमार के लड़कों को दाखिल नहीं किया जाता था। एक बार गाँव के महाजन के पास काना भगत अर्ज करने गये, तब बड़ी कठिनाई से, चमारों के लड़कों को बिना छप्पर के सहन में बैठने की इजाज़त मिली थी। यह इजाज़त मिल जाने के बाद, काना भगत ने मुहल्ले के लोगो को समझा—बुझाकर छोटे-छोटे लड़कों को स्कूल भिजवाया, लेकिन यह क्रम अधिक दिनों तक न चल सका। पाठशाला का अध्यापक, एक धर्मान्ध-ब्राह्मण था। वह, इन लड़कों को गालियाँ देता, अपमान करता और बुरी तरह पीट भी देता था। लेकिन, कुछ पढ़ाता ज़रूर था। चमारों के लड़कों के प्रति, उस अध्यापक के निर्दयतापूर्ण-व्यवहार का, दूसरे लड़कों पर जो प्रभाव पड़ता था, वह सहन करना चमार बालकों के लिये असम्भव होगया। सवर्णों के लड़के भी उसी तरह चमार बालकों को सताने लगे और काना भगत के बार-बार प्रार्थना करने पर भी, उस स्थिति में कोई सुधार न होसका। अन्त में, मुहल्ले के लोगों ने, अपने लड़कों को पाठशाला भेजना बन्द कर दिया। लेकिन, काना भगत के हृदय से यह बात न गई। उस ब्राह्मण मास्टर के चले जाने के बाद, एक लोहाणा जाति का अध्यापक वहाँ आया। वह, कुछ भला-आदमी था। अतएव, काना भगत ने फिर मुहल्ले के लोगों को समझाना शुरू किया। ठीक इन्हीं दिनों, उन्होंने मेरी माँ से भी मुझे पढ़ाने के सम्बन्ध में कहा। मेरी माँ, काना

भगत के प्रति अत्यन्त-भक्ति रखती थी, अतः उसने यह बात फौरन ही स्वीकार कर ली । 'लेकिन, मेरे लड़के को वहाँ मारा-पीटा तो नहीं जायगा ?' यह चिन्ता प्रकट किये बिना वह न रह सकी ।

"अब, कोई नहीं मारेगा, वह मास्टर बदल गया !" कहकर काना भगत ने आश्वासन दिया, अतः मेरी माँ सहमत होगई और दूसरे दिन सबेरे मेरा पाठशाला जाना तय रहा ।

मैं, चमार का लड़का था और मेरे माता-पिता के पास कुछ सम्पत्ति भी न थी । सारे संसार का अपमान सहन करने के लिये ही मेरी गढ़न्त हुई थी ! लेकिन, मै छः वर्ष का हुआ, तबतक मेरी माँने मेरा जिस तरह लालन-पालन किया था, उससे मै कुछ लजीला और कुछ स्वाभिमानी बन गया। बचपन में, मै उपद्रवी न था। मुहल्ले के गन्दे-लड़को के साथ खेलना मुझे पसन्द न था। लड़के, कभी-कभी मेरे घर के नजदीक आकर मेरी हँसी करते और तरह-तरह के उपद्रव करते, लेकिन मेरी मा उन्हें धमकाकर निकाल देती थी। जिस दिन मै पहली बार पाठशाला गया, उस दिन मुहल्ले से दूसरा कोई लड़का न गया था। दो-चार माता-पिताओं ने, काना भगत से हॉ तो की थी, लेकिन किसी ने अपने लड़के को नहीं भेजा ।

वह दिन, मुझे भली-भॉति याद है। मेरी माँ ने, मुझे धोये हुए कपड़े पहनाये और हाथ में स्लेट देकर पाठशाला भेजा । उस दिन को, मै कभी नहीं भुला सकता। वह, प्रसन्न होती हुई मेरे साथ-साथ आई और पाठशाला के मैदान में खड़ी रही। उसने, मास्टर साहब को पुकारा। मास्टर साहब बाहर निकले। उनके साथ-ही-साथ लड़को का झुण्ड भी निकला। मुझे और मेरी माँ को देखकर, लड़कों ने किलकारी मारनी शुरू की। मास्टर ने, उन सबको शान्त किया और हमें नजदीक बुलाया। अत्यन्त-संकोच में पड़ती हुई, मेरी माँ आगे बढ़ी और मै भी उसके साथ-साथ गया।

"क्या काम है ? इस लड़के को पढ़ने बैठाना चाहती हो ?" मास्टर ने पूछा।

"हाँ, सरकार !"

मैं, आतुर होकर मास्टर की तरफ देख रहा था।

"तुम्हारे मुहल्ले के और लड़के नहीं आते ?"

"भगवान् जाने, लेकिन आवेंगे जरूर ही" मास्टर से यह कहकर मेरी माँ ने मेरी तरफ देखा। उसकी आँखों में चिन्ता थी। मुझसे, कहते न बना, लेकिन मेरे मन में यह बात थी, कि मैं अकेला घबराऊँगा नहीं, तू चिन्ता न कर'।

"क्यों लड़के, तू यहाँ पढ़ेगा न ?" मास्टर ने मुझसे पूछा।

मैंने, प्रसन्न होकर हाँ की। किन्तु, मास्टर के पीछे खड़े हुए मुझ-से बड़ी आयुवाले एक लड़के ने हाथ उठाकर मुझे धमकाया। उसकी तरफ तथा लड़कों के झुण्ड की तरफ देखकर मैं घबरा उठा। मास्टर, मेरा मनोभाव जान गये हों, इस तरह उन्होंने पीछे घूमकर देखा और आँखों से लड़कों को मना किया।

"तेरा नाम क्या है ?" मास्टर ने पूछा।

"रामा" मेरे उत्तर देने से पूर्व ही मेरी माँ ने कह दिया।

"रामा नहीं, रामदेव" मास्टर ने हँसकर कहा। पास ही के एक लड़के ने, मेरी तरफ मुँह मटकाया।

"अच्छा, मास्टर साहब ! तो अब आप मालिक हो, सम्हालना" मेरी माँ ने प्रार्थना की।

"तुम जाओ, इसकी चिन्ता मत करो" मास्टर ने आश्वासन दिया।

"मेरे यही एक लड़का है। मेरा जीवन इसी तक है। आप, हमारी जाति की तरफ न देखना, लड़के तो सब के बराबर हैं।" मेरी माँने टूटी-फूटी आवाज़ में कहा।

"तुम चिन्ता न करो। देख, रामदेव! तू यहाँ बैठा कर।" मास्टर ने, पाठशाला के कमरे के पास ही, छप्परवाले बरामदे में मुझे जगह बतलाई।

"मास्टर साहब चमार को यहाँ बैठाते हैं" एक लड़के ने कहा।

"पहले चमारों के लड़के आते थे, वे सब वहाँ धूप में दूर बैठते थे" दूसरा लड़का बोला।

मुझे ठीक-ठीक याद है, कि तब मेरी माँ याचनाभरी-दृष्टि से मास्टर की तरफ देख रही थी।

"कुछ हर्ज नहीं है। यहाँ छुआछूत नहीं देखी जाती।" कहकर मास्टर ने मुझे बरामदे में बैठने को कहा। मैं, ज्योंही चबूतरे पर चढ़ा, कि त्योंही सब लड़के भागते तथा ऊधम करते हुए कमरे में चले गये। मेरी माँ, मेरी तरफ और मास्टर की तरफ एक नजर डालकर वापस लौटी। पाठशाला के मैदान से बाहर निकल जाने के बाद भी, उसने प्रसन्ननेत्रों से मेरी तरफ देखा।

"अब, रोज पढ़ने आवेगा न?" मास्टर ने मुझसे पूछा। मैंने, सिर हिलाकर हाँ की।

"देख, यहाँ किसी को छूना नही, हाँ! नहीं तो लड़के तुझे मारेंगे। और जब प्यास लगे, तब अपने घर जाकर पानी पी आना। इस मटके में से कभी न पी लेना!"

"मटके को छू ले, तो सिर न तोड़ दिया जाय!" फिर लड़कों का झुण्ड इकट्ठा होगया था, उसमें से आवाज़ आई।

"तेरी स्लेट ला तो" मास्टर ने स्लेट माँगी। मैंने, नीचे धर दी। मास्टर ने उसे ज्योंही हाथ में उठाया, कि त्योंही लड़के चिल्ला उठे—"मास्टर साहब, छींटे डालो, आप भी छूगये! छूगये! अब नहाना पड़ेगा"।

मास्टर कुछ न बोले। उन्होंने, मेरी स्लेट पर एक का अंक बना दिया और मुझे उसको घोटने के लिये कहा। मै, स्लेट लेकर उस अंक घोटने लगा। मास्टर, कमरे में चले गये। कोलाहल करते हुए लड़के भी कमरे में जाकर बैठ गये। थोड़ी देर में, कोलाहल कम हुआ। मास्टर ने, लड़कों को समझाया, कि कोई मुझे हैरान न करे और सब मुझ पर दया रक्खे।

दोपहर को, जब घर जाने का समय हुआ, तब मेरी माँ सामने आकर खड़ी हुई। उसने, हर्ष में भरकर मुझे अपनी गोदी में उठा लिया। मैंने, उसे स्लेट पर घोटा हुआ अंक बतलाया। उसने, मौन भाषा में मास्टर का उपकार माना।

इस तरह, मेरा वह दिन हर्ष में और कुछ-कुछ घबराहट में व्यतीत हुआ।

४

पहली चोट.

उसी दिन रात को, सारे गाँव में यह बात फैल गई। मुझे, बरामदे में बैठाया, इस बात को लेकर कुछ शोरगुल भी मचा। किन्तु, मास्टर ने लोगों को समझा-बुझाकर शान्त कर दिया। मुझे, उस मास्टर का उपकार मानना चाहिये। यदि, उसकी सहानुभूति और दया मुझे न प्राप्त हुई होती, तो मैं भी अपनी जाति के पाँच करोड़ मनुष्य रूपधारी पशुओं की तरह का ही होता। मास्टर की सहानुभूति ने, स्कूल के लड़कों के मन भी बदल दिये। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, त्यों-त्यो मेरे प्रति उनके हृदय में तिरस्कार का भाव कम होता गया। मुहल्ले के लोगो पर, इस परिवर्तन का असर हुआ और एक महीने के भीतर ही, चमारों के लड़कों की संख्या दस तक पहुँच गई।

मेरी पढ़ाई के सम्बन्ध में, मुझे कुछ भी नहीं कहना है, क्योंकि अन्य लड़कों के बराबर ही मास्टर मुझे पढ़ाने की तरफ ध्यान देते थे। यही नहीं, दूसरे लड़कों की तरह मुझे भी रामदेव कहकर सम्मानपूर्वक पुकारते थे। प्रारम्भ में तो इस तरह के सुधरे हुए नाम, जैसे रामा का रामदेव, पेथा का पृथ्वीराज, मेघा का मेघराज-मज़ाक में बोले जाते थे। किन्तु, पाठशाला में तो ये नाम धीरे-धीरे प्रचलित होने लगे। गुजराती की पाँचवीं कक्षा तक की यह पाठशाला थी।

इतनी पढ़ाई खतम कर चुकने के बाद, अंग्रेज़ी की छठी तक पढ़ने की व्यवस्था, नज़दीक के कोरड़ा ग्राम में थी। इसके बाद, यदि और अधिक पढ़ना हो, तो उसकी सुविधा प्रेमनगर में थी, जो लगभग एक लाख मनुष्यों की बस्तीवाला बड़ा-शहर था।

मै, नौ वर्ष का हुआ, तबतक प्रत्यक्षतः किसी सवर्ण ने न तो मुझे मारा ही था और न किसी प्रकार का जुल्म ही किया था। किन्तु, मैं चमार हूँ-नीच-जाति का हूँ, यह बात तो मुझे किसी भी सवर्ण लड़के के नज़दीक जाने पर अनुभव करनी ही पड़ती थी। मै सच कहता हूँ, कि इसका कोई कारण ही मेरी समझ में न आता था। 'मुझे, ये लोग क्यों नहीं छूते हैं!' यह प्रश्न अस्पष्ट-रूप से मेरे मन में उत्पन्न होता और मुझे इसके लिये दुःख भी होता था। मुझे याद है, कि एक दिन मैंने काना भगत से पूछा था, कि काना बापू! ये लोग हमको छूते क्यों नहीं हैं?

'भैया! हमलोग नीच-जाति के हैं' उन्होने मुझे अपनी बगल में दबाते हुए कहा।

'लेकिन, नीच-जाति के क्यों हैं?'

काना भगत, इस शंका का कोई उत्तर न दे पाये। उस वृद्ध की आँखों उस समय छलछला आई।

'ऐसा न पूछना चाहिये, भगवान् को जो अच्छा लगा, वही ठीक है' कहकर वे मेरे पास से चले गये।

मेरे छोटे-से मन में, इस प्रश्न ने तूफान पैदा कर दिया था। मैं, सवर्ण स्त्री-पुरुषों तथा बालको को [illegible] से देखा करता। मुझमें और उनमें क्या अन्तर है, यह जानने का मै भली-भाँति प्रयत्न करता, किन्तु मुझे अपने प्रश्न का उत्तर किसी तरह मिलता ही न था।

'माँ' एक दिन अपनी माँ से मैंने पूछा 'हमलोग, गाँव से बाहर क्यों रहते हैं ?'

'हमलोग चमार हैं, इसलिये'।

'लेकिन, अगर गाँव में रहें, तो क्या हो ?'

'हमें, वहाँ नहीं रहने देंगे, क्योंकि हमलोगों की जाति हलकी समझी जाती है'।

'लेकिन, हमलोग उनसे हलके क्यों हैं ?'

'अपनी जाति हलकी है, और कुछ नहीं'।

मैंने, अधिक न पूछा। मेरी माँ के पास, इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है, यह बात मैं उस समय ही समझ गया था। चाहे जो हो, मेरे मन का समाधान न हुआ। हमलोग 'हलकी-जाति' के क्यों हैं ? इस प्रश्न का समाधानकारक उत्तर मुझे नहीं मिला। अन्त में, एक दिन साहस करके मैंने अपने मास्टर से पूछा—

'आप, हमलोगों को छूते क्यों नहीं हैं ?'

मास्टर, मेरी तरफ देखते रह गये। मेरे साथ खड़े हुए मेरी जाति के और लड़के भी कुतूहल से ताकने लगे।

'तुम चमार हो न, इसीलिये'।

'लेकिन, छूने से क्या होता है ?'

'तुम्हें छू लें, तो हमलोग अपवित्र होजायँ' मास्टर, इतना कहकर कुछ रुके और फिर बोले 'देख रामदेव ! जब तू अकेला होगा, तब मैं तुझे यह बात समझा दूँगा'।

दो-चार दिन बीत गये, किन्तु मास्टर ने मुझे कुछ समझाया नहीं। एक दिन, पाठशाला के समय के बाद, मास्टर कमरे में अकेले

ही बैठे थे, तब मै दरवाज़े में जाकर खड़ा होगया। कमरे में जाने की तो मुझे मुमानियत ही थी। मुझे देखते ही, मास्टर उठ खड़े हुए। मेरी, भीतर जाने की बड़ी इच्छा हुई, किन्तु मैंने अपने मन को रोका। मास्टर, वहीं खड़े-खड़े मेरी तरफ देखते रहे। उनकी आँखों में, मुझे सहानुभूति का भाव जान पड़ा, अतः मैंने धीरे से पूछा—'क्या मै अन्दर आजाऊँ?'

'नहीं-नहीं, मै बाहर आता हूँ' कहते हुए मास्टर मेरे पास आये। मैं, पीछे हट गया। मुझे, इससे अत्यन्त-दुःख हुआ, और मेरा चेहरा बिलकुल रोने का-सा होगया।

'क्यों, ढीला क्यों पड़ गया?' मास्टर ने पूछा।

मैने, इसका कोई उत्तर न दिया।

'देख, तू कमरे में आवे और कोई वहाँ आते देख ले, तो तुझे मारेगा या नहीं? इसी लिये मैंने तुझे मना किया-समझा?'

'लेकिन, अगर मै जाऊँ, तो क्या हो जाय?' आँखों में आँसू भरकर मैंने पूछा।

मास्टर, इसका कोई उत्तर न दे पाये। उन्होंने, इधर-उधर नज़र घुमाकर, धीरे-से मेरे कन्धे पर हाथ धर दिया। मैं चौका, प्रसन्न हुआ, क्योकि मास्टर का यह सब से पहला स्पर्श था। मेरी आँखों में आँसू भरे थे, फिर भी मैंने प्रसन्न होते हुए उनसे पूछा—

'अब तो मुझे कमरे में पढ़ने देंगे?'

मास्टर कुछ न बोले। उन्होंने, मेरे कन्धे पर से अपना हाथ उठा लिया। मै, फिर गम्भीर होकर उनकी तरफ देखने लगा।

'रामदेव!' थोड़ी देर रुककर मास्टर ने कहा 'जा, अब खेलने जा। कल सबेरे स्कूल आजाना, हाँ!'

मैं, बिना कुछ बोले, वापस लौट पड़ा। बाहर निकलने के बाद, मैंने घूमकर मास्टर की तरफ देखा। मास्टर, दरवाजे में खड़े-खड़े मेरी ही तरफ देख रहे थे।

इस प्रसंग के बाद से, मास्टर के हृदय में, मेरे प्रति ममत्व बढ़ा। अब, दूसरे सब लड़कों की अपेक्षा, वे मेरी तरफ अधिक स्नेहभाव रखने लगे। सवर्ण बालकों के मन में, इससे ईर्ष्या उत्पन्न हुई और वे लोग कभी-कभी मुझे हैरान भी करने लगे। किन्तु, मास्टर तो मुझ पर वैसी ही कृपादृष्टि बनाये रहे।

मेरा नवमा वर्ष प्रारम्भ हुआ, तब एक विचित्र-घटना घटी। मेरे हृदय पर, सब से अधिक गम्भीर-चोट, उसी दिन लगी। वह दुःखद-प्रसंग, मुझसे किसी भी तरह भुलाया ही नहीं जाता। उस प्रसंग के बाद से, मेरे हृदय में सामान्य रूप से उठनेवाला प्रश्न, कटारी की तरह तीखा बन गया और सदैव मेरे हृदय को छेदने लगा।

'वह प्रसंग!' रामदेव की आँखें ज़रा बड़ी होगईं। श्रीकान्त, निर्निमेष दृष्टि-से उसकी तरफ देखता रहा। इतनी बातचीत के पश्चात्, रामदेव के हृदय में श्रीकान्त के प्रति कुछ सद्भाव उत्पन्न होगया था, किन्तु ये शब्द बोलते समय तो उसने श्रीकान्त की तरफ भी रोषपूर्ण-दृष्टि से देखना प्रारम्भ किया। श्रीकान्त को, रामदेव का पिछले दिन का रौद्र स्वरूप याद होआया।

'मैं क्या कहूँ?' मानों अपने हृदय की गम्भीर-भावनाओं को कुचल रहा हो, इस तरह थोड़ा-सा रुककर रामदेव बोला। 'हिन्दू-जाति जैसी निर्दय-जाति, इस पृथ्वीतल पर दूसरी है ही नहीं। धर्मान्धता की भी कोई हद है?' इतना कहकर रामदेव फिर रुका। उसने, अपनी दृष्टि सुदूर-पश्चिम में अस्त होते हुए सूर्य पर डाली। फिर, मानों कोई चीज़ गले से नीचे उतार रहा हो इस तरह घूँट उतार लिया।

'हूँ' ज़रा शान्त होकर उसने फिर बोलना प्रारम्भ किया–उस दिन, सवर्णों का कोई त्यौहार था। गाँव के लोगों का एक बड़ा–सा झुण्ड, गाजे–बाजे से बाहर निकला। ढोल तथा तासों के बजने की आवाज़ सुनकर, हम सब लड़के देखने दौड़े। लड़कों के बाहर निकलते ही, सब के माँ–बाप आआकर अपने बच्चों को वापस लौटाने लगे। मेरी माँ भी आई। सबलोगों के चेहरों पर भय छा रहा था। 'चलो, वापस लौट चलो, नहीं तो मार डालेंगे' यह कँपा देनेवाली बात, सबलोगों के मुँह से धीरे–धीरे 'निकल रही थी। बहुत–से लड़के वापस लौट गये। एक लड़का और एक लड़की, दोनों वहीं खड़े रहे। उन्हें, उनके घर से कोई लेने न आया था। क्योंकि, उनके घर में कोई था ही नहीं। मैंने, अपनी माँ से, वापस लौटने से इनकार कर दिया और 'मैं तो देखूँगा ही' ऐसी जिद की। उसने, मुझे अनेक प्रकार से समझाया, भय भी बतलाया, किन्तु, शायद मुझे एक कटु–अनुभव होने ही वाला था, इसलिये मैंने अपनी ज़िद न छोड़ी। अन्त में, वह भी मेरे पास ही खड़ी रही।

•वह झुण्ड, गाँव से निकलकर पश्चिम दिशा की तरफ जारहा था। सूर्यास्त हो चुका था, किन्तु अभीतक अन्धकार न फैला था। हो–हल्ला मचाता हुआ वह झुण्ड, आगे बढ़ने लगा। उसके बीच में, पांच–छः पुरुष धुनते–धुनते कूद–फाँद मचा रहे थे। उनके मुँह से निकली हुई वाणी को सारा झुण्ड दोहराता जाता था। मेरी समझ में न आया, कि यह सब क्या है। मैंने, अपनी माँ से पूछा। किन्तु, उसने भयभीत–चेहरे से मेरी तरफ देखकर और मुँह पर उँगली धरकर, मुझे मौन रहने का इशारा किया। झुण्ड, जब हमसे दूर जाने लगा, तब मैं भी आगे बढ़ा। मेरी माँ ने मुझे पीछे खींचने का प्रयत्न किया, किन्तु मैं अपनी हठ पर अड़ा रहा और मा को भी विवश होकर मेरे साथ–साथ आगे बढ़ना पड़ा। इस तरह, हमलोग उस झुण्ड की तरफ चलने लगे।

झुण्ड-से, दो सौ या ढाई सौ कदम की दूरी पर हमलोग खड़े थे। वहाँ से, सारा दृश्य साफ-साफ दीख पड़ता था। मैंने देखा, कि उस झुण्ड में हमारे गाँव का एक भी बनिया या ब्राह्मण न था। अधिकतर कोरी लोग थे और शायद उनकी सारी बस्ती ही उमड़ आई थी। अन्य जाति के लोग भी शायद झुण्ड में होंगे ही। वह सारा झुण्ड, एक झाड़ के पास जाकर रुक गया। झाड़ के पास ही, एक बड़ा-सा खम्भा गड़ा था, जिस पर चिन्दे जैसे कपड़े लिपटे हुए थे। एक-दो जगह लाल-लाल दाग भी दिखाई पड़ते थे। उस खम्भे के पास एक बड़ा-सा पत्थर था। पत्थर में कुछ खुदा हुआ था। उसके चारों तरफ छोटे-छोटे पत्थर रखकर आड़ बनाई गई थी। इस जगह के पास पहुँचते ही, झुण्ड में कोलाहल की वृद्धि हुई और धुननेवाले लोग जोर-शोर से अपना सिर हिलाने लगे। उनके हो-हल्ले से, आसपास का वातावरण कम्पित होने लगा। अभी तक रात न पड़ी थी, फिर भी वह सारा काण्ड भयङ्कर जान पड़ता था। मुझे, उससे डर लगा, अतः मैंने अपनी माँ की तरफ देखा। वह तो विमूढ़-सी बनगई थी। हमारे पीछे ही, वे दोनों बच्चे खड़े थे। उनके चेहरों पर भी भय छाया हुआ था।

उस नक्काशीदार पत्थर के पास दिया जलाया गया। मेरी माँ ने, वहीं खड़े-खड़े भय से हाथ जोड़े और मुझे सिर झुकाने को कहा। मुझे, कुछ भी खयाल न रहा, मैंने सिर झुका दिया। उन लड़के-लड़कियों ने भी भय से सिर झुका दिये। हमलोगों की आँखे, उसी पत्थर पर लगी थीं। मेरी माँ ने कहा—'माताजी, मेरे बच्चे का कल्याण करना'। तब मैं समझा, कि ये माताजी हैं। मैंने, फिर हाथ जोड़े।

मेरे देखते-ही-देखते, वह सारा झुण्ड कुछ पीछे हटा। उस झुण्ड में से दो हृष्ट-पुष्ट कोरी आगे बढ़े। उनके पास दो-दो

बकरे थे और हाथों में चमकते हुए छुरे। यह देखकर, मै थरथरा उठा और अपनी आँखे बन्द कर लीं।

क्षणभर के भीतर ही, उन बकरों का वध होगया। उस पत्थर पर, यानी माताजी पर रक्त डाला गया। अंजलिभर रक्त सारे झुण्ड पर छिड़का गया। हो-हल्ला बढ़ने लगा। सारा झुण्ड पागल हो उठा हो, इस तरह नाचने लगा। मैंने, अपनी माँ की तरफ देखा, उसने डरते-डरते मुझे अपने पार्श्व में ले लिया। मेरी समझ मे, यह सब बिलकुल न आया। मै, अपनी माँ से कुछ पूछने के लिये मुँह खोलना ही चाहता था, कि इसी समय हमलोगों की तरफ एक पत्थर आया और उसके साथ ही 'अरे कौन हो?' की कँपा देनेवाली आवाज़ भी सुन पड़ी। सारा झुण्ड हमलोगों की तरफ घूम पड़ा। मेरीं माँ कॉपने लगी।

'कौन हो? चमार हो? मेहतर हो? माताजी को अपवित्र करने आये हो?' आदि आवाजें एक के बाद एक सुनाई देने लगीं। सारा झुण्ड 'मारो सालों को' चिल्ला उठा और भीषण-कोलाहल की वृद्धि के साथ-ही-साथ हमलोगों पर पत्थरों की बारिश शुरू होगई। मेरी माँ और मै, दोनों भागे। हमारे साथ ही वे दोनों लड़के-लड़की भी भागे। किन्तु, वह झुण्ड जहाँ का तहाँ न खड़ा रहा। उसमें से बहुत-से लोग, हमारे पीछे दौड़े। मेरे साथ-साथ भागी आती हुई उस लड़की के सिर मे एक पत्थर लगा, जिससे वह चिल्लाकर गिर पड़ी। उसे खड़ी करने का प्रयत्न करते हुए उसके भाई के हाथ में एक पत्थर लगा, जिससे वह भी चीख उठा। मैं खड़ा रहना चाहता था, लेकिन मेरी माँ ने मेरा हाथ पकड़कर खींचा और हम दोनों वहाँ से भागे। सनसनाता हुआ एक पत्थर मेरे कान के पास होकर निकल गया। मै, और ज़ोर से भागने लगा। इसी समय, एक पत्थर मेरी माँ की पीठ में आकर लगा, जिससे वह गिरती-गिरती रह गई। खून झरते हुए सिर से वह लड़की और लड़का, दोनों दौड़कर हमारे

साथ होगये। भागते-भागते, अपने मुहल्ले के पास पहुँचकर हमने साँस ली। पत्थर मारनेवाले हमसे बहुत पीछे रह गये थे, लेकिन हमारे दिल की धड़कन शान्त न होती थी।

मुहल्ले में आते ही, मेरी माँ ने उस लड़की को अपने घर लाकर उसके सिर पर पट्टी बाँधी। थोड़ी देर रुककर, वे दोनों भाई-बहिन अपने घर चले गये। मैं, स्तब्ध होकर घर में बैठा रहा। मेरी माँ को जान पड़ा, कि मुझे कुछ होगया है, अतः उसने धूप जलाई और काना भगत को बुलाया।

५

पहली परेशानी.

बेचारे काना भगत जल्दी-जल्दी आये। उनके साथ ही, मुहल्ले के और भी बहुत-से लोग आगये। काना भगत ने, वहाँ आते ही मेरी माँ से कहा—'डरने की कोई बात नहीं है, यह तो यों ही घबरा गया होगा'। लेकिन, मैं तो अच्छी-तरह होश में था, फिर भी, मैंने जो दृश्य देखा था, वह आँखो के सामने से हट नहीं रहा था और मुझे अब भी ऐसा जान पड़ता था, मानों वह झुण्ड और वे दो छुरेवाले मनुष्य, हमलोगों के पीछे दौड़े चले आरहे हैं।

काना भगत ने मेरे पास आकर मेरी पीठ पर हाथ फेरा और मुझसे पूछा-'क्या होता है?'

'कुछ नहीं' मैंने जवाब दिया।

'जाओ, सबलोग अपने-अपने घर जाओ' कहकर काना भगत ने वहाँ इकट्ठे हुए सबलोगों को बिदा किया और फिर मेरी माँ से कहा—'मैंने तुमसे कहा था न, कि माता का बलिदान देखने न जाना?'

'मैं तो रामा को वापस बुलाने गई थी, किन्तु इसने मेरी बात ही न मानी'।

'तो दूर से देखकर वापस लौट आना था! ऐसी माता के कहीं दर्शन करने चाहिएँ?'

'तुम भी कैसी बातें करते हो-भगत! तुम्हारे मना कर देने के बाद भी क्या मैं वहाँ जासकती थी? रामा ने जिद की, इसलिये मुझे इसके साथ-साथ वहाँ तक जाना पड़ा। वहाँ जाने के बाद प्रणाम तो करना ही चाहिये न? और हमलोग तो बहुत दूर खड़े थे।'

'खैर, जो हुआ, सो ठीक। भगवान् का उपकार मानो, कि जिन्दा वापस लौट आये।' काना भगत ने बात खतम कर दी। लेकिन, मेरे हृदय में उठती हुई शंका का इससे समाधान न हुआ। मैंने, धीरे-से पूछा—

'लेकिन, उनलोगों ने हमें पत्थर क्यों मारे?'

'हमारी परछाई से उनकी माताजी अपवित्र होजातीं, इसलिये' मेरी माँने उत्तर दिया। मुझे, इस उत्तर से सन्तोष न हुआ। लेकिन, यह बात मेरी समझ में आगई, कि हमलोगों में अपवित्र कर डालनेवाली कोई चीज है और वह क्यों है, इस बात का किसी को पता भी नहीं है। मैंने, अधिक कुछ न पूछा।

'हमें, उसके नजदीक जाना ही न चाहिये' काना भगत बोले 'प्रत्येक बारह बर्ष के बाद गाँव में ऐसा बलिदान होता है। यह भी कोई धर्म कहा जासकता है! बेचारे मूक-बकरों का रक्त बहाना और सारे गाँव के चारो तरफ शराब की धार देना, यह भी कोई धर्मकार्य है? यह तो महान्-पापकार्य कहा जासकता है। इस तरह की माता को प्रणाम करने में भी पाप लगता है!'

मुझे, काना भगत की बात अच्छी मालूम हुई। मैंने, देवी के हाथ जोड़े थे, उसके लिये मुझे पश्चात्ताप हुआ और मैंने अपने मन में निश्चय किया, कि अब कभी उस माता के सामने सिर नहीं झुकाऊँगा।

'ठीक तो' काना भगत उठते-उठते बोले 'अब, मन में किसी प्रकार का भय न रखना। रामजी का नाम लो, वे सब का भला करेंगे। उनसे बड़ा इस सारी दुनिया में और कोई नहीं है।

मेरी माँ, भक्तिपूर्वक काना भगत् की तरफ देखती रही। भगत चले गये। उनके चले जाने के बाद, हमलोग बिछौना बिछाकर सोये। मुझे, उस रात की भली-भाँति याद है। सारी रात मुझे नींद न आई। वह झुण्ड, जल्लाद जैसे दो मनुष्य, वध किये हुए बकरे और पत्थरों की बारिश, आदि बातें प्रतिक्षण मेरी आँखों के सामने नाचती रहीं। काना भगत ने जाते-जाते कहा था, उन रामजी का नाम लेकर, सोने के लिये मैंने खूब करवटें बदलीं, लेकिन सबेरे तक मुझे किसी तरह नींद आई ही नहीं। पिछली रात जल्दी उठकर मेरी माँ मेरी खाट के पास आईं, तब मैंने झूठमूठ आँखे बन्द कर ली थीं, यह बात भी मुझे याद है।

दूसरे दिन, हमारे मुहल्ले में और पाठशाला में मुख्यरूप से यही बातचीत चलती रही। मास्टर ने, अत्यन्त-सहानुभूतिपूर्वक मुझसे सब बातें पूछीं और मुझे आश्वासन दिया। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, त्यों-त्यों यह बात भी भूलती गई और मै ऐसा बन गया, मानों वह घटना मुझे बिलकुल याद ही न रही हो। किन्तु, वास्तव में, मै उसे भूला न था। मेरे हृदय में, वह घटना दबी पड़ी थी और जब-जब मै 'हलकी-जाति' का हूँ, ऐसा भान करवानेवाली कोई स्थिति उत्पन्न होती, तब-तब उस प्रसंग की स्मृति उछलकर हृदय के समतल पर आजाती और मुझे थरथरा देती थी।

मेरे कोमल-हृदय पर, जो सब से पहली चोट लगी, उसका तो मैने वर्णन कर दिया। लेकिन, ऐसे-ऐसे अनेक प्रहार सह-सहकर, आज मै शून्यहृदय बन गया हूँ। मुझे, अनेक बार ऐसा जान पड़ता है, मानों मुझ में दया अथवा प्रेम का एक कण भी नहीं रह गया है। कभी-कभी तो जी चाहता है, कि हिन्दुओं को बीन-बीनकर मार डालूँ। और निश्चय ही मै ऐसा भयङ्कर बन गया होता! हिन्दू-मुस्लिम वैर की जो बातें हमलोग सुनते हैं, वैसा ही वैरी मैं भी बन गया होता! कौन है, यह मै पूछता ही नहीं और न यही देखता,

कि कौन है! सवर्ण जान पड़ते ही मैं उस पर प्रहार करता! लेकिन, मेरी माँ, काना भगत, मेरे मास्टर और एक बुढ़िया-ब्राह्मणी—ये सब मिलकर मेरे हृदय के दावानल को शान्त कर देते हैं! मेरी आँखों में हत्या करने के भाव आजाते हैं, लेकिन मैं खून करने के बदले प्रायः रो पड़ता हूँ।

'श्रीकान्तभाई!' रामदेव आँखे फाड़कर श्रीकान्त की तरफ देखता हुआ बोला 'मैं...मैं कभी-कभी घबरा उठता हूँ। मेरी समझ में नहीं आता, कि मुझे क्या करना चाहिये। कभी-कभी तो मेरे हृदय में वैर! वैर! की ध्वनि उठती है। लेकिन, जब मैं रास्ते के एक तरफ खड़ा होकर अपने पास से निकलनेवाले अनेक मनुष्यों को देखता हूँ, तब मन में यह प्रश्न पैदा होता है, कि क्या सचमुच ही ये सबलोग घातकी हैं? दीखने में तो बेचारे बिलकुल भोलेभाले जान पड़ते हैं, फिर हमलोगों के ही प्रति ऐसे क्रूर क्यों होजाते हैं? मुझे, इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिलता और मैं परेशान होता हुआ कहीं जाकर पड़ रहता हूँ।"

रामदेव, क्षणभर रुका और उत्तेजना को शान्त करने के बाद, उसने फिर कहना प्रारम्भ किया—

'मैं, गुजराती की पाँचवीं श्रेणी में पहुँचा, तब हमारे मास्टर का तबादिला होगया। वे गये, उस दिन मुझे ज़रा भी चैन न पड़ी। दूसरे लड़कों के साथ-साथ, मैं उन्हें तीन-चार कोस तक पहुँचाने गया और जब वहाँ से वापस लौटने लगा, तब मेरी आँखो से आँसू टपक पड़े। उनके जाने के बाद, एक और मास्टर आये। वे, दो महीने में ही चले गये और फिर न-जाने क्या कारण हुवा, कि चार महीनों तक वहाँ कोई मास्टर आया ही नहीं। अब, शायद यहाँ की पाठशाला बन्द होजायगी, इस ख़याल से गाँव के उत्साही माता-पिताओं ने अपने बच्चों को कोरड़ा गाँव में पढ़ने भेजना प्रारम्भ

किया। मैंने भी अपनी माँ से आज्ञा माँगी। उसने, काना भगत से सलाह करके, मुझे पढ़ने जाने की स्वीकृति दे दी। मैं, वहाँ जाकर अंग्रेज़ी की पहली श्रेणी में भरती हुआ।

वहाँ, मै पूरे तीन बरस रहा। लेकिन, इन तीन बरसों ने मुझे कुचल डाला। मास्टर, बहुत-अच्छे न थे, लेकिन ख़राब भी न थे, वहाँ, बरामदे में बैठना न मिला। पाठशाला के कमरे से लगभग पच्चीस क़दम दूर, सहन के चारों तरफ़ पत्थर की दीवार थी। मुझे, उसी के सहारे बैठना पड़ता था। सारी पाठशाला में, चमार का लड़का केवल मै ही था। मुझे, उस जगह बैठना बुरा लगता। अनेक बार इसके लिये मेरा हृदय दुःखी होपड़ता, लेकिन मेरे पास और कोई मार्ग ही न था। उधर, पढ़ने का उत्साह इतना अधिक था, कि पाठशाला छोड़ने को जी नहीं चाहता था। दिन में तीन बार मुझे अपने बैठने की जगह बदलनी पड़ती थी। जहाँ छाया होती, वहाँ जाकर मुझे बैठना पड़ता। परिणामतः, सबेरे यदि मै पाठशाला के इस दरवाजे की तरफ़ बैठता, तो शाम को दूसरी तरफ़ बैठना पड़ता। दूसरे विद्यार्थी, मुझे सदैव यह बात याद दिलाते रहते थे, कि मै चमार हूँ। अपने गाँव की पाठशाला में जाने के बाद, मेरा शर्मीलापन छूट गया था और मै हँसने-खेलने लगा था। लेकिन, यहाँ आने के बाद, मेरा हँसना-खेलना बिलकुल रुक गया। मुझे ऐसा जान पड़ता था, मानों इस दुनिया में मै अकेला ही हूँ। लड़के, मेरा मज़ाक करते, मुझे गालियाँ देते और कभी-कभी मुझ पर बेर की गुठलियाँ फेंकते या मेरी तरफ़ थूकते। मै, इन सब बातों को सहन कर लेता और घर जाते समय रास्ते में एकान्त पाकर चुपचाप रो लेता। कई बार मेरे मुँह से सहसा निकल जाता—'हे भगवान्! तूने मुझे चमार क्यों बनाया?' फिर तो मै इधर-उधर से सुनने लगा, कि पूर्वजन्म में मनुष्य ने जैसे पाप-पुण्य किये हों, उसी के हिसाब से इस जन्म में जाति मिलती है। तब

मेरे जी में आया, कि मैंने न-जाने कौन से घोर-पाप उस जन्म में किये थे, जो चमार होना पड़ा !

ये दुःख के दिन भी एक के बाद एक करके व्यतीत होते जारहे थे और मै पढ़ाई में आगे बढ़ता जारहा था। मेरी आयु भी बढ़ती जाती थी। मेरी माता की गोद और काना भगत का आशीर्वाद ही उन दिनों मेरे लिये जीवनामृत था। नहीं तो शायद मैं मर चुका होता।

प्रतिदिन सबेरे, मेरी माता मुझे प्रेमपूर्वक भोजन कराती और दोपहर के लिये रोटी बाँधकर मुझे बिदा कर देने के बाद ही ख़ुद जंगल को जाती। शाम को, जब मैं वापस लौटता, तब वह घर के द्वार पर खड़ी-खड़ी मेरी प्रतीक्षा करती मिलती और मुझे देखते ही प्रसन्न होपड़ती थी। उसका मुँह देखते ही, मै भी अपना दुःख तथा अपमान भूल जाता। शाम होने पर काना भगत वहाँ आते और अनेक मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद-बातें सुना-सुनाकर मुझे प्रसन्न करते थे। इन दिनों, मुझे इस बात का किंचित् भी पता न था, कि मेरी माँ कैसा कष्ट सहन कर रही है ! मैने, कभी उससे पूछा भी न था। मेरे लिये दूध, रोटी और नाश्ता कहाँ से आता है, इस बात की तरफ मैंने कभी ध्यान ही न दिया। एक दिन, मैं अकेला था, तब भगत ने मुझसे कहा—

'रामभाई ! अब तो दो महीने के बाद तेरी पढ़ाई ख़तम हो-जायगी, न ?'

'हाँ, लेकिन उसके बाद मैं प्रेमनगर पढ़ने जाऊंगा'।

काना भगत, मेरा उत्तर सुनकर चिन्ता में पड़ गये और बोले—

'वहाँ, अपनी जातिवालों को रहने की जगह नहीं मिल सकती। अब, इतनी ही पढ़ाई बहुत है। तुझे कहाँ बैरिस्टर बनना है ?'

'नहीं-नहीं, मुझे बहुत-ज़्यादा पढ़ना है। वहाँ, साहबलोगों का

कोई स्कूल है, ऐसा सुना है। उसमें, लड़कों को मुफ्त रखते हैं। कपड़ों का भी खर्च नहीं देना पड़ता।'

'वहाँ, अपने नहीं जाना है, राम! वहाँ जाने पर आदमी बेधरम होजाता है।'

मैने भी, यह बात सुनी तो जरूर थी, लेकिन मैं बेधरम होजाने की बात पूरी तरह समझता न था। मैंने पूछा—

'यानी, क्या होजाता है?'

'अपने को वे क्रिश्चियन बना देते हैं' काना भगत जरा रुके और फिर बोले—'और अब तुझे जरा अपनी माँ की तरफ भी तो देखना चाहिये न! वह बेचारी अब और कितने वर्षों तक इसी तरह पचती रहेगी?'

'हाँ' बोलकर मैं विचार में पड़ गया। मैं, अधिक तो नहीं समझ पाया, लेकिन फिर भी मैंने तुरन्त ही पूछा—'तो क्या मुझे कमाना चाहिये?'

'जरूर ही। इसके बिना काम कैसे चल सकता है? लेकिन, तू क्या काम कर सकेगा? कपड़े बुनने का काम तो तूने सीखा नहीं है। हाँ, मजदूरी करे, तो भले ही।'

'और कोई काम नहीं मिलेगा?'

'हम चमारों को और कौन-सा काम मिलेगा? हमलोग क्या व्यापार कर सकते हैं? तू, चाहे जितना पढ़े, लेकिन क्या कभी तू मास्टर होसकता है? हमें तो अपनी जाति के अनुसार ही काम करना पड़ेगा न?'

'अपने मुहल्ले के बहुत-से लोग प्रेमनगर में रहते हैं न? वे सब वहाँ पर क्या काम करते होंगे?'

'तीन-चार आदमी मिल में काम करते हैं, दो जने स्टेशन पर पेटमैन हैं, और एक आदमी कहीं चपरासी है। शहर में छुआ-छूत का सवाल बहुत-ज़्यादा नहीं है, न!'

'तब तो मैं प्रेमनगर ही जाऊँगा! लेकिन............मेरी आगे पढ़ने की इच्छा भीतर से प्रेरणा कर रही थी। मै, कुछ कहना ही चाहता था, कि इसी समय मेरी माँ बाहर से आगई। उसके बैठते ही काना भगत ने उससे पूछा—

'अब रामभाई के लिये क्या करोगी?'

मेरी माँ ने हँसकर कहा—'जैसी इसकी इच्छा हो'।

'इसका इरादा तो पढ़ने का है'।

'तो मैं कब मना करती हूँ? मैं तो अभी काम कर ही रही हूँ, न! मेरे लिये तो मेरा राम ही सब कुछ है।' यह सुनकर, मेरे आनन्द तथा मेरी भक्ति का पार न रहा।

'लेकिन, माँ! अब क्या मुझे कमाना न चाहिये?'

'तो क्या मेरी हड्डियाँ अभी काम नहीं देरही हैं? अभी तो मेरे शरीर में इतनी ताक़त है, कि मै कमाकर तीन आदमियों का पेट भर सकूँ। तुझे जितना पढ़ना हो, निश्चिन्ततापूर्वक उतना पढ़ और होशियार हो। फिर, बुढ़ापे में तुझे ही तो मेरी सेवा करनी है न?'

काना भगत विचार में पड़ गये।

'लेकिन, अब तो पढ़ने के लिये शहर में जाना पड़ेगा और सो भी उन साहबलोगों के स्कूल में?'

'हाँ!' मेरी माँने लम्बी-साँस खींची। मैं, उसकी तरफ देखने लगा। 'हमें, वहाँ नहीं भेजना है। वहाँ तो उस मेघा के टीपू की-सी

दशा होसकती है। मेरा अकेला लड़का अगर बेधरम होजाय, तो मैं किस धरती में समाऊँगी ?' उसकी वाणी ढीली पड़ गई। बात ख़तम होगई।

'ख़ैर, होगा। अभी से चिन्ता करने की क्या जरूरत है? अभी तो दो-तीन महीने बाकी हैं, फिर देखा जायगा। कोई रास्ता ढूँढ निकालेंगे। काना भगत ने मामला ख़तम करते हुए कहा।

मैं, विचार करता हुआ मौन बैठा रहा। काना भगत, राम का नाम लेते हुए उठ गये।

४

प्रेमनगर में.

काना भगत के चले जाने के बाद, मेरी माँ बड़ी-देरतक गम्भीर-विचार मे बैठी रही। उसकी आकृति पर, उस समय जो विषाद था, वह मुझे आज भी याद है। यही विषाद आगे बढ़ता जायगा और अन्त में उसे पूरी तरह घेर लेगा, इसकी मैंने या उसने कभी कल्पना भी न की थी।

वह दिन बीत गया और मैं पढ़ने जाता रहा। शनैः-शनैः मेरी परीक्षा के दिन नजदीक आने लगे। मै, ज्यों-ज्यों साहबलोगों के स्कूल की बातें सुनता था, त्यों-हीं-त्यों मेरा उसके प्रति आकर्षण बढ़ता जारहा था। मै, अधिकाधिक आग्रहपूर्वक वहाँ जाने की स्वीकृति माँगने लगा। अन्त में, काना भगत ने साहस दिलाया, तब मेरी माँने मुझे वहाँ भेजना स्वीकार किया।

प्रेमनगर, एक बड़ा शहर है। मुझे वहाँ भेजते हुए, मेरी माँ की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। फिर भी, अपनी छाती मजबूत बनाकर, एक जाती हुई गाड़ी के साथ उसने मुझे वहाँ भेजा। बहुत-दूरतक, वह मेरी गाड़ी के साथ-साथ मुझे भेजने आई और वापस लौटने से पूर्व, मुझे अनेक शिक्षाएँ दी थीं। मेरे मन में, एक तरफ तो पढ़ने जाने का उत्साह था और दूसरी तरफ माता का मधुर-

प्रेम ! आख़िर जगह पर पहुँचने तक भी, मेरे मन में दो-तीन बार वापस लौटने के विचार उत्पन्न हुए थे।

मै गया। प्रेमनगर नजदीक आने पर, कभी-कभी तो मेरा मन उछलने लगता और कभी खिन्न होजाता था। प्रेमनगर के आलीशान-मकान और बड़े-बड़े राजमार्ग, मुझे आश्चर्य में डाल रहे थे। सारा शहर पार करके, हमलोग शहर के दूसरे किनारे पहुँचे। वहीं साहबलोगों का स्कूल था। पाठशाला से थोड़ी दूरी पर एक झाड़ के नीचे हमारी गाड़ी खड़ी हुई और हम डरते डरते एक बड़े-भारी दरवाज़े में दाखिल हुए। मेरे लिये, यह सब अद्भुत था। मै दरवाज़े में घुसा, कि फौरन ही एक भाई मुझे मिले। आगे चलकर तो उनसे, मेरी बहुत-अच्छी पहचान हो गई थी। वे, हमलोगों को मेहमानखाने की तरफ ले गये। बग़ीचे के बीचोबीच से निकली हुई सुन्दर-सड़क पर से जाते समय, मेरे मन में नाना प्रकार के विचार उत्पन्न हुए।

हमारे लिये, नहाने-धोने और खाने-पीने की व्यवस्था तुरन्त हो गई। भोजन से निवृत्त होजाने के बाद, मुझे छात्रालय में ले जाया गया। वहाँ, एक बहिन थीं। उनसे, मुझे ले जानेवाले भाई ने मेरे विषय में बातचीत की। उन बहिन ने, हँसकर मुझे अपने पास बुलाया और पूछा—

'यहाँ रहोगे न ?'

मैंने, सिर हिलाकर हाँ की।

बस, काम पूरा हो गया। जिसके साथ मै आया था, वे भाई आश्चर्यचकित होकर लौट गये और मै छात्रालय में दाखिल हुआ। दो-चार दिन तो ज़रा अटपटा जान पड़ा, लेकिन फिर वहाँ के वातावरण ने मुझे अपने वश में कर लिया। मुझ जैसे, लगभग पचास लड़के वहाँ रहते थे। मै, उन सब में हिल-मिल गया। उस छात्रालय के तो अनेक संस्मरण हैं, लेकिन उन सब को कहने के लिये समय

नहीं है। मै, जी लगाकर पढ़ने लगा। वहाँ के रीति-रिवाज और प्रार्थना आदि से मैं घबराता था। लेकिन, सब ने मुझे साहस दिलाया, कि, यह तो दस-पाँच दिन अटपटा जान पड़ेगा, फिर नहीं। और हुआ भी ऐसा ही। मेरी भी आदत वैसी ही बन गई।

तीन महीने के बाद, छुट्टियाँ पड़ीं। इस समय, जिसे अपने घर जाना हो, उसे जाने की स्वतन्त्रता थी। इन तीन महीनों के भीतर ही, मेरी माँ की दो चिट्ठियाँ आ चुकी थीं। इसलिये, मै घर चला गया। मुझे देखकर, मेरी माँ के आनन्द की कोई सीमा न रही। किन्तु, इन तीन ही महीनों में, मेरे बोलचाल तथा रहन-सहन में अजीब-परिवर्तन होगया था। मुझे देखकर तथा मेरी बातचीत सुनकर, मेरी माँ आश्चर्य तथा हर्ष में भर जाती। किन्तु, काना भगत मेरी बातें सुनकर, कुछ-कुछ चिन्तातुर होजाते थे।

छुट्टी खतम होते ही, मै वापस लौटने की तैयारी करने लगा। किन्तु, काना भगत ने इसमें बाधा डाली। उन्होंने, मेरी माँ से कहा- 'यह लड़का जरूर बेधरम होजायगा और फिर हमलोगों में से किसी का भी न रहेगा!' उनकी बात सुनकर, मेरी माँ डर गई। उसने, मुझे रोक दिया। मै, अकुलाने लगा और अन्त में रो पड़ा। माँ को, इससे खूब दुःख हुआ, किन्तु उसने मुझे जाने की आज्ञा तो किसी भी तरह न दी। लगभग छः महीने उसी तरह व्यतीत होगये। मैं देखता था, कि मेरी माँ और काना भगत, दोनों ही मेरे विषय में अत्यन्त-चिन्तित रहते। अब, मैं कुछ समझ-दार भी होगया था। मैंने, अपनी माँ से कहा - 'मै बेधरम नहीं होऊँगा, तू मुझे जाने दे'। लेकिन, उसने काना भगत की तरफ उँगली दिखलाकर मौन धारण कर लिया। अब सारा आधार काना भगत पर रह गया।

उन्होंने, एक रास्ता ढूँढ निकाला। प्रेमनगर में, मिल में, मेरे

मुहल्ले के एक आदमी काम करते थे। उन्हें, मैं मामा कहता था। उन्हीं के यहाँ मुझे रखने की व्यवस्था सोची। इस तरह, हरिपुर में छः महीने रहने के बाद, मेरा प्रेमनगर जाना तय हुआ। इस वार, मेरी मॉने मुझे बहुत-सी चेतावनियाँ दीं और रोते-रोते कहा, कि—'देखना, कहीं बेशरम मत होजाना! तू, उन लोगों के नजदीक भी न जाना।'

'मैं प्रेमनगर में उन्हीं अपने मामा के यहाँ आया। उन्होंने, मुझे प्रेम से अपने यहाँ ठहराया। वह बेचारा खुद गरीब था और स्वयं अपना कार्य भी बड़ी कठिनाई से चला पाता था, लेकिन फिर भी काना भगत के आग्रह से उसने मुझे अपने साथ ही रख लिया। रहने का सवाल तो हल होगया, लेकिन अब पढ़ने कहाँ जाता? मुझे, वहाँ की जनसाधारण की पाठशाला में पढ़ने दिया जायगा? मेरे मामा या मैं, इस सम्बन्ध में कुछ भी न जानते थे। उन्होंने मुझसे कहा, कि—'मैं मिल में किसी से पुछ आऊँगा'।

रात को लौटकर उन्होंने मुझे समाचार सुनाये, कि—'बड़े स्कूल में, पहले तो नहीं पढ़ने देते थे, लेकिन अब क़ानून बन गया है, इसलिये कोई मना नहीं कर सकता। फिर भी, हमारी जाति के लड़कों को दूसरे लड़के, बहुत परेशान करते हैं। मेरी आँखों के सामने, कोरड़ा ग्राम की पाठशाला के दृश्य उपस्थित हो गये। 'फिर वापस हलकी-जाति बनने का समय आगया' यह बात मेरे दिमाग़ में तेज़ी-से दौड़ गई। किन्तु, दूसरा कोई रास्ता न था। मै, पाठशाला में जाने को तैयार हुआ। मामा, मेरे साथ गये। उस आश्रम में और इस पाठशाला में महान् वैषम्य था! हमलोगों को, बाहर ही खड़ा रक्खा गया। जो क्षुद्रता मैंने कोरड़ा में देखी थी, वही क्षुद्रता यहाँ भी मौजूद थी। हेडमास्टर ने, अपने ऑफिस से बाहर निकलकर हमसे पूछा—'कहाँ से आया है?'

'हरिपुर से' मैने धीरे-से उत्तर दिया।

'क्या पढ़ता है ?'

'अंग्रेजी की सातवीं किताब'।

'छठे तक कहाँ पढ़ा है ?'

'कोरड़ा में'

'अब और पढ़कर क्या करेगा ?' आँखे समेटकर उसने मुझसे पूछा। मुझे, इसका कोई उत्तर न सूझ पड़ा। मै, डर उठा। मेरे पीछे खड़े हुए बेचारे मेरे मामा भी घबरा उठे।

'पढ़कर क्या करेगा ? घर बैठा-बैठा मजदूरी करके कमा क्यों नहीं खाता ? यहाँ, फिजूल हैरान होने क्यों आया है ? यहाँ के लड़के तेरा सिर तोड़ डालेंगे।'

हम दोनों, एक-दूसरे की तरफ देखने लगे।

'बोल, क्या चाहता है ? दाखिल होना हो, तो भरती कर लूँ और वापस जाना हो, तो वापस चला जा।'

हम दोनों में से, किसी ने भी उत्तर न दिया।

'बोल, जल्दी बोल, क्या चाहता है ?'

'पढ़ूँगा' मैने घबराते हुए उत्तर दिया। उसने, फौरन अपना रजिस्टर मँगाया और मेरा नाम लिखकर, मुझे सातवीं कक्षा का कमरा बतला दिया। मेरे साथ उसने अपना चपरासी भेजा। मेरे मामा, स्तब्ध होकर मेरी तरफ देख रहे थे। उनसे हेडमास्टर ने कहा—'अब तुम लौट जाओ और भगवान से प्रार्थना करो, कि यह भला-चंगा वापस लौटकर घर आ जाय।' वे बेचारे, दयापूर्ण-दृष्टि से मेरी तरफ देखते हुए वापस लौटे और मै चपरासी के साथ धड़कते हुए हृदय से कक्षा के कमरे के पास पहुँचा।

चपरासी ने, मुझे बाहर खड़ा कर दिया और भीतर जाकर मास्टर से यह बात बतलाई। मैंने, बाहर ही खड़े-खड़े देखा, कि मास्टर के चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ दौड़ गई। उन्होंने, मुझे भीतर आने को कहा। मै, डरता-डरता भीतर गया। सब विद्यार्थी, मेरी तरफ देखते रह गये। दो तीन लड़के मुझे देखकर हँसे भी। मास्टर ने, मुझे एक तरफ की खाली बेंच पर बैठने को कहा। मैं, बैठा आर थोड़ी ही देर में क्लास का कार्य फिर प्रारम्भ होगया।

दोपहर तक, मैं अपनी ही जगह पर बैठा रहा। न तो मास्टर ही मुझसे बोले और न लड़के ही। हाँ, सबलोग बार-बार मेरी तरफ देखते अवश्य थे। मै, घबराता, अकुलाता और उस आश्रम को याद करता हुआ चुपचाप बैठा रहा।

दोपहर को, छुट्टी की घण्टी बजी। सब लड़के उपद्रव तथा शोर-गुल करते हुए उठे। मुझे क्या करना चाहिये, यह मेरी समझ में न आया। मास्टर ने, जरा सहानुभूतिपूर्ण-स्वर में मुझसे कहा-'तू अभी यहीं बैठ, मुझे तुमसे कुछ बातें करनी हैं'।

लड़के, मेरी तरफ देखते और मेरा मज़ाक़ करते हुए, एक के बाद एक, कक्षा से बाहर गये। सारे कमरे में अकेला मैं ही शेष रह गया। अब, मास्टर मेरे पास आये और उन्होंने मुझसे धीरे से पूछा—

'कहाँ से आया है?'

'हरिपुर से'

'यहाँ कहाँ रहता है?'

मैंने, अपने उन सम्बन्धी का नाम तथा पता बतलाया।

'पहले और कभी यहाँ आया था?'

मैंने हाँ की और प्रेमाश्रम के अपने निवास की सब बातें कह सुनाईं।

'इस बार वहाँ क्यों नहीं गया?'

'मेरी माँ ने मना कर दिया। वह कहती है, कि वहाँ बेधरम कर देते हैं।'

'नहीं-नहीं, ऐसी तो कोई बात नही है!' मास्टर ने फौरन ही कहा। यह सुनकर, मुझे इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा हुई।

'क्या वहाँ बेधरम नहीं करते?' मैंने पूछा।

'नहीं, बेधरम नहीं करते। ललचाते जरूर हैं, लेकिन उस लालच में न पड़े, तो कोई बात ही नहीं है। देख, तेरा नाम क्या है?' मास्टर ने, अत्यन्त-प्रेम से पूछा।

'रामदेव' मैंने जवाब दिया।

'हाँ, रामदेव! देख, जो तू यहाँ रहेगा, तो लड़के किसी दिन तुझे मार बैठेंगे। यहाँ, ऐसा कानून बन गया है, कि हलकी-जाति के लड़कों को भी पढ़ाना ही चाहिये। लेकिन, शहर के लोगों और खुद हेडमास्टर को यह कायदा पसन्द नहीं है। चार महीने पहले पाँच-सात लड़के आये थे, लेकिन उन सब को अपनी दुर्दशा करवाकर यहाँ से वापस जाना पड़ा। उनमें से, एक बेचारे का तो सिर ही फूट गया था। आज, वे सभी 'प्रेमाश्रम' की पाठशाला में पढ़ते हैं। और, तुझे अगर आश्रम में न रहना हो, तो भी कोई बात नहीं। वहाँ, केवल पढ़ने के लिये भी जा सकते हैं।'

मैं, कुछ भी उत्तर न दे सका। लेकिन, मुझे वे मास्टर दयालु तथा सच्ची-सलाह देनेवाले जान पड़े। मैंने, हृदय से उनका उपकार माना। लेकिन, मुझे क्या करना चाहिये, इस उलझन से मेरी परेशानी

बढ़ने लगी। माँ और काना भगत ने, उस आश्रम से दूर रहने की जो शिक्षाएँ दी थीं, वे सब मेरी आँखों के सामने घूमने लगीं। मुझे विचार में पड़ा देखकर मास्टर ने कहा–

'क्यों ? क्या सोच रहा है ? मैं, तुझे यहाँ पढ़ने से मना नहीं करना चाहता। लेकिन, यहाँ तेरा भला नहीं होसकता। यहाँ, तेरा चित्त ही पढ़ने में न लग सकेगा।'

मैं, कुछ न बोला। मास्टर भी, बिना कुछ अधिक कहे–सुने, मुझे थोड़ा–सा साहस तथा आश्वासन देकर चले गये।

७

बात अधूरी रही

वह दिन तो बीत गया। शाम को, जल्दी ही वापस लौटकर मैं छोटी-सी कोठरी में बैठा। मुझे, खूब दुःख हुआ। पढ़ने का उत्साह, मानों भीतर-ही-भीतर कुचला जारहा हो, ऐसा जान पड़ा। मैंने, कोठरी के दरवाजे बन्द कर लिये और एक कोने में बैठकर खूब रोया। इससे, मन का भार कुछ हलका हुआ। लेकिन, क्या करना चाहिये, यह नहीं समझ पड़ा। 'हे भगवान्! मुझे चमार क्यों बनाया?' मेरे मन का यह अस्पष्ट-प्रश्न, प्रार्थना के रूप में परिणत हो गया। मैं सच कहता हूँ, कि उस दिन एकान्त में आँसू बहती आँखों से मैंने ईश्वर को याद किया और उसकी सहायता की याचना की। रात को मेरे मामा आये। उन्होंने, बड़े प्रेम से मेरे सब समाचार पूछे। किन्तु, मैंने अपने मन का दुःख उन पर प्रकट न होने दिया। उन्हें चिन्ता में न डालना चाहिये, इतनी समझ तो अब मुझ में पैदा होगई थी।

दूसरे दिन, मैं फिर पाठशाला गया। तब, सारे दिन में कई बार यह बात मेरे कानों पर आई कि—'ये चमार अब फिर यहाँ आने लगे हैं'। मैं, भय से काँपता था। प्रतिक्षण मेरा यह विश्वास दृढ़ होता जाता था, कि यह लड़कों का झुण्ड मुझे पीस डालेगा। किन्तु, धीरे-धीरे एक सप्ताह निर्विघ्न समाप्त होगया।

आठवें दिन, एक साधारण घटना घटी, किन्तु उसने एक बड़े बवाल की शक्ल ले ली। एक उपद्रवी-लड़के ने, मुझ पर बेर की गुठली फेंकी। उसे देखकर, दूसरे लड़के ने भी फेकी। एक तीसरे ने जमीन से एक कंकर उठाकर मुझ पर फेंका। इस तरह, दस-पन्द्रह लड़कों का झुराड उपद्रव करने का उपक्रम कर रहा था। किन्तु, इसी समय दूसरी तरफ से आनेवाले दो लड़के मेरे पास आकर खड़े होगये और उन्होंने उस झुराड को उपद्रव करने से रोका। उन्होंने, मुझे आश्वासन दिया, कि तू डरना मत, तेरा कोई नाम भी नहीं ले सकता। अबतक, मै भय से कॉप रहा था। उनका आश्वासन मिलने पर रो पड़ा। उन दोनों में से एक ने मुझे चुप रहने के लिये समझाया। लेकिन, मै तो अधिकाधिक रोता जा रहा था। उसे, मेरे प्रति सहानुभूति हुई। वह, मेरे बिलकुल नजदीक आ गया और मेरी पीठ पर हाथ धरकर मुझे चुप रखने का प्रयत्न करने लगा। वह स्पर्श, मुझे अत्यन्त-मीठा जान पड़ा। किन्तु, इससे मेरी समस्त वेदनाएँ तथा भावनाएँ जाग्रत हो उठीं और मैं खूब जी खोलकर जोर से रो पड़ा। मै, वहीं बैठ गया। वे दोनों भी मेरे पास ही बैठ गये और मेरे शरीर पर हाथ फेरने लगे। किन्तु, इसी समय उस झुराड से तीन-चार लड़के आगे निकल आये और जोर जोर से चिल्लाने लगे-'मारो साले रोवने को और निकाल दो बाहर'। बस, थोड़ी ही देर में तो उपद्रव शुरू हो गया। उन दोनो लड़कों ने मुझे बचाने का प्रयत्न किया, किन्तु वे बेचारे भी पिट गये और मेरी तो पीठ ही तोड़ दी गई। यह सारा काराड, स्कूल के निचे मैदान में हुआ था। ऊपर, मास्टरों तथा विद्यार्थियों को ज्योंही इस बात की खबर लगी, कि त्योंही सबलोग दौड़कर वहाँ आगये। थोड़ी ही देर में, मेरे आसपास खासी-भीड़ जमा होगई। हेडमास्टर और मेरी कक्षा के मास्टर, उस झुराड को चीरकर मेरे पास आये। 'हेडमास्टर ने........' यह कहते-कहते,

रामदेव की नजर टेकरी की तरफ आते हुए दो व्यक्तियों पर पड़ी। उसकी नजर पड़ते ही, श्रीकान्त का ध्यान भी उधर आकर्षित होगया। आनेवाले, हरिदास सेठ और उमादेवी थे। श्रीकान्त चौंका। उसे, भय प्रतीत हुआ। रामदेव ने देखा, कि श्रीकान्त कुछ अशान्त-सा हो उठा है।

"क्यों, क्या आपके माता-पिता हैं?"

"हाँ, आज शायद इधर ही घूमने आगये"।

"तो फिर हमलोग......"

"नहीं-नहीं, अभी आपके जाने में तो डेढ़ घण्टे की देरी है और उसके अलावा मैं आपके साथ ही जो चलनेवाला हूँ!"

यह कहता हुआ श्रीकान्त उठा। उसके साथ ही रामदेव भी उठ रहा था, किन्तु श्रीकान्त ने उसे कुछ देर बैठने को कहा। टेकरी के नजदीक ही हरिदास सेठ और उमादेवी, दोनों धीरे-धीरे चले आ रहे थे। चाँदनी रात होने के कारण, सब-कुछ स्पष्ट दिखाई दे रहा था। श्रीकान्त, टेकरी उतरकर उनके सामने आया। श्रीकान्त ने देखा, कि हरिदास सेठ के चेहरे पर थकावट तथा चिन्ता स्पष्ट झलक रही है।

"क्यों, क्या घूमने निकले हैं?" श्रीकान्त ने फीकी-हँसी हँसकर पूछा।

"घूमने के लिये तो इतनी दूर तक मैं कब जाता हूँ? लेकिन, जब से तू चला आया, तब से मन में हर्ष की रेखा भी नहीं उठती। यही नहीं, मन में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प पैदा हो रहे हैं।" हरिदास सेठ ने कहा।

श्रीकान्त, चिन्तातुर होगया। उमादेवी, उसके चेहरे की तरफ देख रही थीं।

"अब, घर चलते हो, न ?" हरिदास सेठ ने पूछा।

"मैं, यहाँ बातें कर रहा हूँ। ये भाई, अभी इसी गाड़ी में जानेवाले हैं।"

"बातें घर पर ही करना" हरिदास सेठ ने कहा "और श्रीकान्त, मुझे कुछ शक होता है। ये, किस जाति के हैं ?"

श्रीकान्त की आँखों के सामने, उसके उत्तर के पश्चात् का दृश्य आगया। वह, क्षणभर कुछ न बोला।

"चमार हैं ?" हरिदास सेठ ने पूछा।

"हाँ"

"तू इसके साथ ?" हरिदास सेठ दुःखपूर्ण स्वर में बोले।

"लेकिन, इसमें हर्ज क्या है ?"

"हर्ज ? हर्ज कुछ है ही नहीं ! तब तो फिर सविता को दुःखी करने की क्या जरूरत थी और हम सबलोग भी इस तरह क्यों दुःखी होते ?"

श्रीकान्त को, टेकरी पर बैठे हुए रामदेव की चिन्ता होने लगी। उसने, पीछे घूमकर देखा। रामदेव, टेकरी पर से उतरता आ रहा था।

"मैं, अभी घर आता हूँ" कहकर श्रीकान्त वापस लौटा। हरिदास सेठ, बिना कुछ बोले वहीं खड़े रहे। उमादेवी भी श्रीकान्त की पीठ पर अपनी दृष्टि जमाये रहीं।

"रामदेव, मुझे माफ करना। हमलोग, इस समय बातें नहीं कर सकते। मेरे पिता........"

रामदेव की आँखें बदल गईं। बातें करते समय, उसकी आकृति पर जो सहानुभूति के चिह्न अंकित हो रहे थे वह लोप होने लगे हों, इस तरह उसके चेहरे पर फिर पहले की-सी सख़्ती प्रकट होने लगी।

"आप हिन्दू हैं, यह सच है न ?"

"आप रोष न कीजिये। अभी, हमलोग घर चलते हैं। आप, मेरी स्थिति नहीं जानते।"

"मै जानता हूँ। केवल आपकी ही नहीं, आप जैसे बहुत-से लोगों की स्थिति मुझे मालूम है। लेकिन...लेकिन, आप मेरा इस तरह अपमान करेंगे, यह बात मैंने कभी सोची भी न थी। आपको, मुझे यहाँ लाना ही न था।"

"नहीं-नहीं, आपका अपमान करनेका मेरा कोई इरादा नहीं है। हमलोग, अभी घर चलते हैं। मैं, यथासम्भव....हॉ, जहाँ तक हो सकेगा, आपके साथ ही चलूँगा।"

रामदेव, उसी प्रकार की सख़्त-मुद्रा बनाये हुए श्रीकान्त के साथ चला। उमादेवी तथा हरिदास सेठ ने, इन दोनों को अपनी तरफ आते देखा। उमादेवी ने, समयसूचकता से काम लिया। श्रीकान्त, जब उनके पास आ गया, तब उन्होने कहा "तुमलोग जल्दी-जल्दी चलो, हम धीरे-धीरे आते हैं"। रामदेव ने, कड़ी-आँखों से उन दोनों की तरफ देखा और फिर श्रीकान्त के साथ ही वह भी जल्दी-जल्दी आगे चला।

"आपको, अब अपना हृदय मजबूत रखना चाहिये। आप, चाहे जितने प्रयत्न कीजिये, लेकिन श्रीकान्त को अब किसी तरह रोक ही नहीं सकते।" उन दोनों के कुछ दूर निकल जाने पर उमादेवी ने कहा।

"मै, अपने जीते-जी यह नहीं देख सकता"।

"आप और मैं, दोनों देखते ही रह जायँगे और वह चला जायगा। आप, मेरा कहना मानिये और वास्तविक-स्थिति समझने का प्रयत्न कीजिये।"

"यानी, तुम भी......" हरिदास सेठ ने खाँसकर गला साफ करने के बाद कहा "इसी मार्ग को प्रोत्साहन देती हो, यही बात है, न ?"

उमादेवी चुप रहीं। दोनों, धीरे-धीरे घर की तरफ चलने लगे।

"श्रीकान्त!" आगे जाते हुए रामदेव तथा श्रीकान्त के बीच बातचीत शुरू हुई। "क्या आप और आपके माता-पिता एक-से विचार नहीं रखते ?"

"हाँ, इस समय तो यही बात है" नीची-दृष्टि रखकर चलते हुए श्रीकान्त ने कहा।

"जब आपको यह मालूम था, तो फिर आप मुझे यहाँ क्यों ले आये ? मुझ जले हुए को और जलाने का क्या प्रयोजन था ?"

"ऐसी बात नहीं है-रामदेव! आप, जब मेरी वास्तविक-स्थिति जानेंगे, तब आपके हृदय में भी दयाभाव उत्पन्न हो जायगा। जबतक आपको वह नहीं मालूम है, तभी तक उत्तेजित होते हो।"

"तो वह स्थिति बतला दो न!"

"थोड़ी देर में कह देने योग्य होती, तो मैं अबतक कभी का कह चुका होता। आप, मेरी इस बात पर विश्वास कीजिये, कि मैं आपकी अपेक्षा आज सुखी नहीं हूँ, न मेरे माता-पिता ही सुखी हैं। और मेरी एक बहिन!" श्रीकान्त क्षणभर के लिये रूक गया "उसे सुखी कहूँ, या दुःखी कहूँ ? लेकिन, वह आज दूर-दूर कोन जाने...?" वह अधिक न बोल सका और चन्द्रमा के प्रकाश में दूर-दूर की दिशाएँ देखने लगा।

रामदेव को, श्रीकान्त की इस बात में रहस्य जान पड़ा। उसकी समझ में यह आ गया, कि उसका रोष निष्कारण है और यह मनुष्य कोई जबरदस्त-व्यथा भोग रहा है।

"रामदेव !" श्रीकान्त भावनाओं के वश होकर बोला "मुझे, आपके प्रति यों ही दिलचस्पी नहीं पैदा हुई है। आपकी भूतकाल की कथा में, मेरी बहिन का वर्तमान-जीवन व्यतीत हो रहा होगा, इसकी मै कल्पना करता हूँ और आपके दुःख से दर्द अनुभव करता हूँ। मुझे, आपकी बात सुनना बहुत-अच्छा लगता है। और वह इसलिये, कि अब मेरे वैसे बनजाने की घड़ी नजदीक आती जा रही है। आपने, मेरे इन माता-पिता को देखा है न, इन्हें मैं छोड़ दूँगा और एक भंगीपुरे में,—जहाँ मेरी बहिन रहती है—चला जाऊँगा। समझे रामदेव !" श्रीकान्त ज़ोर से बोल उठा। "आप, अपने दुःख के रोष से जल रहे हैं और मै अभी तो अपने दुःख की छिपी हुई अग्नि में भुन रहा हूँ। आप, मुझ जैसों के सामने, अपनी ज्वालाएँ प्रकट तो कर सकते हैं। लेकिन, मेरे लिये तो कुछ कहने को भी कोई जगह नहीं है।

रामदेव, कुछ न बोला। उसके हृदय में, श्रीकान्त के जीवन की बातें जानने की तीव्र-जिज्ञासा उत्पन्न हो गई। लेकिन, उसके पास समय न था। वह, रात की ही गाड़ी से जानेवाला था। स्वतः उसकी कथा अधूरी रह गई थी, इस बात का भी उसके दिल में खेद था। उस पर गुजरे हुए जुल्मों तथा उसके शिक्षागुरु एवं पादरीबाबा द्वारा उस पर बरसाये हुए प्रेमामृत की कहानी वह विस्तारपूर्वक वर्णन करना चाहता था। क्षणभर के लिये, उसके जी में यह बात आई, कि दीक्षा का दिन यदि कुछ और दूर होता, तो अच्छा था ! लेकिन, वह तो निश्चित हो चुका था और उसमें परिवर्तन भी सम्भव न था।

इसके बाद, दोनों मौन रहकर अपने-अपने विचारों में डूबे हुए घर आ पहुँचे। इनके पहुँचने के पाँच-सात मिनिट बाद ही उमादेवी तथा हरिदास सेठ भी आगये।

८

रक्त का गड्ढा.

घर आने के पश्चात्, रामदेव को श्रीकान्त ने अपने कमरे में बैठने के लिये कहा। दो-एक समाचारपत्र तथा पुस्तकें उसके पास रखकर, वह माता-पिता के पास गया। उसके मन में निश्चय हो रहा था, कि अब तो जाना ही है। इस निश्चय की रेखाएँ भी उसके चेहरे पर स्पष्ट दीख पड़ती थी। श्रीकान्त पारदर्शक है, यह बात हरिदास सेठ एवं उमादेवी जानते थे।

श्रीकान्त, माता-पिता के पास आकर बैठा। हरिदास सेठ ने, भारी-आँखो से उसकी तरफ देखा। श्रीकान्त ने, बलपूर्वक, उन आँखों के प्रभाव से अपने-आपको सुरक्षित रक्खा। थोड़ी देरतक और कोई न बोला, अतः उसने ही शुरू किया-

"बापूजी! मै और कुछ भी नहीं कर सकता"।

"जैसा हमारा भाग्य" हरिदास सेठ कपाल पर हाथ धरकर बोले।

"मुझे, प्रतिक्षण यह जान पड़ता है, कि आप अकारण ही दुःखी होते हैं। आप, प्रतिष्ठा का इतना अधिक भय क्यों रखते हैं?"

"तू, इसे नहीं समझ सकता-श्रीकान्त! और यह केवल प्रतिष्ठा का ही प्रश्न नहीं है। मन की घृणा का भी तो सवाल है, न! तू, मेरी बात सच मानेगा? तेरे इन मित्र के आने के पश्चात् से, मुझे

इस घर में एक तरह की घबराहट-सी जान पड़ती है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, मानों इस घर की हवा ही बदल गई हो! मैं जानता हूँ, कि छुआछूत कोई चीज नहीं है, लेकिन संस्कार तो हैं, न! वे संस्कार नहीं छूटते!"

"तो अब क्या करूँ? मैंने, अपने मन को आपके अधीन कर देने के लिये बहुत दबाया। लेकिन, अब तो वह मेरे हाथ में भी नहीं रहता। मै, यहाँ तड़फड़ा रहा हूँ।"

उमादेवी, इन अन्तिम-शब्दों से चौक पड़ी। हरिदास सेठ पर भी उनका प्रभाव पड़े बिना न रहा।

"मै, आज रात को ही जारहा हूँ। यहाँ से इनके साथ ही चला जाऊँगा।"

"ऐं....आज ही?"

"हाँ, अब और कितने दिन निकालूँ?"

हरिदास सेठ ने, एक निःश्वास छोड़ा और आँखे वन्द करके, अपना सिर एक तरफ को झुका दिया। उमादेवी, उनके नजदीक आई। हरिदास सेठ ने फौरन ही अपनी आँखे खोल दीं और सिर ऊपर उठाया।

"बस, अब हो चुका। मुझे जान पड़ता है, कि आज मै श्रीकान्त को न समझा सकूँगा। आज, वह मेरे रक्त का गडढा भी लाँघ जायगा! वह नही रुकेगा-नही रुकेगा!" सेठ की आवाज़ फटने-सी लगी। "श्रीकान्त! तू भले ही जा। तुझे जो अच्छा दीख पडे, वही कर। लेकिन, मेरी दशा तो दशरथ की-सी होजायगी। मैं, न जी सकूँगा!"

श्रीकान्त की भावनाएँ काँप उठीं। वह, सजल-नेत्रो से पिता की तरफ देखता रहा। उमादेवी, अवाक होकर सेठ के पास खड़ी थीं।

श्रीकान्त, बिना कुछ बोले, रामदेव की तरफ देखता रहा। उसके नेत्रों में पानी भर आया।

"रामदेव ! मेरी समझ में नहीं आता, कि मैं क्या कर रहा हूँ ? मैं, पूछूँ भी तो किससे ? इस सारी दुनिया में, मेरा ऐसा कौन है ? बहिन है, सो वह भी दूर होगई ! माँ हैं, किन्तु वे तो पिता की छाया के सहारे जीवित हैं, और पिता......पिता ही तो इस धर्मसंकट के जनक हैं !"

"आपके जीवन में इतनी वेदनाएँ भरी हैं, इस बात की मैंने कभी कल्पना भी न की थी। आपकी जीवनकथा, मैं किस तरह जल्दी सुन सकूँ, यह उत्कण्ठा मेरे मन में पैदा होगई है। आप, क्या उस तरफ कभी नहीं आ सकते ? अथवा मैं ही......"

"मैं तो इस बात की कल्पना भी नहीं कर पाता, कि आखिर मैं करूँगा क्या। भावनाओं के प्रवाह में इधर से उधर टकराता रहता हूँ। शायद, इसी तरह टकरा-टकराकर मेरा चूरा होजायगा।"

"मैं, आपको अपना पता दे जाता हूँ। आप, जो कुछ भी करें, उसकी सूचना मुझे जरूर दीजियेगा।"

रामदेव ने, टेबल पर से एक काग़ज़ का टुकड़ा उठाया और उस पर अपना पता लिखकर श्रीकान्त को दे दिया तथा श्रीकान्त का पता अपनी डायरी में लिख लिया।

"तो अब मैं जाऊँ, गाड़ी का समय नज़दीक आ गया है"।

"हाँ, लेकिन आप भोजन तो करते जाइये" श्रीकान्त जबरदस्ती शान्त बनकर तेजी से उठा।

"नहीं-नहीं, मुझे भोजन नहीं करना है"।

"भोजन किये बिना न जाने दूँगा"।

"नहीं, मैं नहीं खाऊँगा। आप, आग्रह न कीजिये।"

"आप, केवल मुझे बचाने के लिये ही तो इनकार करते हैं, न? लेकिन भोजन किये बिना काम नहीं चल सकता।"

"नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है" कहकर रामदेव उठा और बाहर जाने की तैयारी करने लगा। श्रीकान्त ने, अधिक आग्रह न किया। वह भी उसके साथ ही बाहर निकल पड़ा। हरिदास सेठ, देखते रहे। श्रीकान्त ने जाते-जाते कहा-"मैं, ज़रा इन्हें स्टेशन तक पहुँचाकर वापस आता हूँ"।

"चले न जाना" हरिदास सेठ ने श्रीकान्त को जाते देखकर धीरे-से कहा।

"श्रीकान्त कभी झूठ नही बोल सकता"।

"लेकिन, अब यह आखिरी-फैसला करता जान पड़ता है"।

"तो अब आपको भी इसका दम ज़्यादा न घोटना चाहिये"।

"परन्तु, कोई मेरी तरफ भी तो देखो" यह कहकर हरिदास सेठ शान्त होगये। उमादेवी को, इस अवसर पर अधिक बोलना उचित न जान पड़ा, अतः वे वहाँ से हटकर दूसरे कमरे में चली गई। अब, हरिदास सेठ अकेले रह गये। उन्होंने, एक बार चारों तरफ नज़र दौड़ाई। कमरे में, और कोई न था। वे, लालटेन की बत्ती कम करके, कौने में बिछे हुए अपने पलँग पर जाकर सो गये। एक के बाद एक विचार उनकी छाती पर चढ़ने लगे।

"श्रीकान्त, अब यहाँ न रहेगा......आज या कल ही वह ज़रूर चला जायगा। अब, बाक़ी ज़िन्दगी यों ही गुजारनी पड़ेगी।...... श्रीकान्त......सविता......कुछ ही महीनों के भीतर यह सब क्या होगया? काल के गर्भ की बात कौन जानता था? मै, पूजा करता हूँ, भक्ति करता हूँ, धर्माचरण करता हूँ, फिर भी इस अवसर पर मेरा हृदय बार-बार क्यों हार जाता है? श्रीकान्त, सच्चे-रास्ते पर है।...

उसकी माँ बेचारी, केवल मेरे लिये ही मौन धारण किये बैठी है।... कुछ समज में नहीं आता।" यह सोचते-सोचते, उन्होंने तकिये में अपना मुँह छिपा लिया और शून्यचित्त होने का प्रयत्न किया। किन्तु, सफलता न मिली। हैरान होकर उठ बैठे और पुकारकर उमादेवी को बुलाया।

उमादेवी ने, कमरे में आते ही लालटेन की बत्ती ऊँची की। प्रकाश अच्छा न लगता हो, इस तरह हरिदास सेठ ने फिर बत्ती कम कर देने को कहा। कमरे में, हलका-अन्धकार छा गया।

"मुझे जान पड़ता है, कि इस तरह तो सब की जिन्दगी बरबाद हो रही है"।

"आप, निश्चिन्त होकर सो जाइये, ईश्वर की गति को कोई नहीं बदल सकता। बिना मतलब की चिन्ता न कीजिये।"

"नहीं-नहीं, आज हमलोगों को एक दूसरे के सामने बैठकर निश्चय कर डालना चाहिये"।

"आप, कोई बात निश्चित कर ही नहीं सकते। श्रीकान्त के जाने की बात आते ही, आपकी बुद्धि और निर्णयशक्ति, भावनाओं के प्रवाह में बहने लग जाती है। अब तो चुपचाप देखा कीजिये, कि क्या होता है। मैं, एक भी अक्षर बोलती हूँ? क्या मुझे इससे कोई पीड़ा नहीं पहुँचती? आज आनेवाला व्यक्ति चाहे जो हो, लेकिन वह श्रीकान्त का मित्र तो था। उसके लिये भी आप ठेठ टेकरी तक जाने को तैयार हुए। क्या आप समझते हैं, कि इस प्रसंग का श्रीकान्त के हृदय पर कोई प्रभाव ही न पड़ेगा? मैं तो स्पष्ट-रूप से देख रही हूँ, कि प्रतिक्षण उसके हृदय से हमारा स्थान उतरता जा रहा है।"

उमादेवी, इतना कहकर ज्योंही शान्त हुई, कि फौरन ही हरिदास सेठ बोले—"नहीं-नहीं, तुम बोलती जाओ, आज मैं सुनना चाहता हूँ"।

"इसमें, कोई नई-बात नहीं सुननी है। श्रीकान्त, हमलोगों के साथ अधिक-से-अधिक आठ दिन रह सकता है, यह मैं भविष्यवाणी करती हूँ। और आप देखेंगे, कि हमलोग भी उसके पीछे-पीछे खिंचे चले जायँगे।"

"तो क्या तुम ऐसा मानती हो, कि मेरे ये सभी प्रयत्न निष्फल हो जायँगे? क्या मेरी भावनाओं को श्रीकान्त लात मार देगा?"

"आप ही अभी थोड़ी देर पहले यह बात नहीं कह रहे थे, कि श्रीकान्त रक्त के गड्ढे को भी लाँघ जायगा? आप, चाहे जिस भाव से बोले हों, किन्तु वह बात वास्तव में सत्य ही थी। सुख भोगने जाते हुए मनुष्य को भावनाओं के बल पर रोका जा सकता है। लेकिन, दुःख भोगने जाते हुए को तो केवल सत्य ही रोक सकता है। श्रीकान्त तो आकाश से उतरकर पाताल को ही जा रहा है, न!"

"फिर, तुम क्या करोगी?"

"मैं? मैं आपके पास रहूँगी। अभी तो छाती में एक शूल चुभती है, फिर दो चुभने लगेंगे। इन बहते हुए घावों की स्थिति में जितने दिन जी सकूँगी, उतने दिन जीऊँगी।"

"हूँ" कहकर हरिदास सेठ ने अपना सिर हिलाया। "अच्छी-बात है, अब तुम जाओ। मुझे......हाँ, कुछ नहीं, मैं सो जाता हूँ।" यह कहकर सेठ सो गये और उमादेवी गम्भीर-आकृति लिये वहाँ से वापस लौटीं।

सेठ की निद्रा लुट गई थी। उन्होंने, पैरों की आहट से जाना, कि श्रीकान्त स्टेशन से वापस लौट आया है। उसे, अपने पास बुलाने की सामान्य-इच्छा उत्पन्न हुई, किन्तु उसे रोककर सेठ विचारों की गम्भीरता में उतर पड़े।

९

गृहत्याग

रामदेव को बिदा करते समय, श्रीकान्त के हृदय में उसके प्रति खूब ममत्व पैदा हुआ और कल का उसका कठोर-स्वरूप, श्रीकान्त के हृदयपट पर धुधला पड़ने लगा। अपने नेत्रों में उभराते हुए जल को, उसने बड़ी कठिनाई से रोक पाया। असम्भावित-मैत्री को हृदय में भरे हुए, दोनों अलग हुए।

भागती हुई गाड़ी को, आज श्रीकान्त ने स्वजन की तरह देखा। मन में, हलकी-हलकी यह भावना भी दौड़ गई, कि आज कल में ही यह गाड़ी और यह मार्ग, दोनों मेरे साथी बन जायेंगे।

वह, घर आया और सीधा अपनी कोठरी में जाकर बैठा। कभी नहीं, लेकिन आज उसने अपने कमरे का दरवाज़ा भीतर से बन्द कर लिया। लालटेन को टेबल पर रक्खा, दूर पड़ी हुई कुर्सी, पास खींची और टेबल पर अपने हाथ टिकाकर, वह विचार में डूब गया। उसके मुँह पर, विभिन्न प्रकार की रेखाएँ घूमने लगीं। स्वाभाविक सरलता तथा पिछले दिनों की विह्वलता, दोनों ही आज चेहरे पर से अदृश्य होगई थीं। मानों, कुछ निश्चय हो रहा हो, ऐसा जान पड़ा। उसने, टेबल की दराज़ से एक कागज़ निकाला और लिखना प्रारम्भ किया। लिखते-लिखते रुकता, कुछ सोचता और फिर लिखने लग जाता। मुँह

पर अनेक भाव आते और लुप्त होजाते थे। इस तरह, लगभग एक घण्टे तक वह लिखता रहा। पत्र समाप्त करने के बाद, उसने उस कागज की घड़ी की और टेबल पर रख दिया।

मानो क्षणभर के लिये उसे शान्ति मिल गई हो, ऐसा जान पड़ा। फिर उसने वह पत्र उठाकर खोला और आदि से अन्त तक पढ़ डाला। न-जाने क्या सोचा और धीरे-धीरे उस कागज के टुकड़े करने लगा। छोटे-छोटे टुकड़े करके पत्र तो नीचे फेक दिया और स्वतः विचारों में निमग्न हो गया।

रात, बीतती जाती थी। उसके मन में अनेक चित्र बनते और मिटते जाते थे। उसने, फिर एक कागज उठाया और उसमें थोड़े-से शब्द लिखे—

पू. पिताजी,

कारण आप जानते ही हैं। मे जाता हूँ।

सेवक—**श्रीकान्त**

इस चिट्ठी को, उसने अपने सामने ही टेबल पर रक्खा और इसके प्रत्येक अक्षर को ग़ौर से कई बार पढ़ा। प्रत्येक अक्षर में, ठूँस-ठूँसकर जो भावनाएँ भरी थीं, वे उमड़ आईं। उसने, आँखे बन्द करके अपना सिर टेबल पर धर दिया। थोड़ी देर में कुछ विचार आने पर उसने अपना सिर ऊपर उठाया और घड़ी की तरफ देखा। रात के दो बज चुके थे। "अब एक घण्टा" उसके ओठ हिल उठे।

वह उठा और धीरे-से दरवाज़ा खोलकर पिता के पास गया। हरिदास सेठ जागते हुए, किन्तु आँखे बन्द किये पड़े थे। किसी के पैरों की आहट पाकर, वे चौंक पड़े। श्रीकान्त भी कुछ चौंक उठा।

"कुछ नहीं" कहकर वह वापस लौटने लगा। हरिदास सेठ जल्दी-से उठे और उसके पीछे-पीछे चलने लगे। श्रीकान्त, जल्दी-जल्दी चलता हुआ अपने कमरे में पहुँचा। सेठ भी उसके पीछे-पीछे वहीं आ गये। श्रीकान्त ने, टेबल पर से चिट्ठी उठा ली।

"क्या है ? श्रीकान्त ! मुझे बतला।" कहकर हरिदास सेठ ने अपना हाथ लम्बा कर दिया।

श्रीकान्त ने, क्षणभर सोचा और फिर सेठ के हाथ में वह चिट्ठी दे दी। चिट्ठी पढ़ते ही सेठ स्तब्ध होगये। "कब ?" उनके मुँह से निकल पड़ा। सेठ की आवाज़ सुनकर, बगल के ही कमरे में सोई हुई उमादेवी जाग पड़ीं। उन्होंने भी अपने कान इधर ही लगा दिये।

"अभी, तीन बजे की गाड़ी में"।

"कहाँ ?" ऊँचे-श्वास से सेठ ने पूछा।

"यह तो मालूम नहीं है, लेकिन शायद सविता के पास"।

उमादेवी, यह सुनते ही वहाँ दौड़ी आई। घर के दो नौकर भी जाग गये और वे भी जल्दी-जल्दी वहीं आ गये। उमादेवी ने, आँख के इशारे से नौकरों को अपनी जगह पर लौट जाने को कहा। श्रीकान्त, सिर नीचे झुकाये खड़ा रहा। हरिदास सेठ की वाणी छिन गई हो, इस तरह वे हाथ में चिट्ठी लिये हुए स्तब्ध खड़े रह गये।

उमादेवी ने, नजदीक आकर चिट्ठी में लिखे हुए अक्षर पढ़े और फिर श्रीकान्त की तरफ देखने लगीं।

"श्रीकान्त !"

श्रीकान्त ने अपनी दृष्टि ऊपर उठाई।

"आज जाना ही है ?"

श्रीकान्त ने सिर हिलाकर हाँ की।

उमादेवी की दृष्टि, कुर्सी के पास पड़े हुए कागज के टुकड़ों पर पड़ी। उन्होंने, उन सब टुकड़ों को बीन लिया और टेबल पर रक्खा। हरिदास सेठ ने यह सब देखा। वे भी टेबल के पास जाकर उन टुकड़ों के अक्षर पढ़ने लगे। उन्हें, मानों थकावट आ गई हो, इस तरह वे कुर्सी पर बैठ गये।

घड़ी में, अढ़ाई बजे का घण्टा बजा।

"बापूजी!" श्रीकान्त ने नीचे झुककर कहा "मुझे आज्ञा दीजिये"।

हरिदास सेठ ने, अपना सिर टेबल पर डाल दिया। श्रीकान्त, थोड़ी देरतक उनके चरणों के पास झुका रहा और फिर सीधा खड़ा होगया। उमादेवी के सामने खड़े होकर श्रीकान्त ने अपना सिर झुकाया। उमादेवी ने, उसका सिर अपने हृदय से लगाकर, उसे दाबा। मंगलमय–क्षण बीतने लगीं। उमादेवी की आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े। श्रीकान्त ने अपना सिर उठाया–उसकी आँखें भी सजल थी।

वह, धीरे–धीरे चलता हुआ कमरे से बाहर निकला। उमादेवी, मानों उसी जगह चिपक गई हों, इस तरह जहाँ–की–तहाँ खड़ी रह गई। श्रीकान्त, बिना पीछे घूमकर देखे, एक के बाद एक क़दम धरता हुआ घर से बाहर निकला और पिछली–रात्रि के अन्धकार में विलीन होगया।

"नहीं–नहीं–श्रीकान्त!" सेठ काँपते हुए स्वर में बोल उठे और घबराकर इधर–उधर देखने लगे। "कहाँ गया? श्रीकान्त चला गया, क्या?"

उमादेवी ने, सिर हिलाकर हाँ की। सेठ, जल्दी–से खड़े होकर कमरे के बाहर जाने लगे। उमादेवी ने, उन्हें पकड़ रक्खा।

"अब रहने दो," उसे जाने दो, अब वह वापस नहीं लौट सकता'

"लेकिन.........लेकिन"

"कुछ नहीं। रक्त का गड्ढा भी लाँघ जानेवाली बात, आप कैसे भूल जाते हैं?"

"लेकिन, मैं जीवित नहीं रह सकता। चाहे जो हो......" सेठ उठकर दरवाज़े की तरफ जाने लगे। उमादेवी ने उन्हें पकड़कर वापस बैठा दिया।

और श्रीकान्त, धीरे-धीरे डग भरता प्रतिक्षण दूर ही दूर होता गया।

१०

विचार-सागर में.

श्रीकान्त, स्टेशन पर पहुँचा । गाड़ी, अभी तक न आई थी । छोटे-से स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर बत्तियाँ जलने लगी थीं, इससे जान पड़ता था, कि रेल अब आने ही वाली है । श्रीकान्त, प्लेटफॉर्म पर चक्कर काटने लगा । उसके मन मे, अगम्यभाव उत्पन्न हो रहे थे । वह स्वयं भी न जान सके, ऐसे अनेक झरने उसके हृदयतल से फूट निकले थे । वह, आकाश की तरफ देखता हुआ, प्लेटफॉर्म के किनारे खड़ा होगया । उसके मुँह से सहसा निकल पड़ा—

मेरे पथदर्शक तारागण ! यह देखो मैं आया ।
विपद्ग्रस्त जग के मानवगण ! धैर्य धरो, मैं आया ॥

भगवान् बुद्ध की मनोभावना की साक्षीरूप ये पंक्तियाँ, उसके मुँह से योंही निकल पड़ी थीं । किन्तु, तत्क्षण ही श्रीकान्त को इनके अर्थ एवम् गाम्भीर्य का ध्यान आया । उसे, हृदय के पेंदे से फूटकर निकले हुए अनेक झरनों का किंचित्-किंचित् दर्शन होने लगा । उसे जान पड़ा, मानों रुँधा हुआ प्रेम तथा अनुकम्पा बाहर निकली पड़ रही है, रुका हुआ स्वार्पण का प्रवाह मानों पत्थर तोड़ रहा है, और ढँका हुआ प्रकाश मानों मुक्त हो रहा है । साथ ही, यह भी मालूम होने लगा, मानों उसके अन्तस्तल में शक्तियों के झरने फूट रहे हैं और सूक्ष्मातिसूक्ष्म आँखें खुल रही हैं । उसने, फिर उन्हीं पंक्तियों का

उच्चारण किया और मानों उसकी प्रत्येक क्रिया को ग़ौर से देख रहे हैं, ऐसे तारकवृन्द की तरफ उसने फिर अपनी दृष्टि फेरी।

नीरव-शान्ति थी और आकाश साफ था। वायु, मन्द-मन्द गति से चल रही थी। ऐसा जान पड़ता था, मानों सारी सृष्टि समाधिस्थ होगई हो। श्रीकान्त ने, अभी थोड़ी ही देर पहले घर छोड़ा था। किन्तु, इस समय, उसके मन में ऐसे भाव उत्पन्न हो रहे थे, मानों वह किसी घर का नहीं है, किसी व्यक्ति का भी नहीं है, बल्कि सारे विश्व का है। आसपास का वातावरण ही उसे ऐसा जान पड़ा, मानों वह स्वयं भी किसी नियम के आधीन चलनेवाला एक तारा ही है। उसके मन का भार इस तरह हलका होने लगा, मानों अब वह बोझ इस संसार ने उठा लिया हो। हृदय की धड़कन और मन्थन भी शान्त होने लगा। मानों संसार ने इसे अपना लिया हो। इस समय, श्रीकान्त के मन में, एक भी ऐसा विचार नहीं आता था, जिसे स्पष्ट-रूप से भाषा में वर्णन किया जा सके। एक भी भावना आकार नहीं लेती थी। किन्तु, जिसका वर्णन न किया जा सके, लेकिन अनुभव किया जा सके, ऐसी कोई मैत्री, ऐसी कोई प्रेरणा, ऐसी कोई तेज की रेखा उसे प्राप्त होगई हो, ऐसा जान पड़ने लगा।

गाड़ी आ पहुँची। श्रीकान्त, टिकिट लेकर गाड़ी में बैठ गया। चार-पाँच मिनिट खूब धक्कामुक्की हुई। उसकी निराकार-कल्पनासृष्टि लुप्त होगई। धक्कामुक्की, स्टेशन की घराटी, गार्ड की सीटी और एंजिन की आवाज़, इन सब ने उसे खींचकर पार्थिव-दुनिया में डाल दिया। इस दुनिया में आते ही उसके सामने सब से पहला दृश्य टेबल पर सिर डालकर पड़े हुए पिताजी का दिखाई दिया। दूसरे दृश्य में, गम्भीर बनी हुई माताजी दीख पड़ीं। तीसरे दृश्य में, पिताजी के चीत्कार और उनका रुदन दीख पड़ा। चौथे दृश्य में, माताजी, पिताजी पर हाथ फेरती दिखाई दीं। इस तरह, दृश्यों की परम्परा प्रारम्भ हुई। उसने, अपना सिर हिलाया और स्टेशन के पीछे की तरफ वाली

खिड़की में बैठकर, सिर बाहर की तरफ निकाल दिया। मानों, अपने मन से वे सब विचार मिटा देने के लिये प्रयत्नशील हो, इस तरह अपना शरीर शिथिल बना लिया और 'हे परमात्मा!' कहकर एक निःश्वास छोड़ा।

गाड़ी चल दी। जिस मार्ग से श्रीकान्त थोड़े ही दिन पहले आया था, उसी मार्ग पर गाड़ी दौड़ने लगी। सविता को छोड़ते समय उसके हृदय के तार जिस तरह खिंचे थे, उतने तो इस समय न खिंचे, लेकिन चित्त सर्वथा-खिन्न अवश्य ही हो गया। वह, ज़रा लम्बा होकर बैठा और मन को आराम देने की इच्छा से, उसने अपनी आँख बन्द कर लीं। किन्तु, भूतकाल के सत्य-दृश्यो एवं भावी के कल्पनादृश्यों की पंक्ति, उसके सामने आकर खड़ी होगई। उसने, अपनी आँखें खोल दीं। गाड़ी, अपनी पूरी रफ्तार से भागी जा रही थी। गाड़ी से बाहर घोर-अन्धकार छाया था। गाड़ी की आवाज़ और हवा की सनसनाहट, ये दोनों मिलकर भयंकर जान पड़ती थीं। श्रीकान्त ने, इस अन्धकार में अपनी दृष्टि दौड़ाई। वहाँ, भूतों के झुण्ड जैसे वृक्षसमूह के अतिरिक्त और कुछ भी न दिखाई देता था। वह, फिर थक गया। आँखें बन्द करके, परमात्मा का नाम लेता हुआ, लम्बा होकर सो गया।

पहला स्टेशन आया, गाड़ी रुकी। एक युवक को गाड़ी में चढ़ता देखकर रामदेव की मूर्त्ति आँखों के आगे आ गई। जीवन की रंगभूमि पर, वह एक नया-पात्र था। वह कौन, क्या, क्यों, आदि बातें उसके मन में उठने लगीं। उसकी आत्मकथा अधूरी रह गई, यह बात मन में चुभने लगी। इसी समय याद आ गया, कि मेरे घर पर उसका अपमान होगया था! किन्तु, उसके एक ही दिन के व्यवहार में, उसकी बातों में और उसके स्वभाव में दीख पड़नेवाली विभिन्नता ने, श्रीकान्त को उसके प्रति अधिकाधिक आकर्षित किया। श्रीकान्त, उसका पता घर पर ही भूल आया था। लेकिन, वह छोटा-सा ही होने के

कारण जबानी याद था। सबेरा होते ही, उसने चिट्ठी लिखना निश्चित किया।

'वह क्रिश्चियन हो जायगा!' श्रीकान्त को रामदेव के सम्बन्ध में विचार आने लगे। 'आखिर क्यों न होजाय? इसमें उसका क्या दोष है? उसका और मेरा जीवन कितना निराला जान पड़ता है! यह भी अपनी माँ का प्यारा है, समझदार है, सशक्त है, जवान है, लेकिन उसमें और मुझमें कितना अन्तर है?...आखिर क्यों मुझे तो मान मिलता है और लोग उसे छूते तक नहीं? आखिर क्यों मुझे आनन्दपूर्वक शिक्षा मिले और उसे इतने अपमान, तिरस्कार सहते हुए मार तक खानी पड़े? अच्छा है, यदि वह क्रिश्चियन होजाय। वह, अपने मन में समझता होगा, कि मुझे इससे आघात पहुँचेगा। लेकिन, मुझे कैसा आघात? उसका यह कहना कितना सत्य था, कि हिन्दू धर्म में ऐसी कौन-सी चीज है, जिसके लिये मैं संसार की सुख-सामग्री को लात मारूँ? सचमुच ही ऐसा क्या है, जिसके लिये वह ऐसी यातनाएँ सहन करे? भाई रामदेव!' श्रीकान्त, शब्द सोचकर मन में कहने लगा 'तू जरूर ही क्रिश्चियन हो जाना और अपना जीवन सुखमय बनाना!' किन्तु, यह बात मन-ही-मन कहते ही श्रीकान्त चौंक पड़ा। 'लेकिन, उसमें जो सीमातीत-वैरवृत्ति है, वह कैसे शान्त हो? वह, कैसा भयंकर जान पड़ता था और कैसी भयंकर-बातें करता था!'

श्रीकान्त, थोड़ी देर विचार में डूबा रहा। फिर, मानों कुछ सूझ पड़ा हो, इस तरह विचार एवं भाषा मिलने लगी। 'उसका कोई दोष नहीं है। उसपर बड़े-बड़े जुल्म हो चुके हैं। लेकिन, उसका बदला लेने का विचार तो मुझे भयंकर जान पड़ता है। और वह बदला लेगा किससे? माताजी, बापूजी और कल तक मैं.......' श्रीकान्त, इससे आगे कुछ सोच ही न सका। उसके सामने, मानों किसी ने एक भीषण-चित्र उपस्थित कर दिया हो, इस तरह उसने एक थरथराहट अनुभव की।

'रामदेव, क्रिश्चियन भले ही हो जाय, लेकिन उसके मन से वैर का भाव तो निकल ही जाना चाहिये। नहीं तो वह भी ज़ालिम बन जायगा। और सवर्णों का ज़ुल्म तो अज्ञान तथा धर्मान्धता में से पैदा हुआ है, जब कि यह सब-कुछ आँखों से देखते हुए करेगा। नहीं-नहीं, यदि रामदेव केवल वैर लेने के लिये ही क्रिश्चियन होता हो, तो उसे न होना चाहिये।......तो फिर आख़िर वह क्रिश्चियन हो ही क्यों? सुख के लिये? आमदनी की इच्छा से? समानता प्राप्त करने के लिये? हाँ, यह तो ठीक ही है। हिन्दू रहने पर, उसे ये सब चीज़ें नहीं मिल सकतीं।...तो फिर सविता! यदि वह भी क्रिश्चियन होजाय तो? और...और वह सारा मुहल्ला......किस लिये?......सभी भंगी-चमार क्रिश्चियन होजायँ, तो?...तो क्या बुराई है?......हिन्दू धर्म! यह क्या चीज़ है? मै तो इसे जानता ही नहीं। इसमें, अस्पृश्यता जैसा पाप घुसा बैठा है! इसे, धर्म तो कह ही कैसे सकते है?' श्रीकान्त के हृदय में, जैसे प्रश्न कभी न उत्पन्न हुए थे, वैसे प्रश्न पैदा होने लगे। रामदेव के मुँह से सुनी हुई बातें और खुद ने उसके जो जवाब दिये थे, वे सब फिर ताज़े होगये। श्रीकान्त के जी में आया, कि—'इस सम्बन्ध में मुझे कुछ जानना ही चाहिये'।

'लेकिन, ये लोग झाड़ू क्यों निकालते हैं? मैला क्यों उठाते हैं? रामदेव, कैसी बातें कहता था—तो क्या तुम्हारा मैला उठाऊँ? तुम्हारे सड़े हुए जानवरों के चमड़े चीरूँ? तुम्हारे लिये कपड़े बुन दूँ? वह, क्या झूठ कह रहा था? और जो कुछ वह करने जा रहा है, उसे कैसे बुरा कह सकते है? वह, ये सब काम क्यों करे? उसका क्या दोष है? लेकिन...तो फिर ये काम कौन करे? ये सब होने तो चाहिएँ ही, न! तो' क्या हम....सबलोग करें? किन्तु' श्रीकान्त ज़रा रुक गया। मानों, वह स्वतः विचारों की किसी नई-दुनिया में प्रवेश कर रहा हो, इस तरह आश्चर्य में पड़ गया। उसकी आँखे फटी-सी रह गईं।

'नब तो फिर सबलोग भंगी–चमार बन जायँ ! लेकिन, ऐसा कैसे सम्भव है ?...लेकिन आखिर यह काम करे तो कौन ? और क्यों करे ?'

इन प्रश्नों का समाधान, उसकी समझ में न आया। लेकिन, उसे जान पड़ा, कि मुझे यह विषय समझना ही चाहिये। 'कैसी अजीब–बात है ! ये काम किये बिना, किसी तरह चल तो सकता नहीं है, लेकिन ये दो काम कैसे गन्दे हैं ? इन्हें, कोई क्यो करे ?...क्या इसका कोई रास्ता ही नहीं है ? सविता झाड़ू निकाले, यह कल्पना कैसी असह्य है ! लेकिन, रामदेव झाड़ू क्यों निकाले ? और यदि रामदेव क्रिश्चियन बनकर इससे छुटकारा पा जाय, तो और लोग भी क्यों न छुटकारा प्राप्त करें ? लेकिन, तब क्या सबको क्रिश्चियन हो जाना चाहिये ? सब को ये काम छोड़ देने चाहिएँ ?' श्रीकान्त को, पहले तो ये प्रश्न केवल आश्चर्यजनक ही जान पड़े थे, लेकिन अब गम्भीर मालूम होने लगे। उसके मन में, ये प्रश्न आज ही पैदा हुए थे, अतः उसे इनमें वैचित्र्य जान पड़ा। फिर ख़याल आया, कि 'क्या बापूजी ने कभी इन सब प्रश्नों पर विचार किया होगा ? माताजी इस सम्बन्ध में क्या जनती होंगी ? मेरे जाने के नाम से ही वे लोग अत्यधिक–दुःखी होजाते थे, लेकिन क्या इन लोगों का दुःख देखकर उन्हें कुछ भी विचार नहीं होता ? नहीं–नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता ! तो फिर ? क्या उन्हें इन सब बातों की कोई खबर ही नहीं है ?......कुछ समझ में नहीं आता !' विचार का वेग बढ़ने पर, श्रीकान्त पिछला वाक्य गुनगुना पड़ा।

गाड़ी, एक के बाद एक स्टेशन पार करती हुई आगे बढ़ती जा रही थी। प्रातःकाल का समय होने आया था। श्रीकान्त, मन को हलका करने के लिये, 'उषा का राज्य' देखने लगा। उदय होती हुई दुनियाँने, उसे कुछ शान्ति दी।

११

रामदेव के पास.

लगभग आठ बजे के क़रीब, एक जंकशन आया। वहाँ, श्रीकान्त ने शौच, दातुन आदि से निवृत्ति प्राप्त की। इससे, मन जरा हलका पड़ा। इसी जंकशन से सविता तथा रामदेव के पास जाने के दो अलग-अलग रास्ते थे। रामदेव को पत्र लिखना था, अतः उसी के सम्बन्ध में विचार करता हुआ श्रीकान्त चिट्ठी लिखने बैठा। लिखना शुरू करने से पहले ही उसके मन में यह बात आई, कि यदि रामदेव के ही पास जाऊँ, तो? और यह विचार अच्छा भी जान पड़ने लगा। दो-तीन दिन की देरी जरूर हो जायगी, लेकिन रामदेव की कथा पूरी तरह सुनने को मिलेगी और अपनी कथा भी उसे सुना सकूँगा। श्रीकान्त ने, निश्चय कर लिया, अतः वहाँ से दूसरा टिकिट ख़रीदकर उसने गाड़ी बदल ली।

'मैं पहुँचूँगा, तबतक तो रामदेव क्रिश्चियन हो चुका होगा और रामदेव के बदले-सेमुअल!' गाड़ी चलते ही विचार प्रारम्भ होगये। '....मैं, वहाँ जा रहा हूँ, यह अच्छा ही है। अपनी आँखों से उसका प्रेमाश्रम देखूँगा, रामदेव का जीवन भी नजदीक रहकर देखने को मिलेगा और....मैं कहाँ जा रहा हूँ, यह बात भी भली-भाँति समझ में आ जायगी।' श्रीकान्त जहाँ बैठा था, उसी डिब्बे के एक कोने में, एक बूढ़ा-मनुष्य घुटनों पर सिर टिकाये बैठा था। उस पर दृष्टि

पढ़ते ही, विचारों का प्रवाह बदल गया। 'बापूजी कैसे दुःखी हो रहे होंगे? और माताजी? उनकी स्थिति तो बहुत-नाजुक बन गई होगी...... लेकिन मैं क्या करूँ? मैंने कितने प्रयत्न किये? कितने लम्बे-अर्से तक मैंने वेदनाएँ बर्दाश्त कीं?......रामदेव मेरे घर आया और यह सब तो बिलकुल अनचेता ही होगया।

गाड़ी, पूरी तेज़ी से जा रही थी और श्रीकान्त अपने उन्हीं विचारों में उलझा हुआ था। ठीक ग्यारह बजे गाड़ी प्रेमनगर के स्टेशन पर पहुँची। श्रीकान्त ने, गाड़ी से उतरकर रामदेव का पता याद किया और उसी जगह के लिये एक ताँगा किराये कर लिया। थोड़ी देर में, वह प्रेमाश्रम के द्वार पर आ खड़ा हुआ। प्रेमनगर तो श्रीकान्त का देखा हुआ था। एक बार प्रवास में आया था, तब नगर तो देख गया था। किन्तु, प्रेमाश्रम का तो उसे बिलकुल पता ही न था। दरवाज़े के पास आते ही, उसने चौकीदार से रामदेव के विषय में पूछा।

"जिन्होंने आज सबेरे दीक्षा ली है, वे ही न? वे, इस तरफ़ के बँगलों के अन्त में एक छोटे-से बँगले में रहते हैं।" कहकर चौकीदार ने श्रीकान्त को रास्ता बतला दिया। श्रीकान्त, आश्रम को देखता हुआ उसी रास्ते से चल दिया।

श्रीकान्त, बँगलों को देखता हुआ जा रहा था, कि इसी समय सामने से आते हुए रामदेव ने उसे देखा। वह, दौड़कर सामने आया। आते ही उसने श्रीकान्त को अपनी भुजाओं में कस लिया। रामदेव के आश्चर्य और हर्ष की कोई सीमा ही न थी। श्रीकान्त भी उससे मिलकर ख़ुश हुआ।

"हाँ, अब मैं सेमुअल होगया हूँ!" रामदेव ने हँसते-हँसते श्रीकान्त से एक क़दम दूर हटकर कहा।

श्रीकान्त, सिर हिलाकर ज़रा हँसा।

"अच्छा" रामदेव ने श्रीकान्त के नजदीक आकर कन्धे पर हाथ धरते हुए कहा—"सामान कहाँ है?"

"सामान तो है ही नहीं"।

"क्यों?"

"यों ही" श्रीकान्त ने हँसकर बात टाल दी।

"लेकिन, मेरे पीछे ही चल दिये?"

"हाँ, साथ-साथ न आ पाया इसलिये पीछे चल दिया"।

"चलो, अपनी कोठरी में चले" श्रीकान्त का हाथ पकड़कर रामदेव ने चलना प्रारम्भ किया।

एक छोटे-से बँगले के एक तरफ की कोठरी में रामदेव रहता था। श्रीकान्त, इधर उधर नजर घुमाकर, रामदेव के साथ कोठरी में दाखिल हुआ। एक नजर फेंककर उसने कोठरी भी देख ली।

"अब क्या करना है? भोजन करोगे न?" रामदेव ने श्रीकान्त को बैठने के लिये कुर्सी देते हुए पूछा।

"पहले नहाना है, तब खाना-पीना"।

"चलो, सब बतला दूँ" यह कहकर रामदेव उठा। उसने देखा, कि श्रीकान्त के पास दूसरा कपड़े का जोड़ा भी नहीं है। अतएव, उसने कपड़ों के लिये जरा विचार किया। श्रीकान्त, समझ गया।

"आपके पास, खादी के कपड़े कहाँ होंगे? अभी थोड़ी देर के लिये मैं आपके कपड़े पहन लूँगा, तबतक ये सूख जायँगे।"

"अभी धुलवाने पड़ेंगे?"

"मैं, अपने हाथ से ही धो डालूँगा"।

"हाथ से?"

"क्यों, क्या कोई हर्ज है?"

"आप, हाथ से ही धो लेते हैं?"

"कभी–कभी" श्रीकान्त, यह बात कह तो गया, लेकिन उसे एक भी 'कभी' याद न आया। वह, जरा हँस पड़ा।

रामदेव ने, अपने कपड़े दिये। श्रीकान्त ने, जीवन में पहली बार अपने हाथ से कपड़े धोये और नहाकर रामदेव के कपड़े पहने। ज्यों ही श्रीकान्त स्नानादि से निवृत्त हुआ, रामदेव उसके लिये भोजन की थाली ले आया। श्रीकान्त ने, इधर–उधर की बातें करते हुए भोजन किया।

भोजन के पश्चात्, दोनों मित्र शान्त होकर बैठे। श्रीकान्त, कोठरी के दरवाजे से बाहर देख रहा था, कि इसी समय रामदेव ने पूछा–"आपके पिताजी की तबियत कैसी है?"

श्रीकान्त ने, रामदेव के चेहरे के भाव देखे। उसे जान पड़ा, कि इस प्रश्न के पीछे हमदर्दी है! उसने, शान्ति से उत्तर दिया–"ऐसी ही"।

"वे, ख़ूब दुःखी हुए होंगे?"

"हूँ" श्रीकान्त ने केवल यही कहकर उत्तर दे दिया। उसके चेहरे पर गम्भीरता छा गई। थोड़ी देर, वहाँ शान्ति छाई रही।

"रामदेव!" श्रीकान्त जाग पड़ा हो, इस तरह बोला "अब, आप अपनी कथा पूरी करोगे, न?"

"और आपकी कथा?"

"जब आप चाहें, तब"।

"अभी कहोगे?"

"अभी ?" एक क्षण रुककर श्रीकान्त ने फिर कहा "अभी नहीं, आज रात को या कल सबेरे" आवाज़ में कुछ भारीपन था। "मुझे, ज़रा शान्त हो जाने दीजिये।"

"भले ही कल कहियेगा। आपको क्या आराम नहीं करना है ?" रामदेव ने पूछा।

"थोड़ा सो लूँगा। लेकिन, आपको क्या......हाँ, आपको भी आराम तो करना ही होगा। आपको भी सारी रात जागरण करना पड़ा होगा !"

"अखण्ड"

"आज सबेरे आपने दीक्षा ले ली, क्यों ?"

"हाँ, सबेरे आठ बजे"।

"अब, मैं आपको रामदेव नहीं कह सकता ?"

"हर्गिज नहीं"।

"और यदि कहूँ, तो ? मुझे तो वही नाम अच्छा लगता है।"

"लेकिन, मुझे भी तो अच्छा लगना चाहिये, न ?"

श्रीकान्त ने, रामदेव के मुँह की तरफ देखा।

"मैं सच कहता हूँ, वह नाम आज मैंने ज़मीन में गाड़ दिया। उस नाम के साथ की और सब बातें भी आज ख़तम हो गई। मैंने, जो नई-दीक्षा ली है, उसमें इस प्रकार के नामों को नाश करने की शक्ति है, उससे ऐसी प्रेरणा मिलती है ! श्रीकान्तभाई ! आज दीक्षा के पश्चात् मेरे शिक्षागुरु विलिमय साहब ने मुझसे जो कुछ कहा है, उसे मैं इस ज़िन्दगी में कभी भुला ही नहीं सकता। वह, मेरे हृदय में अंकित होगया है।"

"क्या कहा है ?" श्रीकान्त ने जिज्ञासा से पूछा।

"और कुछ नहीं। संसार में इस प्रेमधर्म का प्रचार करने और अज्ञान तथा दुःख में डूबे हुए करोड़ों अन्त्यजों का उद्धार करने की बात।"

"हिन्दुओं से वैर लेने को तो नहीं कहा?"

"ऐसा तो उन्होंने नहीं कहा। लेकिन, इसके लिये मुझे कहने की कोई जरूरत नहीं है। मेरे हृदय में वैर की अग्नि सुलग रही है, यह बात सबलोग जानते हैं।"

"इस सम्बन्ध में, वे तुमसे कुछ कहते नहीं हैं?

"क्या कहें? मुझ पर कैसे-कैसे जुल्म हुए हैं, यह बात सभी जानते हैं।"

"लेकिन, फिर भी वैर न लेना चाहिये, यह नहीं कहते?"

"क्यों कहें? उन्हें मालूम है, कि मेरे वैर लेने से, हिन्दू धर्म को हानि पहुँचेगी और क्रिश्चियन धर्म—प्रेमधर्म—का प्रचार होगा!"

"लेकिन रामदेव—नहीं सेमुअल! मैं यदि तुम्हें रामदेव ही कहूँ, तो?"

"तो मुझे आपके साथ बोलना बन्द करना पड़ेगा" रामदेव की वाणी में कठोरता का भाव आ गया। श्रीकान्त, स्तब्ध होकर उसकी मुखमुद्रा देखता रहा।

"यह बात मेरी समझ में नहीं आई" श्रीकान्त ने कुछ रुकर कहा।

"आपकी समझ में नहीं आ सकती। आप, अमृत पी-पीकर बड़े हुए हैं और हमें बचपन से जहर ही पीते रहना पड़ा है!"

श्रीकान्त, रामदेव की तरफ देखने लगा। उसने, अपने मन में निश्चय किया, कि जिससे रामदेव उत्तेजित हो, ऐसी बात न कही जाय। थोड़ी देर रुककर, उसने बात बदलते हुए कहा—

"तो फिर अब आप, अपनी कथा कब कहेंगे?"

बात बदल जाने पर, रामदेव की उत्तेजना कुछ शान्त होगई। उसने, धीरे-से जवाब दिया—

"जब आप कहें, तभी लेकिन, अभी ज़रा आराम करो। हमलोग, दोपहर के बाद बातें करेंगे। मुझे भी कुछ काम है। आज, हमारे लिये यह नये-जन्म का पहला दिन है, इसलिये मित्रों तथा स्नेहियों से मिलने जाना चाहिये।"

"अच्छी बात है, आप जाइये, मैं आराम करता हूँ"।

रामदेव ने, श्रीकान्त के लिये बिछौना बिछा दिया। श्रीकान्त लेट गया और रामदेव, घण्टे-डेढ़-घण्टे में वापस लौट आने को कहकर बाहर गया।

अब, श्रीकान्त अकेला रह गया। उसने, आँखें बन्द करके आराम पाने का प्रयत्न किया, किन्तु उसके हृदय में शान्ति न थी। हृदय में तो नवीन-रचना का कार्य जोरशोर से चल रहा था। उस कोलाहल में, भला नींद कैसे आ सकती थी? हृदय पर जमी हुई पर्तें उखड़ती जा रही थीं और उनके नीचे से नई-नई सृष्टियाँ प्रकट हो रही थीं। श्रीकान्त को भाग्यवान् कहो, या अभागा, लेकिन डेढ़ घण्टे बाद जब रामदेव आया, तबतक वह आँखें बन्द करता और खोलता हुआ, जागता ही पड़ा रहा। उसकी आँखें लाल होगई थीं और सारे शरीर में थकावट जान पड़ती थी। रामदेव ने, वहाँ आते ही उसकी यह स्थिति देखी। वह स्वयं, अनेक व्यथाओं में होकर गुजर चुका था, अतः श्रीकान्त की स्थिति फौरन ही समझ गया। वह, हँसता-हँसता श्रीकान्त के बिछौने पर बैठा और बैठते ही बोला—

"घायल की गति घायल जाने, और न जाने कोय"।

"क्यों, सच है, न....श्रीकान्तभाई !

श्रीकान्त हँसने लगा और अपने-आपको शान्त करने के लिये अँगड़ाई लेकर उठ बैठा।

१२

मोती के प्रयत्न.

श्रीकान्त ने, सविता से दूर होते समय जो पत्र लिखा था, उसे पढ़कर सविता के हृदय में यह विश्वास होगया, कि श्रीकान्त, इस हरिजननिवास से अधिक समय तक दूर नहीं रह सकता। उसने, मधुसूदन को भी वह पत्र बतलाया। उसे देखकर, मधुसूदन ने कहा कि–"यह अन्तिम–स्थिति है। थोड़े ही समय के भीतर, एक महान्–कुटुम्ब का परिवर्तन हो जायगा।"

सविता, व्यथित थी, लेकिन फिर भी अपने कार्य में आगे बढ़ती जा रही थी। मधुसूदन, शनैः–शनैः उसका जबरदस्त–सहायक बन गया था। सविता को, कभी–कभी श्रीकान्त की याद अशान्त बना देती थी। किन्तु, मुहल्ले के लोगों की सेवा करते हुए, दिनभर में इतने अधिक प्रश्न उसके सामने आते थे, कि उनमें उलझकर वह अपना दुःख भूल जाती।

दूसरी तरफ, जमादार उस षड्यन्त्र से न बच सका। अनेक षड्यन्त्रों के जनक सादिक़ मियाँ जब दिल्ली गये, तब उनके साथियोंने जमादार से जल्दी करने को कहा। जमादार ने, बहुत–कुछ आनाकानी की, लेकिन उसके सामने दो बातों में से एक पसन्द कर लेने का सवाल आया। या तो वह सविता को उठा ले जाने में सहायता

पहुँचावे, या अपने उन दोस्तों की छुरी का शिकार बने। जमादार, काँप उठा।

आख़िर, वह कुछ न बोल पाया। उसने, यह कार्य करना स्वीकार कर लिया। सारी योजना निश्चित होगई। जमादार की जेब में सौ रुपये के नोट आ पड़े और काम पूरा हो जाने के बाद बाक़ी चारसौ रुपया देना तय हुआ।

जमादार, धीरे-धीरे चलता हुआ अपने घर आया।

मोती के मन में द्वन्द्व मचा था, इसलिये वह बेचारी उस दिन काम करने न गई। जमादार के आने से पहले ही उसने अपने मन में यह निश्चित करलिया था, कि आज तो जैसे भी होगा, जमादार को समझाकर उन दोस्तों के जाल से छुड़ाऊँगी और नौकरी पर लगा दूँगी। जमादार, ज्योंही बाहर से आकर बैठा, कि त्योंही मोती ने बातचीत शुरू की।

"अब, तुम्हें मेरी बात माननी है, या नहीं?"

"तू सिरपच्ची छोड़" दीवार के पास लम्बे होते हुए जमादार ने कहा।

"तो अपना घर सम्हालो, मैं बच्चों को लेकर अपने बाप के यहाँ चली जाऊँगी"।

"यह रास्ता पड़ा है। क्या किसी ने आड़े हाथ दिया है?"

मोती खड़ी हुई और उसने सचमुच ही तैयारी प्रारम्भ कर दी। जमादार देखता रहा, कुछ बोला नहीं।

"देखो, फिर मुझे लेने न आना"।

"अब, लेने आने की बात अगले जन्म में"।

"अच्छी बात है" क्रोध में भरकर मोती बोली और सामान बाँधने लगी।

"सामान कहाँ ले जायगी?"

"तो क्या कपड़े न ले जाऊँ?"

"कपड़े नहीं ले जा सकती। जाना हो, तो यों ही चली जा।"

"तो साफ-साफ नाहीं क्यों नहीं कर देते?"

"मैं क्यों नाहीं करने लगा? तेरे बाप के यहाँ जाने में यदि प्रतिष्ठा बढ़ती हो, तो जरूर जा।"

"प्रतिष्ठा तो तुम्हारे ही यहाँ रहकर बढ़ेगी। लेकिन, तुम ये सब कुकर्म कर रहे हो, न?"

"तू तो कुछ समझती ही नहीं है, तो फिर क्या किया जाय? तू ही कह!"

"यानी?"

"यानी और कुछ नहीं, मैं नौकरी नहीं करना चाहता। बोल, अब तू क्या कहती है?"

"लेकिन, अपने उन मुसण्डे दोस्तों की सोहबत भी अब किसी तरह छोड़ोगे?"

"वह नहीं छूट सकती"।

"तो फिर हमलोगों को दुःख पा-पाकर मरना ही, है न!"

"तू तो समझती ही नहीं है"।

"मैं, सब जानती हूँ"।

"क्या खाक-धूल जानती है?"

"हाँ, खाक-धूल जानती हूँ। देवा की लड़की को उठा ले जाना है, यही बात है न?" मोती ने जमादार के मुँहपर रोषपूर्ण-आँखें गड़ाते हुए कहा। "यह रहने देना। और किसी की तरफ नहीं, तो कम-से-कम इन छोटे-बच्चों की तरफ ही देखना।"

"मुझसे यह किसने कहा?" जमादार जानता था, फिर भी उसने पूछा।

"मुझसे चाहे जिसने कहा हो! लेकिन कहो, क्या यह बात झूठ है? तुम्हें, ऐसा धन्धा कहाँ से सूझा? क्या सीधी-तरह पेट नहीं भरता? कमाने की आदत न हो, तो चुपचाप घर में ही बैठे रहो। मै, मजदूरी करके तुम्हारा पेट भरूँगी, फिर क्या चाहिये?"

"मोती!" जमादार धीरे-से बोला "जरा आहिस्ता बोल, कोई सुन लेगा"।

"भले ही सुन ले। मैं तो कहती हूँ, कि इस पाप में से तुम्हारा उद्धार करने के लिये, यदि भगवान् तुम्हें जेल भेजते हों, तो भले ही भेजे।"

"तू यही करावेगी" जमादार क्रुद्ध होकर बोला।

"जब, मेरा एक भी उपाय काम न देगा, तब मैं यही करूँगी। मैं ही कोतवाली में जाकर खबर दे आऊँगी।"

"ऐ! तू यह क्या कह रही है—मोती! धीरे बोल, कोई सुन लेगा तो......" जमादार खड़ा होगया।

"तो कहो, कि इस काम में नहीं पड़ोगे!" मोती ने धीरे-से कहा।

"लेकिन, अब मेरे हाथ की बात नहीं रह गई है" ढीले-स्वर में जमादार बोला।

"चाहे जो हो। तुम, उस झगड़े के पास भी न जाओ। उन मुओं के साथ बात ही न करो।"

"अब, कुछ भी नहीं हो सकता—मोती! सब तय होगया है।"

"कुछ भी तय नहीं हुआ है। तुम सौगन्द खाओ, कि यह कार्य नहीं करोगे।" मोती, जमादार के नजदीक जाकर प्रेम से बोली।

"अब, कुछ भी नहीं हो सकता" जमादार ने फिर वे ही शब्द दोहरा दिये।

"तो तुम्हें, हम सब को ख़राब करना है ?"

"किसी को भी ख़राब नहीं होना पड़ेगा–मोती ! किसी को सन्देह तक न होने पावेगा।"

"लेकिन, तुम यह किस जन्म के लिये......" मोती जमादार के बिलकुल सहारे आकर बोली।

"तू, दूर खड़ी रह। देख, मैं तुझसे सब बातें बतलाऊँ। यदि, बात तेरे पेट से बाहर निकल गई, तो समझ लेना, कि हम सब मर जायँगे।"

"मुझे, तुम्हारी बात नहीं सुननी है। इस पाप के करने से तो मर जाना ही अच्छा है।"

"तू, तो समझती ही नहीं है। ज़रा मेरी बात तो सुन !"

"क्या बात है ? बोलो तो सही !"

"तू पहचानती है, जो लोग यहाँ आते हैं, वे कौन हैं ?"

"हाँ, सारे शहर के उतार !"

"तू, मेरी बात सुन ! मैं, अब अगर इस काम से पैर पीछे हटाऊँ, तो ख़ुद मेरी ही जान जोखिम में पड़ जाय ! समझी ?"

"यानी, वे तुम्हें मार डालें, ऐसा ?"

"हाँ मैं आज की रात न देख पाऊँ। तू, इतने ही में समझ जा।"

"लेकिन........" ओठ पर उँगली धरकर मोती विचार में पड़ गई।

"अब तो काम पूरा करने पर ही छुट्टी मिल सकती है ! देख......" कहकर जमादार ने अपनी जेब से नोटों का बण्डल निकाला। मोती, उस बण्डल की तरफ और जमादार के मुँह की तरफ देखने लगी।

"क्या देखती है ? तू ही बतला, कि अब मुझे क्या करना चाहिये ? तू कहे, तो ये रुपये वापस दे आऊँ और अपने ही हाथों अपनी मौत माँग लूँ !"

मोती, कुछ न बोली। उसकी बुद्धि कुण्ठित होगई।

"बोल, चुप क्यों होगई ?"

"क्या बोलूँ ? मुझे तो कुछ दीख ही नहीं पड़ता। हमलोगों के सिर पर मौत मँडरा रही है, और कुछ नहीं।"

"लेकिन, अब क्या हो ?"

मोती और जमादार, दोनों खड़े-खड़े बातें कर रहे थे, कि इसी समय पासवाले मकान से अमीनाबाई वहाँ आगईं। उनकी आकृति से ही उनके यहाँ आने का कारण जाहिर हो रहा था।

"देख, मोती ! तेरा पति रुपये के लालच में पड़ा है। यह, यों नहीं मानेगा। मैंने, अकबर से कह दिया है, कि पुलिस में ख़बर दे दे।"

जमादार चौंक पड़ा और तुरन्त ही बोला "........लेकिन अमीनाबाई ! यह सब रहने दो। वे सब, तुम्हारे लड़के को भी मार डालेंगे !"

"मार डालने दो। मेरा लड़का सब जानता है। हमलोग ऐसे डरपोक नहीं हैं।"

जमादार, स्तब्ध होकर देखता रहा।

"देख क्या रहा है? इन स्त्री-बच्चों का भी ज़रा ख़याल रख।"

"लेकिन, मैं क्या करूँ?" जमादार टूटी-फूटी वाणी में बोला।

"तो आज शाम को बैठ जाओ जेलखाने में! वहाँ रोटियाँ खाना और ख़ुदा को याद करना!"

"क्या तुम सच कह रही हो—अमीनाबाई!" जमादार ने कहा।

"तो क्या यों ही डरा रही हूँ?" शान्त-मुखमुद्रा से अमीनाबाई बोलीं।

"ऐं! तब तो घड़ी-दो घड़ी में......" जमादार व्याकुल हो उठा। "मैं जाता हूँ" कहकर उसने बाहर जाने की तैयारी करनी प्रारम्भ की। मोती ने, भयभीत होकर अमीनाबाई की तरफ देखा। अमीनाबाई ने, आँख के इशारे से मोती को शान्त रहने के लिये कहा।

"क्यों, क्यों, बाहर जाने की क्या जरूरत है?"

जमादार, बिना कुछ बोले एकदम बाहर निकल पड़ा। मोती, उसके पीछे-पीछे जाने को तैयार हुई, लेकिन अमीनाबाई ने उसे रोका और धीरे-से कहा—"तू डर मत, कुछ नहीं है"।

जमादार, भयभीत चेहरे से इधर-उधर देखता हुआ नीचे उतर गया। बाहर निकलकर, उसने सड़क पर दूर तक अपनी नजर दौड़ाई और फिर सामनेवाली गली की तरफ चल दिया।

"ऐ...जमादार!" खिड़की में से अमीनाबाई ने पुकारा। जमादार ने, यह आवाज़ सुनी, लेकिन पीछे देखे बिना, वह गली में घुस गया।

१३

बेचारा जमादार

जमादार के हृदय में, भय छा गया। थोड़ी दूर चलने के बाद उसे ख़याल आया, कि 'अब कहाँ जाऊँ ?" उसकी घबराहट बढ़ने लगी। उसे, प्रतिक्षण ऐसा जान पड़ने लगा, कि अभी पकड़ लिया जाऊँगा। चौराहे पर खड़े हुए पुलिसवाले की आँखे बचाकर, वह आगे चला।

मोती को जब यह बात मालूम हुई, कि अमीनाबाई ने केवल डर ही बतलाया था, तब उसकी एक चिन्ता तो कम हुई, लेकिन दूसरी चिन्ता बढ़ने लगी। उसे जान पड़ा, कि अब जमादार वापस न आवेगा। थोड़ी देर सोचकर, उसने अमीनाबाई से सलाह ली और फिर जमादार को ढूँढने निकली। अमीनाबाई को ख़याल आया, कि अन्त तक वह बात कहते रहकर, उन्होंने बड़ी-भारी भूल की है। लेकिन, 'अभी वापस आ जायगा'-यह सोचकर उन्होंने अपने मन को शान्त किया।

मोती, जमादार के पीछे-पीछे जाने लगी। जमादार, दिखाई तो नहीं दे रहा था, फिर भी, अमुक-अमुक रास्ते से ही गया होगा, इस ख़याल से वह जल्दी-जल्दी चलने लगी। सौभाग्यवश, उसका रास्ता ठीक था। उसने, जमादार को एक गली के छोर से जाते हुए देखा। आवाज़ न देकर, वह जल्दी-जल्दी चलने लगी। जमादार,

एक मकान के पास ज़रा रुक गया। मोती, सोचने लगी। जमादार ने दरवाज़ा खटखटाया। एक आदमी ने दरवाज़ा खोला। मोती ने दूर से देखा, वह उसके घर आने-जानेवाला जमादार का एक दोस्त ही था। जमादार, अभी भीतर जाकर साँस ले, कि इतने ही में मोती ने वहाँ पहुँचकर दरवाज़ा ठोका। जमादार, काँप उठा। उसी दोस्त ने उठकर दरवाज़ा खोला। वहाँ, मोती को देखते ही जमादार आश्चर्यचकित होगया।

"चलो, घर चलो" मोती ने बाहर खड़े-ही-खड़े कहा। जमादार, बिना कुछ बोले उसकी तरफ़ देखता रहा।

"चलो, वह बात झूठी है। अमीनाबाई, तुम्हें यों ही डराती थीं।"

"क्या है?" उस मुसलमान ने पूछा।

"कुछ नही" तिरस्कारपूर्ण-स्वर में मोती ने उत्तर दिया।

"यह, तेरी औरत है, न?" उसने जमादार से पूछा।

जमादार घबराया, उसने सिर हिलाकर 'हाँ' की।

"अमीना की क्या बात कर रही है?"

"कुछ नहीं" जमादार ने डरते-डरते कहा।

"क्या?" उस मुसलमान ने आँखे निकालकर जोर से कहा।

"चलो, घर चलो" मोती ने नीचे खड़े-ही-खड़े जल्दी की।

"यह बात क्या है, सो पहले बतला दे"।

मोती घबरा उठी। जमादार ने, साहस एकत्रित करके, संक्षेप में सब बात कह सुनाई।

"ऐसा! अच्छी बात है, तो अब वह अकबरिया और उसकी माँ भी देख ले!"

बोलनेवाले की मुखमुद्रा देखकर मोती काँप उठी। उसने, जमादार की तरफ़ देखा। जमादार, उठ खड़ा हुआ।

"कहाँ जा रहा है ?"

"घर"

"पुलिस पकड़ने आवेगी, तो ?"

"नहीं-नहीं, वह बात बिलकुल-झूठ है"।

"तू, अब अकबरिया या उसकी माँ से कुछ भी न कहना। अब, आजकल में ही उनका फैसला है। सेठ की लड़की की बात तो फिर होगी।" भयंकर-मुँह से ये शब्द निकले।

मोती तो उसकी बात सुन ही न सकी। उसने, फिर भयपूर्ण-नेत्रों से जमादार की तरफ देखा। दोनों, वहाँ से चल दिये। उस मुसलमान ने, इनकी तरफ देखकर दरवाज़ा बन्द कर लिया।

"देखा" आगे बढ़ने पर जमादार ने कहा—"मैं, इसके पंजे में फँस गया हूँ"।

"अपने हाथों ही तो !" मोती ने जवाब दिया।

बिना और कुछ बोले, दोनों घर आये। बेचारी मोती ने, कभी इस प्रकार की उलझन न अनुभव की थी। उसे, बार-बार ऐसा जान पड़ने लगा, मानों उसका सिर दर्द करता है। शाम होने तक, जमादार घर पर ही रहा। दोनों के बीच बहुत-सी बातें हुईं। किन्तु, वे बातें सिर पर झूलते हुए भय को कम कर सके, ऐसी न थीं।

जमादार आया, तब अमीनाबाई का लड़का अकबर भी बाहर से आ गया था। मोती डरती थी, किन्तु फिर भी उसने अकबर तथा अमीनाबाई से सब बातें कहीं। उसकी बात सुनकर, उन माँ-बेटे की समझ में आगया, कि अब वे लोग हमें न छोड़ेंगे। यों तो, दोनों ही साहसी थे, किन्तु फिर भी उन्होंने सोचा, कि इसका कोई रास्ता अवश्य ही ढूँढ निकालना चाहिये।

"मेरा तो दिल कहता है, कि पुलिस में ख़बर दे ही दूं। जो होना होगा, सो होजायगा।" अक़बर ने अपने घर आकर अमीनाबाई से कहा।

"लेकिन, बेचारी मोती और उसके बच्चे ख़राबी मे पड़ जायेंगे। जमादार पर तो मुझे ज़रा भी दया नहीं आती।"

"हमलोग, यों ही सोचते रहेंगे और वे अपना काम पूरा कर डालेंगे" अक़बर बोला।

"तूने, अपने मौलवी साहब से बात की थी?"

"हॉ"

"उन्होंने क्या कहा?"

"उन्होंने तो एक और ही बात कही। वे तो कहते हैं, कि इस बात की इत्तिला सब से पहले सेठ की लड़की को ही दो। फिर, यदि वह ज़रूरत समझेगी, तो खुद ही पुलिस को इत्तिला दे देगी।"

"हॉ, यह भी अच्छी-सलाह है!"

"लेकिन, अगर वह इत्तिला न दे, तो?"

"ऐसा तो कभी हो ही नहीं सकता"।

"सुना है, लड़की ऐसी नहीं है, जो पुलिस को ख़बर दे। और वह डर जानेवाली भी नहीं है।"

"तूने, मौलवीसाहब से यह बात नहीं बतलाई?"

'बतलाई थी। उन्होंने कहा, कि तब तो फिर चिन्ता ही नहीं है। वह, अगर पुलिस से न कहेगी, तो कोई दूसरा रास्ता ढूँढ निकालेगी।"

"मुझे, उनकी बात सच्ची जान पड़ती है" अमीनाबाई बोली "मुमकिन है, वह कोई दूसरा रास्ता अख़्तियार करे, जिसमें यह

जमादार बच जाय ! लेकिन अक़बर !" ज़रा गम्भीर-आवाज में अमीनाबाई ने कहा—"वे गुण्डे मुझ से वैर मानेंगे !"

"इसी लिये मेरा जी कहता है, कि पुलिस को ख़बर दे देने से सब ठीक हो जायगा। हालाँकि पुलिस भी इन्हीं लोगों के हाथ में है, लेकिन तब भी फ़र्क तो पड़ ही जायगा, न !" अकबर विचार करता-करता बोला।

"अमीनाबाई !" मोती दरवाजे में आती हुई बोली। माँ-बेटे का ध्यान उस तरफ आकर्षित हुआ।

"आ, मोती !" अमीनाबाई ने स्वागत किया !"

"हमारे पाप के छींटे तो तुम पर भी उड़ेंगे—अमीनाबाई !" मोती ने भरे हुए गले से कहा।

"क्यों ? क्या और कोई नई-बात है ?"

"नयी क्या, लेकिन वह तो मुझे यमदूत-सा जान पड़ा"।

"बस, पुलिस को ख़बर देने के सिवा, और तो कोई रास्ता ही नहीं है" अकबर ज़रा उत्तेजित होकर बोला—"इस बार तो इन सभी को पकड़वा ही देना चाहिये"।

"लेकिन, अपराध करें, तभी तो पकड़े जा सकते हैं, न !" अमीनाबाई ने महत्त्व की बात बतलाई।

"हाँ" अक़बर ज़रा रुका और फिर कहने लगा—"लेकिन, पुलिस उन पर कड़ी-निगरानी तो जरूर रक्खेगी और हम सब की ज़रूरी-हिफाजत का भी उसे ख़याल रहेगा"।

"बेचारा जमादार मर जायगा। यह कहाँ जा फँसा !" अमीनाबाई ने दुःखोद्गार निकाले।

'अक़बरभाई !" मोती बोली "इन्हें कुछ न होने पावे, ऐसा करना"।

"जमादार को तो हैरान होना ही पड़ेगा। वही तो इसमें खास-आदमी है।"

"दूसरा कोई रास्ता ढूँढ निकालो। ये तो उसमें फँस ही गये हैं।" मोती ने विह्वल होकर कहा।

"यह तो मैं भी जानता हूँ। लेकिन, इसका कोई दूसरा रास्ता ही नहीं है। अब तो जमादार काम पूरा करने से इनकार करे, तो भी मरता है और हाँ करे, तो भी! इस समय तो वह कुएँ और खन्दक के बीच में पड़ गया है! जिधर गिरे, उधर मौत!"

"तो भी, कोई रास्ता निकालो। तुम ढूँढ सकते हो। क्योंकि तुम्हें कायदे-कानून मालूम हैं।" मोती ने प्रार्थना की।

"मैं, विचार करूँगा" कहकर अकबर ने मोती को आश्वासन दिया। मोती, अपने घर गई। माता-पुत्र, दोनों इस प्रश्न पर विचार करने लगे।

"एक रास्ता मुझे दीख पड़ता है" अकबर बोला।

"क्या ?"

"जमादार अगर मान जाय, तो उसी को साथ लेकर पुलिस के पास जाऊँ और पुलिस से मिलकर उस सारी टोली को पकड़वा देने की कोई युक्ति करूँ"।

"हाँ" अमीनाबाई कुछ प्रसन्न हुई। किन्तु, एक विचार आते ही वे फिर बोली—"लेकीन जमादार मानेगा ?"

"नहीं मानेगा, तो मरेगा। क्या वह इतना भी नहीं समझता ?"

"तो मैं बुलाऊँ, वह घर पर ही है"।

"भले ही बुलाओ"।

अमीनाबाई, जमादार को बुला लाईं। उसकी परेशानी की तो कोई सीमा ही न थी। वह आते ही अपना सिर नीचा करके बैठ गया।

"अब, तूने क्या विचार किया?"

"कुछ नहीं"

"एक विचार है, यदि तू मान जाय। बोल, तैयार है?"

"मेरे हाथ में, अब एक भी बात नहीं है। मैं, हाँ करता हूँ, तब भी मौत है और नाहीं कर दूँ, तो भी।"

"जिन्दा रहने का एक रास्ता है। बोल, उसे ग्रहण करने की तेरी इच्छा है?"

"क्या?"

अक़बर ने, सारी बात समझाई। जमादार, कुछ भी विचार न कर सका। अक़बर ने जवाब माँगा, तो जमादार इससे अधिक कुछ भी न कह सका, कि—"मुझे कुछ नहीं सूझ पड़ता"।

"केवल यही एक रास्ता है। नहीं तो, हम सबको हैरान होना पड़ेगा और वे लोग अपना काम कर जायँगे।"

जमादार, सिर झुकाये बैठा रहा। अक़बर, आगे कुछ और कहना चाहता था, कि इसी समय किसी के पैरों की आहट सुनाई दी। सब को एकसाथ यही सन्देह हुआ, कि वे दोस्तलोग ही हैं। और था भी ऐसा ही। दो आदमी जीना चढ़ते हुए उपर आ रहे थे। अक़बर ने कहा, इसलिये जमादार अपने घर की तरफ चल दिया। उन दोनों ने, जमादार को अक़बर के घर से बाहर निकलते देखा, अतः एक-दूसरे की तरफ अर्थपूर्ण-दृष्टि से देखने लगे।

"क्यों, जमादार साहब!" दरवाज़े में खड़े होकर एक ने कटाक्षपूर्ण-भाषा में पुकारा। जमादार, डरता-डरता बाहर आया।

"चलो, बाहर चलोगे, न!"

जमादार, स्तब्ध होकर देखता रहा।

"विचार क्या करता है ? चल, बाहर निकल। और अकबर !" अमीनाबाई के घर की तरफ देखकर उसने आवाज़ दी। अकबर ने, घर के भीतर खड़े होकर जवाब दिया—"क्यों, क्या है ?"

"अब, जागते रहना, हो ?"

अकबर, बिना कुछ बोले अपनी जगह पर खड़ा रहा। उस आदमी ने, जमादार की तरफ आँखे निकालते हुए कहा—"क्यों, चलता है, या नहीं ? चल, सबलोग वहाँ बैठे-बैठे तेरा इन्तिज़ार कर रहे हैं ?"

"क्या काम है ?"

"यह तो वहाँ जाकर मालूम होगा"।

"ये नही आवेंगे" मोती ने बाहर निकलकर कहा।

"तू घर में बैठी रह ! इसमें तेरा काम नहीं है !" उस आदमी ने मोती को डाट दिया।

"अपने नहीं जाना है। तुम घर में चले आओ।"—मोती ने जमादार का हाथ खीचा। जमादार खिचा।

"तेरी मौत सिर पर नाचती जान पड़ती है"।

जमादार काँप उठा।

"अच्छी-बात है, अब बाहर निकलना ! और इस तेरी रएडी को भी देख लेंगे। सेठ की लड़की की बारी फिर आवेगी, पहले तेरी औरत की ही बारी है !"

दोनों वापस लौटने लगे, इसी समय जमादार ने मोती के हाथ से अपना हाथ छुड़ाकर कहा—"मैं अभी आता हूँ"।

"तो चल"।

१४

बचने का रास्ता.

सादिक़मियाँ के साथी–हसन और आदम–जमादार के घर से निकलकर ज्योंही नीचे उतरे, कि त्योंही सामने से तथा बग़ल की गली में से निकलकर और चार दोस्त उनसे आ मिले। सबने मिलकर, गली के एक अँधेरे–कोने में खड़े–खड़े कुछ बातें कीं और फिर जमादार के घर पर निगाह डालते हुए बिखर गये।

जमादार, घर में तो आया, लेकिन उसके होशहवास उड़े हुए थे। उसे जान पड़ा, कि अब मेरी मौत ही आगई है। मोती, उसके पास बैठी–बैठी, उसी की तरफ़ देख रही थी। इस आफ़त से उद्धार पाने का, उसे भी कोई रास्ता नहीं दिखाई देता था। अमीनाबाई और अक़बर, दोनों घर में जाकर, इस मामले पर विचार करने लगे। अक़बर को जान पड़ा, कि अब पुलिस को ख़बर देने में, जितनी देर होती है, उतनी ही जोखिम सिर पर बढ़ रही है। अमीनाबाई से बातें करके, वह जमादार के पास आया। मोती, दरवाज़ा बन्द किये बैठी थी। अक़बर की आवाज पहचानकर, उसने दरवाज़ा खोल दिया।

"तू अपने घर जा—अक़बर!" अक़बर जमादार से कुछ कहे, इससे पूर्व ही जमादार ने कहा।

"मेरी बात तो सुन"।

"मुझे नहीं सुननी है। इस वक्त, मेरा दिमाग ठिकाने नहीं है। सबेरे आना।"

अकबर, विचार में पड़ गया। मोती ने, जमादार से कहा—

"अपने भले के लिये कहते हैं। बात तो सुन लो। हमलोगों के लिये ही बेचारे मौत की जोखिम सिर पर उठाये बैठे हैं।"

"मुझे, इस समय कुछ भी नहीं सुनना है"।

अकबर उठा। उसने, मोती को अपने साथ आने को कहा। मोती, दरवाजा बाहर से बन्द करके अमीनाबाई के यहाँ गई।

"क्या किया जाय—मोती! तुझे कुछ सुझ पड़ता है?" अकबर ने पूछा।

"मेरा तो सिर पक गया है! मुझे कुछ दिखाई ही नहीं देता। न-जाने किस जन्म के पाप इस समय उमड़ आये हैं।"

"लेकिन, कुछ रास्ता तो निकालना ही पड़ेगा न?" अकबर ने कहा।

"हाँ, अक़बर!" अमीनाबाई बोलीं "और अगर यह मोती सेठ की लड़की के पास जाय, तो?"

"क्यों?"

"वह जरूर ही इसकी कुछ मदद करेगी। उसके बड़े-बड़े ज़रिये हैं।"

"लेकिन, वह जमादार को थोड़े ही बचावेगी? उसे ही उठा ले जाने के लिये तो यह सारा षड्यन्त्र है!"

"नहीं-नहीं, वह बड़ी-भली है। वह, ज़रूर ही कुछ-न-कुछ सहायता करेगी।" मोती बोली।

"तो मोती! तू अभी जायगी?" अमीनाबाई ने पूछा। "और अक़बर! मोती के लौट आने के बाद ही हमलोग दूसरा विचार करें"।

"लेकिन, इस समय बाहर निकलने मे ही खतरा है" अक़बर कहा। मोती को, जमादार के उन दोस्तों की अन्तिम-बात याद आगई। वह, डर उठी।

"तो तू साथ जा" अमीनाबाई बोलीं, किन्तु तत्क्षण ही मानों कोई बात याद आगई हो, इस तरह उन्होंने कहा—"कोई छिपा खड़ा होगा, तो तुझे देखकर वह जरूर ही चोट करेगा। और अगर मोता अकेली होगी, तो मुमकिन है, इसे पहचान ही न सके।"

"और अगर मै इस तरह जाऊँ, कि कोई मुझे पहचान ही न सके, तो?" मोती को मानो कोई नई-बात सुझ पड़ी हो।

"किस तरह जायगी?"

"तुम्हारे कपड़े पहन लूँ" मोती ने अमीनाबाई से कहा।

"हाँ, यह ठीक है"।

"लेकिन, यदि वे लोग खड़े होंगे, तो यहीं कहीं खड़े होंगे। इस मकान से बाहर निकलते ही वे पहचान जायँगे।" अकबर ने कहा।

"तो फिर क्या करूँ?" मोती बोली।

"मै समझता हूँ, कि रात को बारह बजे के बाद जाना ठीक होगा" अक़बर ने कहा।

"लेकिन, उस वक्त क्या ज़्यादा डर नहीं होगा?" अमीनाबाई बोलीं।

"नहीं। उन लोगों को इस बात का ख़याल भी कैसे हो सकता है, कि हम रात को बारह बजे के बाद बाहर निकलेंगे?" अक़बर ने अपनी योजना की व्याख्या की और तीनों इस पर एकमत हुए।

मोती, वहाँ से उठकर जमादार के पास आई। इस समय, रात के नौ बजनेवाले थे। आज शाम को, उसने चूल्हा ही न जलाया

था। सबेरे की बची हुई रोटियाँ बच्चों को खिलाकर, उन्हें सुला दिया था।

"लो, अब सो जाओ" बिछौना बिछाते हुए मोती ने जमादार से कहा। जमादार, अपनी जगह से उठा और बिना कुछ बोले, बिछौने पर लम्बा होकर सो गया। आज, उसका दिमाग़ काम नहीं करता था। क्षणभर में एक विचार और दूसरे क्षण दूसरा विचार उसे सताता था। लगभग आधे घण्टे तक वह बिछौने में ही पड़ा रहा। उसने देखा, कि मोती जाग रही है। अतः उसे अपने पास बुलाया।

"मोती, तू एक काम करेगी ?"

"क्या ?"

"ये अक़बर और अमीनाबाई पुलिस को ख़बर न दें, ऐसा कर। नहीं तो हमलोग मर जायँगे।"

"वे, अभी ख़बर न देंगे"।

"अभी ही नहीं, ये कभी ख़बर न दें, ऐसा कर"।

"आख़िर क्यों? वे जो ख़बर न दें, तो तुम्हारी और उनकी दोनों की जान जोखिम में पड़ी रहेगी।"

"नहीं, दोनों बच जायँगे। तू इतना काम कर।"

"मैं, कुछ समझ नहीं पाती"।

"अगर, अक़बर पुलिस को ख़बर न दे, तो यह काम मैं पूरा कर डालूँ"।

मोती चौंक पड़ी। जमादार के दिमाग़ में अब भी इस तरह के विचार आ रहे होंगे, इस बात की तो उसे कल्पना भी न थी।

"अब भी तुम्हारा मन वहीं दौड़ता है ?"

"लेकिन, दूसरा तो कोई रास्ता ही नहीं है—मोती! उसके सौ रुपये जो मैं ले आया हूँ!"

"तो वापस क्यों नहीं लौटा देते? हमें ऐसे रुपये न चाहिएँ।"

"लेकिन, वापस लौटा देने पर भी कहाँ काम चलता है? वे सब तो यह काम किये बिना मानेंगे नहीं और उस सूरत में मुझे —सब बातों के जानकार को क्या वे जीवित रहने देंगे?"

"तुम, हमारे साथ ही चलो न! सब चलकर कोतवाली पर ख़बर दे दें, जिसमें वे मुये सभी एक-साथ पकड़ लिये जायँ!"

"ऐसा नहीं हो सकता"।

"क्यों नहीं हो सकता?"

"उसमें, अपनी ही मौत है। अपने पास सबूत कहाँ है?"

"तुम, सब बातें कह देना"।

"खाली कह देने से ही काम नहीं चल सकता। रुपयों की थैलियाँ चाहिएँ।"

मोती, चिन्ता में पड़ गई।

'तो, अब तू क्या कहती है?" जमादार ने पूछा।

"मैं, ऐसी राय नहीं दे सकती। मुझे पाप में नहीं पड़ना है।"

"तो मुझे मरने देना है?"

"मैं क्या करूँ?"

"ठीक"

"लेकिन, अपने हाथ ही तो तुमने यह उपद्रव खड़ा किया है"!

"जो होना था, सो होगया। अब क्या हो सकता है? यों तो तू लड़कों के ख़राबजाने की और प्रेम-प्रीति की बहुत-सी बातें करती है! फिर खरे-वक्त पर आकर क्यों इस तरह की बन जाती है?"

"लेकिन, मै क्या करूँ? मुझसे ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा करने पर, सात-जन्म में भी हमलोगों का भला नहीं होगा।"

"तो तेरी मरजी। मैं तो इसी समय बाहर जाता हूँ। जो होना होगा, सो हो जायगा।" यह कहकर जमादार उठ बैठा। मोती घबराई।

"अभी नहीं। तुम सो जाओ। इस वक्त, बाहर नहीं जाना है। वे मुए तुम्हें मार डालेंगे!" मोती घबराये हुए स्वर में बोली।

"यों भी मरना है और यों भी मरना है" यह कहकर जमादार खड़ा होगया। मोती भी जल्दी-जल्दी उठ खड़ी हुई।

"तुमसे एक बात कहूँ!"

"क्या?"

"मै, देवा की लड़की के पास हो आऊँ"।

जमादार चौंका। "क्या काम है? क्या मुझे पकड़वाना है?"

"नहीं-नहीं, वह इसमें से कोई रास्ता ढूँढ निकालेगी"।

"और तो एक भी रास्ता नहीं है। तू, ज्योंही उससे कहेगी, त्योंही मेरे हाथों में हथकड़ी पड़ जायगी!"

"नहीं-नही, तुम उसे पहचानते ही नहीं हो। वह तो अत्यन्त-दयालु है।"

"चाहे जितनी दयालु क्यों न हो!"

"लेकिन, तुम जरा बैठो तो सही!" मोती ने उसका हाथ खींचा।

जमादार, विचार में था। दोनों बैठे। मोती ने, अमीनाबाई तथा अकबर के साथ हुई सब बातें कह सुनाई और अन्त में अपनी तरफ से यह और बढ़ा दिया, कि—"तुम समझते ही नहीं हो! तुम्हारे लिये, ये बेचारे कितना कष्ट उठा रहे हैं। उनका इसमें क्या स्वार्थ है?"

जमादार, सिर झुकाकर विचार में पड़ गया। मोती को, कुछ आशा जान पड़ी।

"बोलो, तुम भी हमारे साथ चलोगे? वह, तुम्हारा एक भी ऐब याद करे, ऐसी नहीं है। वह, हमलोगों की-सी नहीं है!"

"लेकिन, फिर भी बचने का कोई सहारा नहीं है" जमादार ने थोड़ी देर विचार करके उद्‌गार निकाले।

"भगवान्, सब अच्छा ही करेगा। तुम, एक बार इस पाप में से हाथ धो डालो, फिर हमारे दिन घूमते देर न लगेगी।"

बातों तथा विचार ही में बारह बजे के क़रीब समय होगया। मोती को याद आ जाय, इसके लिये अकबर ने अपना दरवाजा खटखटाया।

"लो, जल्दी बोलो, जाओगे न?" मोती, दरवाज़ा खटकना सुनकर समझ गई और बोली। जमादार ने, कोई उत्तर न दिया। मोती ने उठकर अपना दरवाज़ा खोला और अकबर को बुलाया। थोड़ी देर, दरवाजे के बाहर खड़ी रहकर, मोती ने अकबर से सब बातें कहीं। फिर, दोनों भीतर आये।

"क्यों, तू भी आवेगा, न?"

"मुझे, यहीं पड़ा रहने दो। तुम लोगो को जो करना हो, सो करो!" थकी हुई आवाज़ में जमादार बोला।

"मोती!" अक़बर ने कहा "हमलोग ही हो आवें। यह, भले ही यहाँ बैठा रहे।"

मोती, जमादार की तरफ देखती हुई अक़बर के साथ उठ खड़ी हुई और बाहर निकलने लगी।

"अरे, लेकिन तुम मेरी ख़राबी क्यों कर रहे हो?" जमादार सहायता के लिये पुकार रहा हो, इस तरह बोला।

मोती, वापस लौट पड़ी। अक़बर, जहाँका–तहाँ खड़ा रहा।

"इसमें तुम्हारा और सब का भला ही होनेवाला है" मोती आश्वासन देने लगी। अक़बर ने, आँख के इशारे से उसे बाहर आने को कहा। मोती बाहर निकली।

"तू, इस वक्त उससे बात ही मत कर। उसका दिमाग़ ठिकाने नहीं है। वह, घबरा उठा है। तू तैयार हो जा और घर में बाहर से ताला बन्द कर दे। जिसमें, यह कहीं बाहर भी न जा सके।"

मोती को, अक़बर की सलाह ठीक जान पड़ी। वह, घर में गई। जमादार, घुटनों पर सिर डाले बैठा था। मोती ने, धीरे–से ताला उठाया और बाहर निकली। आहिस्ता–आहिस्ता किवाड़ बन्द किये, जंजीर लगाई और ताला बन्द कर दिया।

अकबर, तैयार होकर बाहर निकला। उसने, अपनी जेब में एक छुरी डाल ली और हाथ में लाठी ले ली। दोनों, बिना कुछ बोले भंगीपुरे की तरफ चल दिये।

सविता का निश्चय.

रात को साढ़े बारह बजे, सविता की कोठरी का दरवाज़ा खटका। देवा और सविता, दोनों ही जाग पड़े। सविता ने, जल्दी-से उठकर दरवाज़ा खोला और मुहल्ले के चौक में जलनेवाले लैम्प के प्रकाश में, दोनों आगन्तुकों को देखा। सविता, उन दोनों में से किसी को भी न पहचान सकी। उसने, आश्चर्य में भरकर पूछा— "किससे काम है?"

अकबर ने जवाब दिया—"आप से ही काम है। यह, जमादार की औरत मोती है।"

सविता ने, उसकी तरफ देखा। उसने, मोती को पहचानते हुए आश्चर्य में भरकर उससे पूछा—"इस वक्त क्यों आई?"

"आपसे, एक खास-काम है"।

सविता, कुछ न समझ पाई। क्षणभर में ही, उसके मन में नाना प्रकार के विचार उत्पन्न होगये।

"तो ज़रा ठहरो, मैं लालटेन जलाऊँ" यह कहकर वह कोठरी में वापस आई। देवा, इस बातचीत से बिलकुल जाग गया और उठ बैठा। वह, ज़रा घबराकर पूछने लगा—"क्या है? क्या है?"

"कुछ नहीं, तुम सो जाओ" कहते हुए सविता ने लालटेन जलानी शुरू की। बत्ती जलते ही, उसने अकबर तथा मोती को भीतर बुलाया। देवा, सोया नहीं। वह, आश्चर्यचकित होकर इन दोनों आगन्तुकों को देखने लगा। उसके मन में, अनेक शंकाएँ पैदा होने लगीं।

"बोलो, क्या काम है?" दोनों को नीचे बैठाकर, स्वयं बैठते हुए सविता ने पूछा।

"आप, इस मोती को जानती हैं, न?"

"हाँ, थोड़े दिन पहले, ये जमादार की नौकरी के लिये मेरे पास आई थीं"।

"और आज उसकी जान के लिये आई है" अकबर ने कहा।

"क्या मतलब? मैं आपके कहने में कुछ भी नहीं समझ सकी" सविता ने शान्त आवाज़ में कहा।

"जमादार ने, एक मूर्खता की है। वह, कुछ गुण्डों के हाथों जा फँसा है........."

"आप, शुरू से ही समानरूप से बात कीजिये" सविता ने कहा।

"मैं ही कहूँ" मोती बोली।

देवा, यह बात सुनकर, अपने बिछौने में से उठा और वहीं आकर बैठ गया। मोती ने, बात कहनी शुरू की। सारी वस्तुस्थिति, दुःख, दर्द और याचनापूर्वक उसने पेश की। ये सब बातें सुनकर, देवा का तो सिर ही घूमने लगा। उसने, दोनों हाथों से अपना सिर दाब लिया। सविता, विचार में पड़ गई। उसी समय तो उसकी भी समझ में न आया, कि क्या करना चाहिये?

"आपके हाथ में है। आप ही बचावें, तो वह बच सकता है। वह, फँस गया है।" सविता को विचार में पड़ा देखकर मोती ने कहा।

"मैं, यही सोच रही हूँ, कि इस मामले में मुझे क्या करना चाहिये" सविता ने उत्तर दिया। थोड़ी देर के लिये वहाँ शान्ति व्याप्त होगई।

"लेकिन, मुझे उठा ले जाने का उद्देश्य तो मुझे मुसलमान बना देना ही हो सकता है, न ?" थोड़ी देर रूककर सविता ने पूछा।

"यह तो है ही। लेकिन, वे लोग तो ज़बरदस्त-बदमाश हैं.... ...इतने ही से नहीं मानते" अक़बर ने कहा और उस सारी टोली के सम्बन्ध में वह जो कुछ जानता था, सब कह सुनाया। सविता, ये सब बातें सुनकर काँप उठी। इस दुनिया का तो उसे किंचित् भी परिचय न था।

लगभग एक घण्टा बीत गया। बीच-बीच में, दो-चार बार कुछ वाक्य कहे-सुने गये, लेकिन किसी को कोई मार्ग न सूझ पड़ा। पुलिस को ख़बर देने का विचार सविता के जी में आया। लेकिन, इसी समय अकबर ने कहा, कि ऐसा करने से तो जमादार भी पकड़ा जायगा और दूसरे सब लोगों को भी परेशानी होगी।—पुलिस का त्रास तो सब को एक-सा ही भोगना पड़ेगा।

"मैं, सबेरे मधुसूदनभाई से यह बात कह देखूँ। वे, जरूर ही कोई मार्ग ढूँढ निकालेंगे। उनके पिता बहुत-बड़ी सुविधा तथा साधनवाले हैं।"

"लेकिन, कल तो वे लोग कुछ-का-कुछ कर डालेंगे" मोती बोली।

"तो फिर इस समय क्या हो सकता है ? इस समय तो दो बजनेवाले होंगे।" सविता ने कहा।

"भले ही कल सही। लेकिन, जबतक आप कुछ करेंगी नहीं, तबतक हमलोग घर से बाहर पैर भी नहीं रख सकते।" अक़बर ने कहा।

"वे लोग, अत्यन्त भयंकर मनुष्य जान पड़ते हैं ! आपलोगों से भी क्या वे दुश्मनी मानते हैं ?" कहकर सविता ने अकबर की तरफ देखा ।

"हाँ, लेकिन यह जमादार उस झंझट से छुटकारा पा जाय, इतना ही काफी है । अगर, जमादार बीच में न होता, तो मैं अभी उन लोगों को पकड़वा देता ।"

"उन लोगों को, क्या किसी तरह समझाया नहीं जा सकता ?" सविता ने एक असम्भव-विचार प्रकट किया ।

"वे लोग कभी समझ सकते हैं ! यह जमादार भी अभी पूरी तरह कहाँ समझता है ? अगर मोती जैसी स्त्री उसके घर में न होती, तो जमादार ने अबतक अपने हाथ काले कर डाले होते ।"

"क्या उन लोगों के स्त्रियाँ नहीं हैं ?"

"होंगी तो जरूर ही, लेकिन हम उन्हें क्या जानें ? और वे बेचारियाँ अगर हों ही, तो भी उनका क्या वश चल सकता है ?"

बात आगे चली । मोती ने, जमादार की सफाई देते हुए कहा—

'जमादार ऐसा नहीं है ! वह तो फुसलाने में आ गया है ।"

सविता ने, मोती की तरफ देखा । मोती, इन आँखों को सहन न कर सकी । जमादार का अपराधीपन उसके चेहरे पर प्रकट होगया ।

"जमादार भी उन लोगों से किसी तरह कम नहीं है । आपलोग ही उसे बचानेवाले हो ।" सविता ने कहा ।

"मेरा पति है, न !" मोती ने कहा ।

"हाँ, इसीलिये तो तुम उस दिन आई थीं" ।

"उसके पाप, मेरे ही पाप हैं । हमारी तो कोई बात नहीं है ।

लेकिन, अगर कुछ भला-बुरा होजाय, तो बच्चों का कौन है? वे तो जितने उसके हैं, उतने ही मेरे भी!"

"तुम्हें तो वह बहुत दुःख देता होगा"।

"नहीं-नहीं" मोती ने जवाब दिया और लज्जा से अपना सिर नीचे झुका लिया।

"यही स्त्री उसकी बातें सहन कर पाती है—बहिन!" अकबर बोला "जिस दिन से जमादार की नौकरी छूट गई है, बेचारी मज़दूरी करने जाती है। इस वक्त, यह कमाती है और वह शराब पीता है।"

सविता की मुखमुद्रा ज़रा कठोर होगई। मोती, यह देखकर डरी। उसके मन में क्षणभर के लिये विचार आया, कि 'ये जमादार को न बचावें, तो?"

"लेकिन, आप उसकी तरफ न देखना, मेरे छोटे-छोटे बच्चों की तरफ देखना" मोती ने दीनतापूर्वक कहा।

"नहीं-नहीं मैं तो यह सोच ही नहीं रही हूँ। मुझे तो यह विचार आता है, कि उसके साथ तुम्हारी जिन्दगी कैसे बीतती होगी?"

"अबतक तो हमलोगों की जिन्दगी बहुत अच्छी तरह गुजरी है। इतने वर्षों तक मैंने उसकी ही कमाई खाई है। अकबरभाई तो ज़रा बढ़ाकर बात कहते हैं। जमादार बेचारा ऐसा नहीं है। उसे, मैं तो अच्छी-तरह जानती हूँ न, दूसरे को इस बात की क्या ख़बर हो सकती है? उस दिन उससे गलती होगई, लेकिन पीछे वह बहुत पछताया।"

"अच्छी बात है" सविता ने बात पूरी करते हुए कहा "तो सबेरे मैं मधुसूदनभाई से बातें करूँगी"।

"बातें करने से ही काम न चलेगा। आप ही के हाथ में हम सबलोगों की जिन्दगी है। उसकी तरफ न देखना और न उसके पाप ही याद करना।" मोती बोली

"इस समय तो मुझे कुछ सूझ नहीं पड़ता है। मैं स्वतः भी चकरा गई हूँ। लेकिन, विचार करने पर कोई रास्ता सूझेगा ही।"

अकबर और मोती दोनों उठे। सविता, उन्हें जाने तक पहुँचाकर वापस लौटी। पास ही के क्लॉकटावर में तीन बजे।

"तू, इस झमेले में न पड़ना" सविता के वापस आते ही देवा ने कहा—"जो हो रहा हो, सो होता रहे। तू, अब घर से बाहर न निकलना, बस ख़तम हुआ।"

"कहीं ऐसा हो सकता है? उन्होंने, हम लोगों पर उपकार ही किया है, न! अगर, वे मुझसे कहने न आये होते, तो?"

"लेकिन, ये तो ख़ुद अपने मतलब के लिये आये थे"।

"अपने लिये नहीं, मेरे लिये ही आये थे"।

"फिर भी, तू इसमें न पड़ना"।

"तुम सो जाओ, इसकी फिक्र मत करो। सवेरे मधुसूदनभाई से सब बातें कह दूँगी।"

देवा का, इससे समाधान न हुआ। फिर भी, वह जाकर अपने बिछौने पर पड़ रहा। सविता, लालटेन की बत्ती कम करके अपने बिछौने पर पड़ रही। उसके मस्तिष्क में, विचारों का तूफ़ान उठने लगा। अबतक की बातचीत में जबरदस्ती स्थिर रक्खा हुआ हृदय, अब काँपने लगा।

कैसे भयँकर-मनुष्य हैं! पहला ही विचार आया।

'......मोती बीच में न पड़ी होती, तो? तब तो जमादार जरूर ही कुछ दगाबाजी कर जाता! और मेरा......मेरा क्या होता?' सविता के सारे शरीर में एक बार कँपकँपी आगई। 'मोती, मेरे पास याचना करने आई। किस लिये?......उसने तो मुझे बचाया......

कैसी विचित्र–स्थिति होजाती ? जीवन के, इतने वर्षों में, जिसकी कभी कल्पना भी न की थी, वह सब इन थोड़े ही महीनों में सामने आगया !'

'......लेकिन, अब किया क्या जाय ?......मैं तो अपने–आपको बचा सकूँगी। मधुसूदन मेरी सहायता करेगा। लेकिन, जमादार को ?' जमादार का विचार आते ही, उसे पहला प्रसंग याद हो आया। फिर, अन्तिम–प्रसंग भी आँखों के सामने आगया। 'उसे तो दण्ड मिलना ही चाहिये।......उसी समय दण्ड मिल जाता, तो क्या वह इस हदतक पहुँच सकता था ? इस एक को दण्ड मिल जायगा, तो बाकी सब भी समझ जायँगे।' सविता ने, क्रोध से अपने ओठ दाबे और जमादार के लिये क्या कार्यवाही करनी चाहिये, यह सोचने लगी। थोड़ा विचार करते ही, उसे मोती याद आगई। आँखों के सामने उसका निर्दोष–चेहरा आगया। मन में आया, कि—'मोती का विचार करना चाहिये। उन दोनों को अलग–अलग कैसे किया जा सकता है ? जमादार और मोती ! एक–दूसरे से सर्वथा विपरीत–वस्तु !......और मोती के उपकार ?......वह न होती, तो ?.......तब फिर ?' सविता, उलझन में पड़ गई।

क्लॉकटावर में चार बजे। देवा, बिछौने में पड़ा–पड़ा जाग रहा था। वह उठा और काम पर जाने की तैयारी करने लगा। सविता भी उठ बैठी।

"तू, आज मत चल" ?

"हाँ, मैं नहीं चलूँगी। मुझे, आज मधुसूदनभाई से भी तो काम है, न !"

"मैं तो कहता हूँ, कि तू इसमें न पड़। जैसा होता हो, वैसा होने दे !"

"वैसा नहीं होने दिया जा सकता। मोती भी यदि वैसा ही होने

देती, तो मेरी क्या गति होती, इस बात का भी हमलोगों को विचार करना चाहिये, न !"

देवा, कुछ न बोला और चुपचाप काम पर चल दिया। नीचे खड़ी हुई मण्डली, सविता का रास्ता देख रही थी। अतः, वह वहाँ जाकर उन लोगों को समझा आई, कि मैं आज न आ सकूँगी।

मुहल्ले के लोगों पर उसका विचित्र प्रभाव पड़ा था। लोग, उसे मुहल्ले की भाग्यदेवी ही समझते थे। भय तथा श्रद्धा के आधार पर जीवित रहनेवाले लोगों ने, सविता के आशीर्वाद में अपना उद्धार देखा। सविता मुहल्ले की सेवा करने, वहाँ के बच्चों को पढ़ाने और बीमारों की परिचर्या करने में, कभी पीछे न रहती थी। मुहल्ले के लोगों को, ज्यों-ज्यों उसकी तरफ प्रेम होता जाता था, त्यों-त्यों वह उन लोगों का ध्यान उन्हीं के दुर्गुणों की तरफ खींचती जाती थी। यही नहीं, कभी-कभी वह मीठी-चुटकियाँ भी लेती। सविता, ज्यों-ज्यों काम करती जाती थी, त्यों-त्यों उसे जान पड़ता था, कि यह समुद्र उलचने का-सा भगीरथ-कार्य है। कभी-कभी वह अकुला उठती और 'कोई दूसरा रास्ता निकलना ही चाहिये' यह बात उसके मन में पैदा हो जाती। किन्तु, कोई स्पष्ट-विचार या पद्धति नहीं सूझ पड़ती थी, अतः वह फिर उसी काम में लग जाती।

झाड़ूमण्डली, ज्योंही मुहल्ले के बाहर निकली, कि त्योंही सविता कोठरी में आकर बिछौने में पड़ रही। अब, फिर उसके मस्तिष्क में विचार उत्पन्न होने लगे। सबेरे तक, उसे कोई रास्ता न दीख पड़ा। लेकिन, उसने यह सोच लिया, कि जमादार को अवश्य बचाना चाहिये।

अकबर के सम्बन्ध में भी विचार आये। वह, उसे परदुःख-भंजन जान पड़ा। क्षणभर के लिये विचार आया, कि बिना किसी स्वार्थ के वह इतनी जबरदस्त-जोखिम क्यों उठा रहा है? उसे जान पड़ा, कि इस स्वार्थपूर्ण-संसार में, स्वार्थहीन लोग भी मौजूद हैं।

अकबर और मोती, ये दोनों उसे जीवनदान देनेवाले ही नहीं, बल्कि और भी बहुत-सी चीजों के दाता प्रतीत हुए। उसके मन में, आभार का भाव उत्पन्न होने लगा। वे दोनों मदद माँगने आये थे, यह याद आते ही सविता को विचार आया, कि—"कैसी विचित्र-स्थिति है! मुझे बचाने के लिये ही यह मदद की माँग थी, न?...... मुझ पर किये हुए उपकार के सम्बन्ध में तो वे लोग एक शब्द भी न बोले।......उनके मुँह पर उपकार का भाव भी न आया। उनकी वाणी में तो उलटी नम्रता तथा याचना......सेवा का तो ख़याल भी नहीं......मोती तो ठीक है, क्योंकि जमादार उसका पति है, लेकिन अकबर?' सविता के हृदय में, अक़बर के प्रति सम्मान का भाव पैदा हुआ। 'चाहे जो हो, अकबर, और जमादार, दोनों बचने ही चाहिएँ' सविता ने, अपने मन में यह निश्चय कर लिया।

'किन्तु, यदि वे न बच सकें, तो?' मन में एक प्रश्न पैदा हुआ। 'तो फिर मुझे भी इस मुसीबत में हिस्सा बँटाना चाहिये' उत्तर मिला। 'लेकिन, किस तरह?......मैं क्या कर सकती हूँ?' उसे कोई रास्ता न सूझ पड़ा। फिर मन में विचार आया, कि—'जमादार और अक़बर को बचाने के लिये, मुझे जो भी बलिदान करना पड़े, सो करना चाहिये। उनके बलिदान के सहारे मैं जीवित न रह सकूँगी।'

इस निश्चय के साथ उठकर सविता बाहर आई। उजाला हो चुका था। उसने, नीचे खेलते हुए एक लड़के को अपने पास बुलाया और मधुसूदन को बुला लाने को कहा। लड़का गया और वह कोठरी में लौटकर सब ठीक करने लगी।

•

१६

फिर प्रेमाश्रम में.

बैठे हुए श्रीकान्त के मुँह पर थकावट जान पड़ती थी। अतः रामदेव ने हँसते-हँसते उसे बिछौने में लिटा दिया और कहा—"अब, कथा सुननी है, न?" श्रीकान्त ने हँसकर हाँ की।

"अब तो मुझे नया-अवतार प्राप्त होगया है, इसलिये मैं कुछ शान्त होकर अपनी कथा कहूँगा" रामदेव बोला और मानो कोई बात याद कर रहा हो, इस तरह मौन होगया।

"कथा, कहाँ से अधूरी रह गई थी, यह मुझे याद है"।

"मुझे भी याद है। लो, सुनो।" रामदेव सीधा होकर बैठ गया और कहना प्रारम्भ किया—

उस दिन, मास्टरों के प्रताप से मैं जीवित बच गया। किन्तु, मुझे हेडमास्टर तथा क्लासटीचर की तरफ से यह बात फिर बतलाई गई, कि-'यहाँ रहना महँगा पड़ेगा। नियमानुसार, हम तो तुझे मना नहीं कर सकते, लेकिन शहर के लड़के तुझे पीस डालेंगे।' यदि, यह बात मुझे न बतलाई गई होती, तो भी मैं समझ तो गया ही था। मैं, उसी समय अपनी किताबे लेकर स्कूल से चल दिया। पाठशाला की गैलरी में खड़े हुए, लगभग चारसौ लड़के और पन्द्रह-बीस मास्टर मेरी तरफ

देख रहे थे। मैंने, दो-तीन बार पीछे घूमकर देखा। मेरी आँखों में आँसु थे और मार के कारण सारा शरीर दर्द कर रहा था। उस दिन, मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो सारी दुनिया में किसी को भी मेरी जरूरत न रह गई हो! शहर का सारा बाजार, मैंने रोते-रोते पार किया। हजारो आदमी मेरे पास होकर गुजरे। उनमें, कुछ लोग शायद मेरी जाति के भी हों। लेकिन, किसीने मेरी तरफ देखा तक नहीं। रास्ते में, मैंने भिखारियों को देखा, लूले-लँगड़े आदमियों को देखा, फटे-चिन्दे लपेटे हुए लोगों तथा साधु-फकीरों को भी देखा। लेकिन, उस दिन मुझे जान पड़ा, कि ये सभी लोग मेरी अपेक्षा अधिक सुखी हैं। मै, इस सम्बन्ध में कुछ अधिक तो न सोच पाया, लेकिन इन सब की तरफ देखने पर, मुझे अपने बराबर दुःख किसी के चेहरे पर न दिखाई दिया।

रास्ते चलते हुए, किसी जाति की एक बगीची के पास होकर मुझे गुजरना था। वहाँ, दूर से ही आवाज सुन पड़ी—"ऐ लड़के! कौन है? उधर दूर ही रहना!" मै, भय के मारे वहीं रुक गया। बगीची में होनेवाले कोलाहल और बाहर बैठी हुई पंक्ति पर से, मै समझ गया, कि वहाँ ब्राह्मणों की जाति का भोजन है। मै वापस लौटा। समझ-बूझकर वापस लौटा। मै जानता था, कि उस आवाज के बाद, मैं यदि दो क़दम आगे बढ़ा होता, तो मेरी एक भी हड्डी साबित न रह जाती।

सन्ध्या होने आई थी। मै, दूसरे रास्ते से, जल्दी-जल्दी अपने मामा के घर की तरफ जा रहा था। रास्ते में, मैने एक दृश्य देखा। एक स्त्री थी। उसे देखते ही मै समझ गया, कि वह भी मुझ जैसी अभागी है। वह, मेहतर थी। हाथ लम्बे कर-करके गालियाँ बक रही थी और उत्तेजित हो रही थी। उसके आसपास, लोगों की भीड़ जमा थी। दर्शकों का अधिकांश हस रहा था। मै, भीड़ की बातों पर से और उस स्त्री के चिल्लाने से यह बात समझ पाया, कि इस

स्त्री से, नज़दीक के ही एक पानवाले ने दिल्लगी की है। मैं, दो-तीन मिनिट तक, लोगों के उस झुण्ड तथा स्त्री को देखता हुआ वहीं खड़ा रहा। और लोगों के साथ ही मैं भी खड़ा था और क्षणभर के लिये यह बात भूल गया था, कि मैं 'हलकी-जाति का मनुष्य हूँ'। किन्तु, उसी क्षण मुझे एक धौल का लाभ मिल गया। मेरी पाठ-शाला का एक लड़का वहीं खड़ा था। उसने, मुझे पहचाना और पास ही खड़े हुए एक युवक ने मेरे सिर में एक धौल मारकर मेरी टोपी उड़ा दी। मैं, अपनी टोपी उठाता हुआ वहाँ से भाग निकला।

घर आकर, मैं कोठरी में बैठा। मेरे मामा के आने में, अभी काफी देर थी। मेरी छाती में श्वास न समाता था और मन से घबराहट तथा भय न जाता था। कोठरी में आकर बैठने के बाद भी, मुझे यह भय लगा हुआ था, कि अभी कोई आकर मुझे पीट डालेगा। इस तरह का भय अनुभव करते हुए, मैंने दो घण्टे व्यतीत किये। श्रीकान्तभाई! मेरा यह दुःख, आप या और कोई नहीं समझ सकते। इतनी लम्बी-चौड़ी दुनिया मे, मनुष्य को कहीं तो शान्ति मिलनी ही चाहिये। बेचारे कुत्ते भी किसी कोने में शान्तिपूर्वक बैठने पाते हैं! उस दिन तो मैंने अपनी स्थिति, पागल-कुत्ते की-सी अनुभव की। मै, उस वक्त बच्चा था और मुझे कुछ भी विवेक न था। अन्यथा, मुझे तिरस्कृत करनेवालों को बतला देता, कि मै काट भी सकता हूँ और मरते-मरते किसी को मार भी सकता हूँ!

रामदेव ने, फिर अपना वह भयंकर-रूप धारण किया। किन्तु, क्षणभर में शान्त होकर, उसने फिर अपनी बात शुरू की।

इस तरह, मेरे हृदय में, स्वतः मुझे भी न मालूम हो, ऐसे ढंग से, एक के बाद एक जहर की बूँद टपकती जा रही थी। रात को, जब मेरे मामा आये, तब तक मैंने रोकर थोड़ी-सी शान्ति प्राप्त कर ली थी। किन्तु, मेरे आँसुओं से धुले हुए मुँह को देखकर,

मेरे मामा मेरी स्थिति समझ गये और उन्होंने मुझसे सब बातें पूछीं। वे बेचारे, अत्यन्त दुःखी हुए। उन्हों, चिन्तातुर होकर मुझसे पूछा—

'तो अब क्या करना है?'

'मै, प्रेमाश्रम के स्कूल में पढ़ने जाऊँ, तो? रहूँगा यहीं!'

'ऐसा?' मुझे, उनकी वाणी में सहमति का भाव जान पड़ा।

'हाँ, मै कोई बेधरम तो हो नहीं जाऊँगा'।

'तू बेधरम होजाय या न हो, इसका मुझे तो कुछ भी नहीं है, लेकिन काना भगत मुझसे पूछेंगे, तो उन्हें क्या जवाब दूँगा?'

'लेकिन, यदि भगत से तुम बात न करो, तो?'

'हॉ' कहकर वे विचार में पड़ गये और थोड़ी देर बाद बोले— 'लेकिन, मालूम हुए बिना न रहेगा'।

'मालूम होगा, तो हो जाने दो। मै कहूँगा, कि मैं जबरदस्ती गया था।'

मामा, मेरी बात से सहमत होगये। मेरा हृदय हलका पड़ा। वह रात, मैंने खूब आनन्द से व्यतीत की। दूसरे दिन, मैं ऐसी पाठशाला में जानेवाला था, जहाँ मुझे कोई अलग नहीं बैठाता था, जहाँ कोई मुझे मार नहीं सकता था, धमका नहीं सकता था और न गाली ही दे सकता था। इन्हीं विचारों में पड़े-पड़े मुझे नींद आगई और जब सबेरे जागा, तब खूब प्रसन्न था।

प्रेमाश्रम की पाठशाला मैंने देखी थी, अतः मैंने अपने मामा से कहा, कि आपके वहाँ आने की कोई आवश्यकता नहीं है, मैं खुद ही भर्ती हो जाऊँगा। उन्हें तो यही चाहिये था। समय होने पर, मैं तैयार होकर निकला। उस दिन, मेरे पैर जल्दी-जल्दी उठते थे। पिछली शाम को, भय की जो थरथराहट तथा घबराहट मेरे दिल में

भरी थी, वह आज बिलकुल न थी। मै प्रेमाश्रम की पाठशाला के नज़दीक पहुँचा। पाठशाला के समीप थोड़ी देर खड़े रहकर, मैंने अपने कपड़े आदि ठीक किये और कुछ-कुछ सकुचाता हुआ भीतर दाखिल हुआ।

एक शिक्षक—इन विलियम साहब ने, मुझे फौरन पहचान लिया। 'क्यों, वापस आगया, क्या?' कहकर इन्होंने मुझे अपने नज़दीक ले लिया। मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए, उन्होंने मुझसे पूछा, कि मैं इतने दिन कहाँ था। उस स्पर्श तथा उस प्रश्न की मधुरता, मेरे जीवन में एक अद्वितीय वस्तु थी। मैंने, उनसे अथ से इति तक सारी कथा कह सुनाई। कहते-कहते, दो-तीन बार मै रो पड़ा।

'तू, वहाँ गया ही क्यों? जो मारे या जुल्म करे, उसके पास जाना ही क्यों? तेरी माँ और भगत तो बेसमझ हैं, इसलिये दुःख भोगते हैं। लेकिन, तुझे दु ख क्यों भोगना चाहिये? तू, यहाँ आगया, यह अच्छा ही हुआ। भगवान् ईसा के राज्य में, कोई ऊँच-नीच नहीं है। यहाँ, एक ही ईश्वर है और उसके लिये सभी बालक समान हैं!'

'लेकिन, मैं बेधरम नहीं होऊँगा' मैने भर्राती हुई वाणी में कहा।

वे, हँस पड़े। उन्होंने कहा—'यह किसने सिखलाया है? बेधरम होना क्या है? जहाँ सुख मिले, शान्ति मिले, इस जीवन में तथा दूसरे जीवन में अपना कल्याण हो, उसी धर्म में रहना चाहिये, न!' मै, कुछ न बोला। मुझे, भली-भाँति याद है, कि मै कुछ समझा भी न था। किन्तु, इस जीवन में मेरा कल्याण हो रहा है, यह बात तो मैं उस समय भी अनुभव कर रहा था।

मुझे, पाठशाला में दाखिल कर लिया गया। विलियम साहब ने, मुझे बोर्डिंग में रहने के लिये भी बहुत कहा। लेकिन, मेरी माँ नाराज़ होगी, यह कहकर, मैने उनकी बात अच्छी लगते हुए भी न मानी। उन्होंने भी, मुझे इच्छानुसार कार्य करने दिया। हाँ, मेरे

पुराने और जोड़ लगे हुए कपड़े देखकर, उन्होंने मुझे दो जोड़ नये-कपड़े जरूर ही दिलवा दिये। पहले ही दिन, दो जोड़ कपड़े लेकर, मैं हँसता-हँसता अपने घर आया।

"इन दोनों दिनों में कितना अन्तर था ? श्रीकान्तभाई ! अब आप मुझसे पूछोगे, कि मैं क्रिश्चियन क्यों हुआ ? मैं, आपसे ही पूछता हूँ, कि क्रिश्चियन होकर मैंने क्या बुरा किया ?" उत्तर का रास्ता देख रहा हो, इस तरह रामदेव थोड़ी देर रुका। श्रीकान्त कुछ न बोला, अतः उसने अपनी कहानी फिर शुरू की।

रात को, मेरे मामा आये। तब, मैंने उनसे अपनी सारे दिन की छोटी-से-छोटी बातें कह सुनाईं। उन्होंने, मुझे प्रेमपूर्वक अपनी गोदी में लिया और उस दिन मुझे उनका सहवास भी शान्तिदायक प्रतीत हुआ।

इस तरह, मैं फिर सच्ची-जगह जा पहुँचा और वहीं मेरे भविष्य का निर्माण होने लगा। मैं तो कहता हूँ, कि हिन्दू जाति की ठोकरें खा-खाकर मर जाने से, मुझे इस आश्रम ने बचाया और अपना करके पाला, बड़ा किया और मनुष्य बनाया। इस आश्रम ने, मुझ जैसे सैकड़ो का उद्धार किया है। मुझ पर, आश्रम के कितने उपकार हैं, इसका कोई पार ही नहीं मिल सकता। इस आश्रम के लिये, यदि जान देनी पड़े, तो भी हमलोग पैर पीछे नहीं धर सकते। कारण, कि यह आश्रम था, इसी लिये हमलोग जिये थे और आज भी जी रहे हैं। उस दिन से लगाकर, आजतक, मैं इस आश्रम के वातावरण में ही रहा हूँ। और मैं आपसे बतलाऊँ, कि जब-जब मुझे शहर में, प्रवास में या अपने घर जाने का काम पड़ा है, तबतब मेरे हृदय में वही 'हलकी-जाति' का शल्य चुभा है। मैं, ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, त्यों-त्यों वह शल्य मेरे लिये घातक सिद्ध हुआ है। आज सबेरे, मैंने उस शल्य को सदैव के लिये अपने हृदय से खींचकर फेंक दिया। भले ही मेरी माँ इस से खिन्न होकर मर जाय

या काना भगत रोगशय्या पकड़ लें! मैंने, जो कुछ किया है, वही मेरी सारी जाति को करना चाहिये–मेरी माँ और काना भगत को भी यही मार्ग ग्रहण करना चाहिये। यही नहीं, आपको और आपकी सारी हिन्दू जाति को भी यही रास्ता अख़्तियार करना चाहिये! कारण, कि भगवान् ईसा के ही राज्य में प्रेम एवं शान्ति है। अन्तिम–कल्याण की प्राप्ति, यहीं होती है। हिन्दू धर्म तो वहमों की एक बड़ी–भारी गठरी है। उसमें, अज्ञान, दम्भ और ज़ुल्म के सिवा और कुछ है ही नहीं!......'

"आप तो अपनी कथा छोड़कर दूसरी ही बातें कहने लगे" श्रीकान्त ने धीरे–से बीच में कहा।

"हाँ, लेकिन ऐसा किये बिना, मुझसे तो नहीं रहा जाता। यह कथा भी मैं तुमसे क्यों कह रहा हूँ? वहाँ से आने के बाद, मैंने इस पर भली–भाँति विचार करके देखा। अपने शिक्षा–गुरु से भी पूछा। उन्होंने कहा और वह बात मुझे सत्य भी जान पड़ी, कि मुझे अपनी सारी कथा आपसे कह देनी चाहिये। मैंने, कैसे–कैसे दुःख सहन किये हैं और उनमें से मुझे किसने बचाया, इसका वर्णन तो करना ही चाहिये, न! किन्तु, इसके साथ ही, जिस धर्म ने मुझे सुख तथा शान्ति दी, उसका रहस्य भी तो बतलाना चाहिये!"

"मुझे तो, आपकी कथा में ही आनन्द आता है। आप, और जो कुछ कहते हैं, उसमें से बहुत–सी बातें तो मुझे अच्छी भी नहीं जान पड़तीं।"

"अच्छी क्यों नहीं लगतीं?" रामदेव कुछ सहमकर बोला।

"कभी–कभी मुझे ऐसा जान पड़ता है, कि आप हर्ष में भरकर अतिशयोक्ति कर डालते हैं!"

"अतिशयोक्ति !" रामदेव जरा तनकर बोला "यदि, आपको ऐसा जान पड़ता हो, तो आपके लिये मेरी कथा बेकार है ! मेरी कथा में तो बहुत ही अल्पोक्ति है ? यदि, आपको इसमें अतिशयोक्ति जान पड़ती होगी, तो आप मुझे सच्चे-रूप में समझ ही नहीं सकते ! श्रीकान्तभाई ! आप फूलों की सेज में सोते हैं, इसी लिये आपको इसमें अतिशयोक्ति जान पड़ती है । एक वर्ष, एक महीना या एक सप्ताह के लिये दलित बनो । फिर आपको ख़ुद ही मालूम हो जायगा, कि इसमें कितनी अतिशयोक्ति है ।"

"लेकिन, मैं इसी मार्ग में तो जा रहा हूँ, न !"

"हाँ, यह भी मैंने अपने शिक्षागुरु से कहा था" ।

"फिर ?" श्रीकान्त ने जिज्ञासा से पूछा ।

"वे, कुछ बोले नहीं, किन्तु उनके चेहरे पर चिन्ता छा गई, यह बात मैं साफ़-साफ़ देख सका" ।

"ऐसा !" श्रीकान्त आश्चर्यपूर्वक बोला और रामदेव की तरफ देखने लगा । रामदेव, उसके सामने ही ताक रहा था । थोड़ी देर, वहाँ शान्ति छाई रही ।

१७

रामजी की माया.

"आप, उनसे मिलोगे?" रामदेव ने उसी बात को बढ़ाया।

श्रीकान्त चौंका। उसने फौरन ही कहा—"नहीं-नहीं, मैं यहाँ किसीसे मिलने नहीं आया हूँ। मुझे तो, केवल आपकी कथा ही सुननी है।"

"आप, डरते जान पड़ते हैं!"

"नहीं, मुझे जल्दी वापस जाना है, इसी लिये नाहीं कर रहा हूँ। और हाँ, एक और भी कारण है। मुझे, एक भी धर्म का ज्ञान नहीं है। आपके सुख-दुःख का भी मुझे पूरा अनुभव नहीं है।"

"लेकिन, मिलने और आश्रम देखने में क्या हर्ज है?"

"फिर कभी आऊँगा। इस समय मुझसे आग्रह न करो।" रामदेव ने, अधिक अनुरोध न किया।

"अब, अपनी कथा आगे बढ़ाइये" श्रीकान्त ने गम्भीर-मुँह से कहा।

"हाँ" कहकर रामदेव ने फिर बात शुरू की।

प्रेमाश्रम में, मेरी पढ़ाई भली-भाँति चलने लगी। मैं सदैव विलियम साहब के मुँह से क्रिश्चियन मज़हब की महत्ता सुनता और प्रतिदिन हृदय की इस शंका से उद्विग्न रहता, कि कहीं मेरी माँ का

भय सत्य होकर तो न रहे! इसी तरह, दिन बीतने लगे। चार ही महीने में, मै सातवाँ दर्जा पास करके आठवें में पहुँचा। पाठशाला में, छुट्टियाँ हुई। हमारी पाठशाला तथा छात्रालय के विद्यार्थियों ने, प्रवास में जाने का कार्यक्रम बनाया। विलियम साहब ने, मुझे भी चलने को कहा। मेरी तो इच्छा थी, लेकिन मेरे मामा ने स्वीकृति न दी। उन्होंने, मेरी माँ या काना भगत से आज्ञा मँगाने की बात कही। वहाँ से आज्ञा मँगाने की तो मेरी हिम्मत ही न थी। अभीतक, उन्हे इस बात का भी पता न था, कि मै प्रेमाश्रम में पढ़ रहा हूँ, तो फिर आज्ञा देने की तो बात ही क्या थी? इसी लिये, मैंने प्रवास में जाने से इनकार कर दिया। विलियम साहब को, इससे कुछ दुःख हुआ। उन्होंने कहा—

'तू, ख़ुद ही अपने विकास को रोकता है। प्रवास में जाने पर, तुझे कितना ज्ञान मिलेगा, इसकी भी तुझे कुछ ख़बर है? तू, दुनिया देख सकेगा। प्राकृतिक-दृश्य देखने को मिलेंगे। हमलोग, एक और आश्रम देखने भी जायँगे।'

मैने, उनकी बात सुन ली। बडी कठिनाई से मैंने अपने मन को रोका और रोने जैसी सूरत बनाकर, प्रवास में जासकने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

लगभग सौ विद्यार्थी भ्रमण करने गये। मैं, अपने गाँव चला गया। गाँव के किनारे पहुँचते ही, दूर बने हुए अपनी जाति के घरों को देखकर, मुझे अपनी 'हलकी-जाति' याद आगई। किन्तु, इसी समय अपनी स्नेहमयी-माता और काना भगत का चेहरा मेरी आँखों के सामने आगया। हर्ष-शोक की मिश्रित-भावनाएँ अनुभव करता हुआ, मैं अपने मुहल्ले में पहुँचा। मुझे देखकर, मेरी माँ तो प्रसन्नता के मारे पागल-सी हो पड़ी। मुहल्ले के छोटे-बड़े लड़कों का झुण्ड मेरे चारों तरफ इकट्ठा होगया और थोड़ी ही देर में, काना भगत भी लाठी के

टेके चलते हुए वहीं आगये। सभी के चेहरों पर प्रेमनगर का वर्णन और मेरी पढ़ाई की बातें सुनने की आनन्दपूर्ण उत्सुकता थी। अकेले मेरे ही हृदय में शोक तथा दुःख की लहरें उठ रही थीं। किन्तु, मेरे मन की यह स्थिति कोई न जानता था। मैंने, किसी को मालूम भी न होने दी। सब के साथ ही, मैं भी अपनी आकृति हँसती हुई बनाये रहा और अनेक प्रकार की बातें कहकर सबको खुश किया।

धीरे-धीरे, दूसरे लोग अपने-अपने घर चले गये। काना भगत, मेरी माँ और मैं, तीनों अकेले पड़े, तब आनन्द का स्वरूप बदल गया। मेरी माँ, आशापूर्ण-दृष्टि से मेरी तरफ ताक रही थी। मानों, उससे रहा न जाता हो, इस तरह वह उठी और जिस खाट पर मैं बैठा था, वहाँ आकर मेरे मुँह पर हाथ फेरने लगी। उस समय, मेरी मनःस्थिति क्या थी, यह मैं कैसे वर्णन करूँ? 'यदि, इस माता को मेरे प्रेमाश्रम में पढ़ने और विलियम साहब के उपदेशों की ख़बर पड़ जाय, तो?' यह प्रश्न, क्षणभर के भीतर ही मेरे मन में पैदा हुआ। मैंने, इस प्रश्न को दबाया और चेहरे पर हास्य लाकर जिस तरह उसने मेरे समाचार पूछे थे, उसी तरह मैंने उसके, घर के तथा मुहल्ले के समाचार पूछे।

'क्यों भाई! तेरी पढ़ाई तो अच्छी चलती है, न?' काना भगत ने मुझसे पूछा।

'हाँ, मुझे तो ख़ूब आनन्द आता है'।

'और कितने वर्षों तक पढ़ना है?'

'मेरी माँ और आप पढ़ने दो, तब तक, क्यों माँ?' मैंने अपनी माँ की तरफ देखकर कहा।

'तुझे पढ़ना हो, तबतक पढ़, न! मुझे इससे क्या है? लेकिन, अब मुझे और काना भगत को अपना प्रेमनगर तो बतला!'

मैं, कुछ चौंक पड़ा।

'मैने तो देखा है। मैं तो पाँच-सात बार वहाँ जा आया हूँ। उसमें क्या देखना है ? हमलोग, क्या वहाँ की बातें नहीं सुनते ? वैसा ही है।' काना भगत ने कहा।

इसी प्रकार की बातें करते-करते, सारा दिन बीत गया। इसी तरह, एक के बाद एक दिन बीतने लगे। मैंने, चतुराई से, एक बार भी प्रेमाश्रम की बात सामने न आने दी। सब को यही जान पड़ा, कि मुझे वहाँ सुख है और सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हैं।

मै, डेढ़ महीने वहाँ रहा। इन डेढ़ महीनों में, यदि एकाध प्रसंग भी न आवे, तो फिर मैं चमार कैसा ? एकाध बार तो हिन्दू धर्म का कुछ रहस्य देखने या अनुभव करने को मिलना ही चाहिये ! एक दिन की बात है, मेरी माँ कोई चीज लेने गाँव में एक बनिये की दूकान पर गई। यों तो जब मैं हरिपुर में होता, तब माँ के बाजार जाने पर मै भी उसके साथ ही जाता था। लेकिन, उस दिन न गया। मेरी माँ, बनिये की दूकान से कुछ दूरी पर खड़ी थी, कि इसी समय उस बनिये का बच्चा, कुछ लेने को दूकान पर आया और लेकर वापस लौटता हुआ मेरी माँ से छू गया। मेरी माँ ने कपड़े समेटे और पीछे हटने का प्रयत्न किया, किन्तु फिर भी लड़का तो छू ही गया। दूकान पर बैठे हुए बनिये औ रसामने चबूतरे पर बैठे हुए कुछ कुर्मीलोगों ने यह देखा। बनिया, वहीं बैठा-बैठा चिल्लाया—

'ऐ—राँड ! देखती नहीं है ?'

'मैं क्या करूँ ? इसमें, मेरा क्या दोष है ?'' मेरी माँ बेचारी ने डरते-डरते कहा।

'अब, तुम सब शहजोर हो रहे हो ! मुँह से चिल्लाते हुए क्या होता था ? देखती नहीं थी, कि लड़का आ रहा है ! लड़का जानता है, कि तू कौन जाति है ?'

'लेकिन, मे पीछे तो हटी थी'।

'अब, ज़्यादा होशियारी न बतला। लड़के को शहर में पढ़ने भेजा है, इसी लिये यह शहज़ोरी बढ़ी है! सचमुच ही, तुमलोगों की तो हड्डियाँ ही तोड़ डालनी चाहिएँ।'

'सेठ, ऐसा न कहो'।

'अब चुप रह, नहीं तो यह पसेरी फेंककर मारूँगा। एक तो लड़के को छू लिया, ऊपर से सामने जवाबदेही कर रही है!'

बात बढ़ी। चबूतरे पर बैठे हुए चार-पाँच कुर्मी नीचे आगये बनिया भी दरवाज़े में आकर खड़ा होगया।

'ठीक, अब मुझे गुड़ दे दो, तो मै आगे बढ़ूँ। आज, न-जाने किसका मुँह देखा होगा!' मेरी माँ, जाने के लिये जल्दी करने लगी।

'अब, गुड़ की बातें फिर, इस वक्त तो चुपचाप चल ही दे'।

'तो क्या पैसे लेकर गुड़ नहीं दोगे?' मुझ गरीब के पैसों से, तुम्हारा क्या भला होगा?'

'तू, अब चुपचाप चल ही दे' बनिये ने रोष में भरकर कहा 'नहीं तो मुझसे अभी कुछ उलटा-सीधा हो जायगा'।

'तो पैसे लौटा दो, मै चली जाऊँ'।

'ले पैसे' कहकर बनिया नीचे उतरा और मेरी माँ के एक थप्पड़ मार दिया। पास खड़े हुए लोगों को, इसकी कोई सम्भावना ही न थी। वे सब बीच में पड़े और मेरी माँ को बचा लिया। मेरी माँ, अपना-सा मुँह लेकर वापस लौटी। जब, वह लौटकर घर आई, तब मै अपनी किताब पढ़ रहा था! उसका मुँह देखते ही मै समझ गया, कि कुछ बखेड़ा हुआ है। मैने, उससे हर तरह पूछा, लेकिन उसने कुछ भी उत्तर न दिया। वह, थोड़ी देर घर बैठी और फिर काना भगत के

यहाँ गई ? मैं समझ गया और उसे मालूम न होने पावे, इस तरह उसके पीछे-पीछे चल दिया। मेरी माँ ने वहाँ पहुँचकर काना भगत से सब बातें कहीं। उसका प्रत्येक शब्द और उसके रोने की आवाज़ मैंने सुनी। साथ ही, काना भगत द्वारा दिया हुआ आश्वासन भी सुना। मेरे तो सारे शरीर में आग-सी लग गई। लेकिन, मैं क्या कर सकता था ? अपनी माँ के पास जाने को जी चाहा, लेकिन मैं न गया। घर जाकर, उसी खाट पर बैठ गया। मेरे जी में आया, कि उस बनिये का ख़ून पी लूँ। लेकिन, उस समय मैं बिलकुल-छोटा, निर्बल तथा असहाय था ! रात को, मैं ख़ूब रोया। माँ ने, जिस तरह अपने दुःख की बात मुझे न मालूम होने दी थी, उसी तरह अपने दुःख की बात मैंने उसे न मालूम पड़ने दी। मैंने देखा और अनुभव किया, कि हमलोग सचमुच ही इस पृथ्वी पर भाररूप जीवन व्यतीत करते हैं। इस संसार में, हमारी क्या ज़रूरत थी ? यह प्रश्न मेरे दिमाग़ में उठा और बिना उत्तर पाये ही शान्त होगया। मेरे हृदय का दुःख, अधिकाधिक जोर से भीतर-ही-भीतर चक्कर काटने लगा।

सबेरे, मेरी माँ तो मानों सब भूल गई हो, इस तरह घास काटने चली गई। मैं, विचार-सागर में गोते खाने लगा। 'इसका अन्त कैसे हो ?' यह प्रश्न उठा, किन्तु उत्तर न मिला। कुछ न सूझ पड़ने पर, मैं काना भगत के पास गया। मैंने, उनसे पूछा—

'मेरी माँ को, कल मार पड़ी थी, न ?'

'तुझसे किसने कहा ?' भगत ने चौंककर मुझसे पूछा।

'मुझे मालूम है' मैंने गम्भीरता से जवाब दिया। 'तुम, उससे कहते थे न, कि जो हुआ, सो हुआ, अब रामजी का नाम लो, जिसमें दूसरे जन्म में यह जाति न मिले ?'

'क्या तू सुनता था ?'

'हाँ, उस वक्त मैं तुम्हारे बरामदे में खड़ा था। लेकिन, काना चापू! इस तरह तो कैसे जीवित रह सकते हैं?'

'तो और क्या हो? किये हुए कर्म तो भोगने ही पड़ेंगे, न?'

'लेकिन, इसमें कर्म की कौन-सी बात है? यदि, किसी चमार ने ही मेरी माँ को मारा होता, तो? तब क्या तुम कुछ न करते?'

'वह तो अपनी जाति का कहलाता है, न! उसका तो हम कान पकड़कर खीच सकते हैं। लेकिन, बनिये को क्या कह सकते हैं?'

'तब तो हमलोग उनके जानवर जैसे ही हुए, न?

'जो भी समझ। हम, अगर उसका मुकाबिला करने जायँ, तो इस झोंपड़े में भी न रहने पावें। बनिये तो गॉव के मालिक-मुख्त्यार कहे जाते हैं!'

'तो दूसरे गॉव में चलकर रहना चाहिये'।

'सभी जगह यही दशा है। हमलोगों ने, पूर्वजन्म में, कोई जबरदस्त-पाप किये होंगे, तभी यह अवतार मिला है। नहीं तो, हमलोगों को चमार के यहाँ जन्म क्यों लेना पड़ता? रामजी की माया को हमलोग नही समझ सकते—रामभाई!'

मैने, अधिक चर्चा न की। किन्तु, सचमुच ही रामजी की वह माया मेरी समझ में न आई। मैं उस दिन भी न समझ पाया और न कभी दूसरे ही दिन मेरी समझ में वह आ सकी। हाँ, यह बात मेरी समझ में अवश्य ही आगई, कि यह एक ऐसी माया है, जो हम पर जुल्मों की झड़ी लगा सकती है और उन जुल्मो को धर्म-पूर्ण तथा न्याययुक्त ठहरा सकती है। इतना ही नहीं, उन जुल्मों के शिकार बने हुए लोग भी, उस माया के वश होकर जुल्म करनेवालों की ही तरह उसे धर्ममय तथा न्यायपूर्ण मानते हैं!

१८

प्रेमधर्म का आकर्षण.

काना भगत से मेरी जो बातचीत हुई थी, वह माँ को जरूर मालूम हुई होगी। किन्तु, हम दोनों के बीच, इस सम्बन्ध में कोई बात नहीं हुई। छुट्टी के दिन ख़तम होते ही, मै भारी-हृदय लिये हुए प्रेमनगर की तरफ चल दिया। जाने के दिन, मै बार-बार अपनी माँ के मुँह की तरफ देखता था। 'मेरे जाने के बाद इसकी क्या गति होगी ?' यह चिन्ता मेरे मन में समाई थी। मैं, छोटा था, असहाय था, किन्तु फिर भी, मै अपनी माता का पुत्र हूँ, यह भावना मेरे हृदय में उत्पन्न हो चुकी थी। मेरी माँ का कोई अपमान कर दे, यह मेरे लिये लज्जा की बात है, इतना तो मै समझने ही लगा था।

मैं, प्रेमनगर गया और अपने मामा के ही यहाँ ठहरा। मेरी माँ या काना भगत को, मेरे प्रेमाश्रम में पढ़ने की बात नहीं मालूम है. यह जानकर वे निश्चिन्त हुए। दूसरे ही दिन से, मैंने पाठशाला जाना प्रारम्भ किया। मुझे देखते ही, विलियम साहब ने आश्चर्यपूर्वक कहा—'तू आगया ? मैं समझता था, कि तू न आवेगा !'

'मै तो आनेवाला ही था, मुझे ख़ूब पढ़ना है,' मैंने कहा।

'यह तो मैं जानता हूँ' वे हँसकर बोले 'लेकिन तेरी माँ आदि अज्ञानी हैं, न ! इसी लिये मुझे भय था, कि वे कहीं तुझे रोक न लें। तुझ जैसे बहुत-से लड़कों की यही दशा होती है।'

'लोग, आपसे इतना ज़्यादा डरते क्यों हैं ?' मन में उठी हुई शंका मैंने सरलभाव से प्रकट कर दी।

'उन लोगों को, ज्ञान का प्रकाश नहीं मिला है। हिन्दू धर्म के साधु, बाबा तथा ब्राह्मणों ने, लोगों को भरमा रक्खा है। 'यह धर्म—भगवान् ईसा का धर्म—तो विदेशी है, म्लेच्छ लोगों का धर्म है' यह कहकर लोगों को हमसे दूर रखते हैं। अच्छा, रामदेव ! आज पाठशाला से निकलने के बाद, तू ज़रा मुझसे तो मिलना।'

मैंने, उनका निमन्त्रण स्वीकार किया और पाठशाला की छुट्टी के बाद उनके बँगले पर पहुँचा। जब मैं पहुँचा, तब वहाँ पादरीबाबा बैठे थे। मैंने, उन्हें प्रार्थना आदि अवसरों पर देखा था। इसके अतिरिक्त, उनके पास बैठने या बोलने का कभी मौक़ा ही न आया। वे, अपना अधिकतर समय प्रार्थना में, प्रेमाश्रम की व्यवस्था में या अस्पताल में व्यतीत करते थे। मैं, सुना करता था, कि उनके वचनों तथा प्रेम के प्रभाव से, रोगी अच्छे हो जाते हैं। मैंने, उन्हें देखते ही प्रणाम किया। वह सौम्य-मुखमुद्रा, भव्य-वेशभूषा, प्रेममयी-आँखे और मधुर-मुस्कान मुझे आकर्षक जान पड़ी।

'क्यों, रामदेव !' उन्होंने मुझे प्रेम से पुकारा। अपनी माँ और काना भगत के अतिरिक्त, इस प्रकार का प्रेमपूर्ण-स्वर मैंने और कहीं न सुना था।

'अब, प्रभु के प्रेमराज्य में आओगे, न ?' उन्होंने मुझसे पूछा। मैंने, बिना कुछ उत्तर दिये, अपनी आँखें नीची कर लीं।

'इसकी माँ बहुत-दुःखी होगी, इसी लिये, यह यहाँ आने और धर्मदीक्षा लेने से डरता है' विलियम साहब ने कहा।

'इसकी माँ के लिये भी यहाँ स्वागत ही है। यह तो प्रेम तथा समानता का धर्म है। यहाँ, संसार के परित्यक्त, दुःखी और सन्तप्त,

सब के लिये स्थान है। इस धर्म में, एक ही सर्वशक्तिमान् परमात्मा है और मनुष्यमात्र उसके बालक हैं। यहाँ, कोई अस्पृश्य नहीं है, भंगी नहीं है, चमार नहीं है। ब्राह्मण और बनिया भी नहीं है। यहाँ, सबलोग बराबर हैं। इस छत्र की छाया में आनेवाले के लिये, फिर वह कोई हो, न तिरस्कार है और न द्वेष।'

मेरे कानों में, अमृत-सा पड़ रहा था। प्रत्येक शब्द, मुझे सत्य जान पड़ता था। कारण, कि मैं प्रतिदिन इन बातों को अनुभव करता था। मेरा कौन था ? यदि, मुझे यहाँ स्थान न मिला होता, तो मेरे रहने के लिये जगह ही कहाँ थी ?

'रामदेव !' विलियम साहब बोले 'इस सत्यधर्म का प्रचार करने के लिये ही, कितने बड़े-बड़े दुःख सहन करके पादरीबाबा तथा अन्य लोग यहाँ आये हैं ? इनका, इसमें क्या स्वार्थ है ? मैलेकुचैले तथा दुर्गन्धिपूर्ण-शरीरवाले तुमलोगो की जाति के बालकों को छाती से लगाने में, इन्हें क्या लाभ है ? कितना कष्ट सहन करने के बाद, ये हमलोगों की भाषा सीख पाये हैं ! कितनी मुसीबत से इन्होंने हमारे रिवाज जान पाये हैं !'

मैंने, अपना सिर उठाकर पादरीबाबा के गौरवर्ण-शरीर की तरफ देखा। उनकी करुणापूर्ण आँखें देखते ही, मेरे नेत्रों में आँसू भर आये।

'रो मत—बेटा !' उन्होंने कहा 'दुःखी-से-दुःखी मनुष्यों को यहाँ स्थान मिलता है। भगवान् ईसा ने, संसार का पाप मिटाने के लिये, कैसी भीषण-यातनाएँ सहन की हैं ! उनकी आज्ञा और उनके उपदेश में ही सारे संसार का श्रेय समाया हुआ है। तू, घबराना मत। यहाँ, कोई तेरा तिरस्कार नहीं कर सकता !'

यह तो मैं जानता था और प्रतिक्षण अनुभव भी करता था। किन्तु, मेरे मन में जो उलझन थी, वह अकथ्य थी। मैं स्वतः भी

उसे पूरी तरह नहीं समझ पाता था। ज्यों-ज्यों वे बोलते जाते थे, त्यों-ही-त्यों मेरी आँखों से आँसू टपकते जाते थे।

'विलियम, तुम इसे शान्ति देना और प्रेमधर्म समझाना' यह कहकर पादरीबाबा वहाँ से बिदा होगये। आँसूभरी आँखों से, मैंने उनकी पीठ की तरफ देखा।

'क्यों, रामदेव!' विलियम साहब मेरे पास आकर मुझे थपथपाने लगे। 'तू, घबरा मत। मैं भी तेरे ही जैसा था। सिर्फ तुझ जैसा ही नहीं, बल्कि तुझसे भी अधिक व्याकुल और दुःखी था। तेरे माँ तो है, मैं तो बिलकुल-अनाथ था। मुझे, अपनी जाति-बिरादरी की भी कोई खबर न थी। प्रेमनगर की गलियों में भीख माँगा करता और चाहे जहाँ पड़ा रहता था। प्रेमधर्म के किसी उपदेशक ने, एक दिन मुझे अपने पास बुलाकर एक पैसा दिया। दूसरे दिन भोजन दिया और एक सप्ताह में ही मुझे यह स्थान प्राप्त होगया। मैं, यहीं पलकर बड़ा हुआ हूँ। आज, मुझे यहाँ आये तीस वर्ष होगये। दस वर्ष का था, तब यहाँ आया था। सारी दुनिया में, मेरा कोई न था। मैं, भटक-भटककर योंही मर जाता।'

विलियम साहब की बातें सुनकर, मेरा आश्चर्य बढ़ने लगा। मेरे आँसू सूख गये और मैं आतुरतापूर्वक उनकी तरफ देखने लगा।

'मैं, उन्हीं के प्रताप से बच गया। आज, मेरे पास रहने को बँगला है। घर में स्त्री है और दो बच्चे हैं। मैं, सारे दिन धर्मप्रचार का ही कार्य करता रहता हूँ और तुझ जैसे दुःखी-मनुष्यों को सत्य-मार्ग बतलाता हूँ, रामदेव! इस आश्रम का नाम प्रेमाश्रम न था। इस शहर का नाम भी प्रेमनगर न था। लेकिन, मेरे आने के पाँच वर्ष बाद, पादरीबाबा के प्रयत्न से ये परिवर्तन हुए। लोग, इसे सोसायटी या साहबलोगों का स्कूल कहते थे। पादरीबाबा को, अनुभव से यह बात मालूम हुई, कि हमारे इस देश के गरीब लोगों को यदि दुःख

से छुड़ाना हो, तो उन्हीं की भाषा सीखनी चाहिये और वे समझ सकें, वैसे ही साहित्य की रचना करनी चाहिये। तुझे तो यह बात मालूम नहीं है, लेकिन हम सभी उपदेशक, केवल क्रिश्चियन धर्म का ही नहीं, बल्कि सभी धर्मों का ज्ञान रखते हैं। इसी लिये हम लोगों को समझा सकते हैं, कि इस धर्म के अतिरिक्त शेष सभी धर्मों में अज्ञान एवं पाखण्ड भरा है, केवल यही धर्म सत्य एवं स्थायी है। इस धर्म का, कभी नाश नहीं हो सकता। कारण, कि यह ईश्वरीय धर्म है। परमात्मा की तरफ से, उसका सन्देश लेकर आये हुए उसके पुत्र ईसा ने इस धर्म का उपदेश दिया है। वह, करुणा की मूर्त्ति था। उसने, हमलोगों के लिये दुःख के पहाड़ अपने सिर पर उठाये हैं। रामदेव! केवल इसी धर्म में तुझे सच्ची-शान्ति और अन्तिम-सुख की प्राप्ति हो सकती है।'

मुझे, मौन बैठा देखकर, वे फिर बोले। 'क्यों, तू किस चिन्ता में पड़ गया? तुझे यही फिकर है न, कि तेरी माँ दुःखी होगी?'

मैने, सिर हिलाकर हाँ की।

"तुझे, इसकी चिन्ता न करनी चाहिये" वे शान्त-वाणी में बोले "वह, अगर अज्ञान के अन्धकार में से न निकलना चाहे, तो क्या तुझे भी वहीं रहना चाहिये? तेरी आत्मा का कल्याण तो यहाँ हो सकता है। तूने, ईसाचरित्र तो सुना है, न? उन्होंने कैसे-कैसे चमत्कार कर के संसार को सुख पहुँचाया था! यह धर्म तो इस लोक में भी सुख देता है और परलोक में भी। इससे शान्ति प्राप्त होती है। तू देख, आज दुनिया में किसका राज्य है? दुनिया में, इस समय सब से अधिक सुखी कौन है? यह सब, क्या यों ही होगया! क्रिश्चियन प्रजा के पक्ष में स्वयं ईश्वर है, इसी लिये उसकी सर्वत्र विजय दीख पड़ती है।'

मैं, इस बातचीत में अधिक न समझ पाया, लेकिन इतना मुझे अवश्य ही जान पड़ा, कि निश्चय ही एक यही धर्म, ईश्वरीय-धर्म

हृदय में आता था। लेकिन, मानों मेरी खोपड़ी पक गई हो, इस तरह प्रत्येक विचार को मै थककर छोड़ देता था।

रात्रि तो अपने नियम के अनुसार गति कर ही रही थी। सारी रात, मैने करवटें बदल-बदलकर काटी। सबेरे, जब मैं जागा, तब भी मेरे चेहरे पर से गम्भीरता के भाव दूर न हो पाये थे! मेरे मामा ने, बड़ा आश्चर्य प्रकट किया। किन्तु, मैं उनसे कोई बात कह न पाया। वे, चिन्तातुर होकर मेरी तरफ देखते रहे। उनके काम पर जाने का वक्त हुआ, उस समय भी वे चिन्ता करते हुए बिदा हुए थे।

१९

आँसुओं की बाधा.

फिर तो मानों नित्यकर्म बन गया हो, इस तरह मै क्रिश्चियन धर्म की महिमा एवं हिन्दू धर्म के दोष प्रतिदिन सुनने लगा। मेरे मन में, यह विश्वास पैदा होगया, कि-'मै हिन्दू हूँ, इसी लिये इस दुःख के सागर में डूब रहा हूँ। यदि, मै आज ही क्रिश्चियन हो जाऊँ, तो फौरन ही मेरे समस्त-दुःखों का अन्त हो सकता है।' किन्तु, मेरी माँ पर इसका क्या असर पड़ सकता है, इस बात की मै पूर्णरूपेण कल्पना भी न कर सका। मुझे पढ़ने भेजते समय, 'कहीं मैं क्रिश्चियन न हो जाऊँ, इस विचारमात्र से ही वह किस तरह थरथरा उठी थी और काना भगत किस तरह चिन्तामग्न होगये थे, यह बात मुझे याद थी। इसी लिये, मेरा यह विश्वास था, कि मेरी माँ, इस विचार को कभी सहन ही नहीं कर सकती। कभी-कभी, यह ख़याल भी आता था, कि मेरी माँ बेचारी अधिक नही समझती है। मै, ये सब बातें बतलाऊँगा, तो वह जरुर समझ जायगी और सम्भव है, वह भी क्रिश्चियन बन जाय।

पढ़ाई का, एक वर्ष बीत गया। इस वर्ष में, मेरी बुद्धि तथा ज्ञान में काफी वृद्धि हो चुकी थी। अब, शरीर की अपेक्षा से भी मै बड़ा जान पड़ने लगा। इस बार भी भ्रमण में जाने का प्रोग्राम था, लेकिन मेरी माँ के चार-पॉच पत्र आ चुके थे। अन्तिम-दिनों में, उसे

किसी तरह यह बात मालूम होगई, कि मैं साहबलोगों की पाठशाला में पढ़ता हूँ। अतएव, पिछले दो पत्र इसी चिन्ता से भरे हुए थे और उनमें, मुझसे जल्द ही घर वापस लौट आने का आग्रह था।

मैं, घर गया। इस बार, मुझे देखकर मेरी माँ के चेहरे पर हर्ष न आया। काना भगत भी मुझे गम्भीर जान पड़े। मेरे जी में आया, कि अब तो मुझे सच्ची-बात कह देनी चाहिये। बात, किस तरह प्रारम्भ की जाय, यह मैं सोच ही रहा था, कि इसी समय मेरी माँ ने पूछा—

'तू, साहबलोगों के मदरसे में पढ़ता है?'

'हाँ' मैने जवाब दिया।

काना भगत या मेरी माँ, दोंनों में से कोई न बोला। किन्तु, यह मौन हृदयद्रावक था। मैं, अधिक देरतक उनके चेहरों की तरफ न देख सका। एक के बाद एक करुणापूर्ण-क्षण बीतने लगी।

'रामभाई!' गहराई से आवाज आ रही हो, इस तरह काना भगत बोले-'तब तो तूने हमें धोखा दिया'।

इन शब्दों में, ऐसी पीड़ा भरी थी, कि मैं सुनते ही काँप उठा।

'पढ़ाई से, क्या लोग झूठ बोलना और धोखा देना ही सीखते हैं?'

वैसा ही दूसरा वाक्य काना भगत के मुँह से निकल पड़ा।

'मेरी तक़दीर ही फूटी है, और कुछ नहीं।' मेरी माँ बोली।

मुझसे, यह सहन न हुआ। मै, रो पड़ा। मेरी माँ और काना भगत, मेरी तरफ देखने लगे। मैंने, आँसुओं को भेदकर देखा, कि मेरी माँ के चेहरे पर से रोष अदृश्य होता जा रहा था और उसकी आकृति से भी यही जान पड़ने लगा था, मानों वह अभी रो देना चाहती है।

'राम !' उसके मुँह से निकला और इसी समय उसके नेत्रों से आँसू की दो बूँदें टपक पड़ीं। 'हमलोगों ने, तुझे मना किया था, फिर भी तू वहाँ गया ! यदि, वहाँ जाना उचित होता, तो हमलोग तुझे मना क्यों करते ?'

'लेकिन, माँ !' मैंने आँसू पोंछकर बात करनी प्रारम्भ की। 'तू, फिजूल ही डरती है। वहाँ, डरने की कोई बात ही नहीं है ! तू, जरा मुझसे यह तो पूछती, कि आखिर मै वहाँ क्यों गया !'

'मुझे, कुछ भी नहीं सुनना है। मै तो यह जानती हूँ, कि उसके किनारे पर पैर रखने में भी पाप है। हमें, ऐसी पढ़ाई न चाहिये। तू, अब घर पर ही रह। अब, तेरे शहर में जाने की ही जरूरत नहीं है। और क्या ?'

'लेकिन, माँ.........'

'नहीं, तू कुछ न बोल'। उसने, मुझे बीच ही में रोक दिया। मै, हैरान होने लगा। 'अब क्या करना चाहिये ?' यह प्रश्न मेरे मस्तिष्क में उत्पन्न हुआ। पहले ही दिन मेरी सारी इमारत ढह पड़ेगी, ऐसी तो मैंने कभी कल्पना भी न की थी।

मुझे, डेढ़ के बदले दो महीने वहाँ होगये। मेरे मुहल्ले तथा ग्राम में, मेरे सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें होती थीं और उन बातों से मेरी माँ अधिकाधिक घबराती जा रही थी। इन दो महीनों में, हमलोग किसी दिन सुख से न बैठे। मैंने, कई बार शान्तिपूर्वक अपनी माँ से बातचीत करने का प्रयत्न किया, किन्तु, मैं सदैव असफल ही रहा, वह, मेरी बात सुनने से ही इनकार करती थी, तो फिर मै क्या करता ? छुट्टी के दिन पूरे होने के बाद, मुझे चिन्ता होने लगी। एक-एक दिन, मुझे वर्ष जैसा प्रतीत होता था। अब, मैं कभी-कभी चिढ़ने भी लग गया। लेकिन, मेरी माँ ने, मुझे किसी भी तरह आज्ञा न दी।

"मै, घबराया। एक बार तो मेरे जी में आया, कि भाग जाऊँ, लेकिन पीछे-से अपनी माँ की स्थिति का ख़याल आते ही, मैने वह विचार छोड़ दिया।

'तब क्या करना चाहिये ?' इस विचार ने मुझे घेर लिया। एक बार हिम्मत करके, मैने अपनी माँ से, काना भगत की मौजूदगी में कहा—

'मै तो जाऊँगा ही, तुमलोग हाँ करो, या नाहीं'।

'तो जा, हम क्या तुझे बाँधकर रख सकते हैं ?' माँ ने निःश्वास छोड़ते हुए कहा।

'यों नहीं, तुमलोग तो मेरी बात ही नहीं सुनते हो'।

'सुनकर क्या करें ? हमने, ऐसी-ऐसी बहुत-सी बातें सुनी हैं। उसमें, हमारे भगवान् को गालियाँ ही दी होंगी। और तो बात ही क्या हो सकती है !'

'नहीं, माँ ! ऐसी बात नहीं है। मै, वहाँ पढ़ने क्यों गया, यही तुझे अभीतक नहीं मालूम है।' यह कहकर, मैने कैसे-कैसे कष्ट उठाये थे, उन सब का वर्णन किया। मुझ पर मार पड़ने की बात सुनकर, वह बेचारी अत्यन्त-दुःखी होगई। 'अब, तू ही बतला, फिर मुझे क्या करना चाहिये ? वहाँ तो ऐसी स्थिति थी, कि लोग मुझे जीने ही न देते।' मैने कहा।

'रामभाई !' अबतक शान्त बैठे हुए काना भगत बोले-'मै तो कहता हूँ, कि हमारी जाति के लड़कों को पढ़ने की ही क्या जरूरत है ? यदि, तू वहाँ न गया होता, तो यह सब झगड़ा क्यों होता ?'

मुझे, काना भगत की यह बात जरा भी अच्छी न लगी। मैने फौरन ही कहा—'नहीं, मुझे पढ़ना तो है ही। हमलोग अज्ञान......' मैं, आगे बोलना चाहता था, किन्तु इसी समय मेरी माँ ने मुझे रोक दिया।

'तुझे पढ़ना हो, तो भले ही पढ़। लेकिन, साहबलोगों की पाठशाला में एक मिनिट के लिये भी तेरा जाना उचित नहीं है।'

'तो फिर मुझे क्या करना चाहिये?''

'और जो कुछ भी करना हो, सो कर। लेकिन, वहाँ पढ़ने जाने की स्वीकृति मै नहीं दे सकती।'

'लेकिन, मुझे पढ़ना तो अवश्य है और उस पाठशाला के अतिरिक्त दूसरी जगह पढ़ नहीं पाऊँगा। ऐसी दशा में क्या करूँ?'

'तो तुझे अच्छा लगे, सो कर। हमलोगों से ऐसी बात पूछकर, हमें नाहक दुःखी क्यों करता है?' मेरी माँ ने थककर कहा और चुप होगई।

मै, उसकी तरफ देखने लगा। मुझे, उसके दुःख का स्पर्श हुआ। किन्तु, इससे जाने की इच्छा जरा भी कम न पड़ी। मैं, थोड़ी देर रुककर बोला—'मै, अब दो-तीन दिन में चला जाऊँगा'।

मेरी माँ, बिना कुछ बोले, वहाँ से उठकर भीतर के कमरे में चली गई। काना भगत, मेरे नजदीक आकर बैठे और धीरे-से बोले—

'रामभाई! तुझे अपनी माँ की तरफ देखना चाहिये। तू जरा विचार तो कर, इस बेचारी ने तुझे सुखी करने के लिये, कभी अघाकर अनाज भी नहीं खाया।'

'लेकिन, मै पढ़ूँ नहीं, तो क्या करूँ?' मैंने अपनी उलझन फिर प्रकट की।

'तेरी माँ, तुझे पढ़ने से कब रोकती है? हमें यही डर है, कि तू कहीं बेधरम न होजाय।'

'लेकिन, हमारे धर्म में ऐसी कौन-सी चीज है, कि हम.

'रामभाई! ऐसा न बोल। पिछले जन्म के पाप हमलोग अब भोग रहे हैं। इसलिये, इस जन्म में और पाप न बाँध।'

'मै तो जाऊँगा ही' मै ज़रा परेशान-सा होकर बोला।

'अच्छी-बात है-भाई!' काना भगत भी निःश्वास छोड़कर चुप होगये।

थोड़ी देर, कोई कुछ न बोला। मेरे मन में, बहुत-से विचार आने लगे। मैंने उनसे कहा-'यदि मै बेधरम न होऊँ, तो?'

'वहाँ जाने के बाद, बेधरम हुए बिना रह ही नहीं सकता'।

'लेकिन, मै कहता हूँ न, कि मैं बेधरम न होऊँगा! क्या तुम्हें मुझ पर भरोसा नहीं है?'

मेरी माँ ने भीतर से निकलते हुए कहा-'तूने, एक बार तो हमें धोखा दिया ही है। अब तो मुझे डर लगता है, कि तू यहाँ से जाने के बाद लौटकर आवेगा ही नहीं। साहबलोग तुझे फुसला लेंगे।'

'नहीं माँ, मै तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, कि मैं बेधरम नहीं होऊँगा' मैंने कहा। ये शब्द बोलते समय, मेरे दिल में कोई चालाकी का भाव न था, यह मुझे याद है। लेकिन, भीतर एक धड़कन तो मौजूद ही थी।

'मै तो लाख कहने पर भी हाँ नहीं करूँगी' यह कहकर वह भीतर चली गई। काना भगत भी धीरे-से उठे और भीतर गये। मेरे मन में आया, कि अब कुछ ठीक होजायगा। और हुआ भी ऐसा ही। माँ और काना भगत धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। मै, बाहर उनकी बातें कुछ-कुछ सुन सकता था। मैंने जान लिया, कि माँ अन्त में मान ही गई है। बाहर आकर काना भगत ने मुझसे कहा—

'रामभाई! तू भले ही जा। लेकिन देखना, कहीं ऐसा न कर बैठना, कि हमलोगों को अकाल-मृत्यु से मरना पड़े। इस बुढ़ापे में

तेरी माँ को अपना सिर पछाड़ना पड़े, ऐसी दशा न पैदा करना। यदि, तू बेधरम होगया, तो यह जान लेना, कि अब इस सारी पृथ्वी में तेरी माँ का और कोई नहीं रह गया। और हम ऐसा जानेंगे, कि अब घोर-कलिकाल आगया। पेट के लड़के ने, घास के बोझ ढो-ढोकर उसका पालन करनेवाली जननी को लात मारी!'

इन शब्दों ने, मुझे कँपा दिया। मुझे, आज्ञा त ि मिल गई, लेकिन मानों मेरे कलेजे पर हथौड़ों की चोट पड़ रही हो, ऐसी तकलीफ ये शब्द सुनते समय मुझे महसूस हुई। इन्हीं शब्दों ने, मुझे अनेक बार क्रिश्चियन होने से रोका है। मैं, हृदय तथा बुद्धि से जिसे सत्य समझता था, और जिसे इतने वर्षों के बाद आज सबेरे मैंने स्वीकार किया, उस प्रेमधर्म की दीक्षा को, इन शब्दों ने इतने समय तक रोक रक्खा। एक बात और कहूँ। इन शब्दों तथा इनके चित्रों ने, मेरे मन में प्रतिक्षण प्रज्वलित हो उठनेवाली हिन्दू धर्म-विरोधी अग्नि को, अनेक बार बुझा दिया, या मन्द कर दिया है।

'श्रीकान्तभाई!' रामदेव एक लम्बी-साँस खींचकर बोला—'इन शब्दों को अपने हृदय में रखकर, उस दिन मैंने अपना ग्राम छोड़ा। वह प्रसंग, मुझे अभीतक याद है! मेरी माँ, मुझे बिदा करती हुई कितनी डरती थी! उसके ओठ काँपते थे! उसकी आँखों में, आँसुओं की लड़ियाँ लटक रही थीं। और काना भगत, आँखे नीची करके अपना दुःख छिपाने का निष्फल-प्रयत्न कर रहे थे!

रात को आठ बजे, मैंने अपना गाँव छोड़ा। एक बैलगाड़ी में बैठकर मैं रवाना हुआ। काना भगत और मेरी माँ के वापस लौट जाने के पश्चात्, मैंने कृष्णपक्ष की उस रात्रि के पेट भरकर दर्शन किये और शान्ति प्राप्त करने के लिये, आँसू टपकाती हुई आँखों से परमात्मा की प्रार्थना की। गाड़ी, अपनी गति से चली जा रही थी। गाड़ीवाला सो रहा था।' सारा जंगल शान्त था। बाहर, केवल गाड़ी

की खड़खड़ाहट और भीतर मेरे हृदय का मार्मिक–रुदन, ये दो शब्द ही उस समय मैं अनुभव कर रहा था।

इस तरह, मैंने अपना गाँव छोड़ा और फिर इसी प्रेमाश्रम में आया।

रामदेव, इतना बोलकर रुका। उसने, अपनी आँखों तथा अपने मुँह पर रूमाल फेरा। श्रीकान्त ने देखा, कि रामदेव उन दिनों को अपनी आँखो के सामने खड़ा देख रहा है। श्रीकान्त ने, धीरे–से कहा–

'राम.... न, सेमुअल...भाई, अब शाम होने आई। क्या हमलोग घूमने न चलेंगे?'

श्रीकान्त के प्रश्न और नामोच्चारण की परेशानी देखकर, रामदेव को कुछ आश्चर्य हुआ। वह, कुछ विचार में भी पड़ गया। लेकिन, उसने फौरन ही घूमने जाने में अपनी सहमति प्रकट कर दी।

दोनों तैयार होकर बाहर निकले।

२०

चोट पर चोट.

प्रेमाश्रम से बाहर निकलने तक, श्रीकान्त और रामदेव दोनों मौन रहे। बाहर निकलते ही श्रीकान्त ने कहा—"और आगे की बात कहोगे?"

"इस समय?" रामदेव ने पूछा।

"हाँ, यदि कोई आपत्ति न हो, तो"।

"आपत्ति तो क्या होसकती है!" विचार करता हुआ रामदेव बोला।

"हमलोग उस पुल के पास पहुँच जायँ, तब फिर बातें करेंगे"।

श्रीकान्त, सहमत होगया। थोड़ी ही देर में पुल आगया। दोनों वहाँ बैठे और रामदेव ने अपनी कथा शुरू की।

मै, फिर प्रेमाश्रम में लौटकर आया, तब अपनी माँ को दिया हुआ वचन मुझे सदैव याद आया करता और काना भगत के शब्द भी मेरे कानों में गूँजते रहते। इस बार भी मै अपने मामा के ही यहाँ रहा, लेकिन प्रेमाश्रम से मेरा सम्बन्ध बढ़ने लगा। कभी-कभी तो मै दो-दो, तीन-तीन दिनतक यहीं रह जाता था। मुझे, यहाँ ख़ूब सुख मिलता और शान्ति रहती थी।

विलियम साहब तथा पादरीबाबा के प्रेमपूर्ण-संरक्षण एवं ख़ास-तवज्जह के बीच, मेरा दूसरा वर्ष भी समाप्त होगया। सारे वर्ष मैने

क्रिश्चियन मजहब की महत्ता सुनी और उसे स्वीकार करने की इच्छा एवं माता को दिये हुए वचन के बीच झोले खाता रहा। मैं, कोई निर्णय न कर सका, लेकिन वर्ष के अन्त में, माता को दिये हुए वचन की ही विजय हुई। विलिमय साहब का अत्यधिक-आग्रह होने पर भी मैंने दीक्षा न ली।

छुट्टियाँ होते ही, मैं अपने घर गया। मुझे, कुशलपूर्वक वापस लौटा देखकर, मेरी माँ की शंका तथा भय दूर हुआ। उसने, अत्यन्त प्रेमपूर्वक मेरा सत्कार किया। लगभग एक महीने तक मैं वहाँ रहा। इस दरमियान में, ऐसा एक भी प्रसंग उपस्थित नहीं हुआ, कि जिससे उसे मेरी मनोदशा का पता लगता, या किसी प्रकार का खेद होता। छुट्टियाँ खतम होते ही, मैं वापस पढ़ने लौट गया। इस बार, मैं मेट्रिक की परीक्षा में बैठनेवाला था। इस तरह, मेरी वहाँ की पढ़ाई खतम हो जानेवाली थी। अन्तिम-वर्ष होने के कारण, चलते समय काना भगत ने मुझे शिक्षा दी थी, कि-'अब तू अपनी माँ के बुढ़ापे की तरफ देखना और पढ़ाई खतम करके, यहाँ आते समय, वहीं से कोई व्यवसाय ढूँढते लाना'। मेरी माँ वृद्ध होती जा रही थी, यह बात मैं देख रहा था और बार-बार मेरे जी में यही आता था, कि अब मुझे उसको सुख देना चाहिये।

प्रेमनगर जाते हुए, रास्ते में मुझे अनेक विचार आये और मैंने निश्चय किया, कि अब मामा के यहाँ न रहकर, आश्रम में ही रहने लगूँ। वहाँ पहुँचकर, मैंने अपने मामा से यह विचार बतलाया और उनकी नाराजगी की परवा न करके, मैं आश्रम में रहने चला आया। अब तो विलियम साहब की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा। अन्यान्य विद्यार्थी मित्र भी खुश हुए।

पिछले दो वर्षों से, मैं ऐसे वातावरण में था, जहाँ 'मैं चमार हूँ' ऐसा कभी-कभी मुझे भान तो होता था, लेकिन सामान्य-जल्मों

से मैं बचा हुआ था। सारे-सारे दिन मैं प्रेमाश्रम में रहता, इसी लिये बाहर की बातों की मुझे अधिक-खबर नहीं मिलती थी। हाँ, कभी-कभी पादरीबाबा या विलियम साहब के मुँह से, कहीं होनेवाले जुल्मों की कथाएँ अवश्य ही सुनने को मिलती थी। लेकिन, मैं सब जुल्मों को भूल जाऊँ, ऐसी एक घटना इस वर्ष घटी। उससे, मेरे कलेजे में चोट पहुँची और उसने मेरा सारा मन ही बदल डाला। माता को दिये हुए वचन की उस दिन पराजय हुई और क्रिश्चियन मजहब की शरण लेना मेरे हृदय ने स्वीकार कर लिया।

वह भयानक-प्रसंग! वह, आज भी मेरी आँखों के आगे नाच जाता है! हिन्दुओं की निर्दयता का, उससे अधिक-बड़ा उदाहरण और कोई हो ही नहीं सकता। जिस धर्म में यह स्थिति हो, उस धर्म में, मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, कि मनुष्य नहीं, अपितु हिंसक-प्राणी ही रहते होंगे।

नजदीक के ही एक गाँव में, पशुओं में कोई बीमारी फैली। गाय, बैल, भैंस, आदि खूब मरने लगे। गाँव के लोगों ने कुछ उपाय किये, किन्तु रोग न रुका। किसी निष्ठुर-मनुष्य ने यह वहम ढूँढ निकाला, कि गाँव से बाहर बसनेवाले चमारों ने कोई टटका कर दिया है। दो-चार मनुष्यों की तरफ से इस खोज को अनुमोदन प्राप्त हुआ और सारे गाँव ने यह बात स्वीकार कर ली। गाँव के मुखियालोग एक दिन रात्रि के समय चुपचाप एक जगह इकट्ठे हुए और इसका उपाय सोचने लगे। एक ब्राह्मण ने उपाय बतलाया, कि ये चमट्टे इस तरह नहीं मानेंगे, इन्हें कुछ चमत्कार दिखाया जाना चाहिये। क्या चमत्कार दिखलाया जाय, इस पर विचार हुआ। किसी ने, सब चमारों को गाँव से निकाल देने की बात पेश की, किसी ने उन्हें पीटने की बात पर जोर दिया, किसी ने उन लोगों के साथ व्यवहार बन्द कर देने की बात बतलाई, किन्तु एक हिन्दूधर्मप्रवीण-

मनुष्य ने, एक आकर्षक योजना पेश करके, सब का ध्यान अपनी तरफ खीच लिया।

श्रीकान्तभाई! वह योजना मैं आपसे बतलाऊँ। गॉव में, प्रतिदिन पन्द्रह–बीस जानवर मरते थे। उन सब को उठाने का कार्य तो हमारी ही जाति को करना पड़ता था, न! इसलिये, उन महाजनों ने योजना बनाई, कि निश्चित दिन, सबेरे पॉच बजे के क़रीब ही, जब थोड़ा थोड़ा अँधेरा हो, तब इन सभी चमारों को बुलाया जाय और जानवर लेजाने को कहा जाय। वे सब, जब मरे हुए जानवरों को बॉध रहे हों, तव हम सबलोगों को जलते हुए करडे हाथों में लेकर गली के नज़दीकवाले घरों तथा दुकानों में छिप जाना चाहिये। ज्योंही वे लोग उधर से निकलें, कि उन पर वे ही जलते हुए करडे फेंके जायॅ। वे भागें, तो हमलोग भी उनके पीछे दौड़े और अन्त में उनके झोंपड़ों में भी आग लगा दें। इस प्रस्ताव का, किसी ने भी विरोध न किया। सारा गॉव इस पर एकमत होगया। केवल एक बुढ़िया–ब्राह्मण बुढ़िया ही ऐसी थी, जो इस बात को सुनकर कॉप उठी। उसने, अपने मुखिया बेटे को रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु उसे सफलता न मिली।

निश्चित–समय पर वह योजना अमल में आई। मुझे, वह दृश्य देखने का सौभाग्य तो प्राप्त नहीं हुआ, लेकिन उसके बाद फौरन ही हमलोग वहाँ गये। वहाँ जाकर, हमने जो–कुछ देखा या सुना, उसके आधार पर मालूम हुआ, कि ज्योंही वे बेचारे बेसमझलोग जानवरों को खीचते हुए उन गलियों में होकर गुज़रने लगे, कि त्योंही उन पर जलते हुए करडों की बारिश–सी शुरू होगई। कुछ देर तो उन्होंने इधर–उधर देखा, किन्तु फिर उन यमदूतों के चीत्कार तथा अग्निवृष्टि से घबराकर वे बेचारे भागे। लोग, उनके पीछे दौड़ने लगे। उस दृश्य का मैं क्या वर्णन करूं! एक अन्धा–बूढ़ा भी इस मुसीबत में पड़ गया। एक तरफ से करडा लगने पर वह दूसरी तरफ भागता,

टकराता, गिरता, फिर खड़ा होकर जिधर मुँह उठे, उधर ही भागने का प्रयत्न करता था। लेकिन, उस पर वह अग्निवृष्टि तो हो ही रही थी। वह, लोहूलुहान होगया और गॉव के मुख्य-रास्ते पर उसकी लाश गिर पड़ी।

गॉव के लोग, इतने ही से न रुके। वह बड़ाभारी झुण्ड, कोलाहल करता हुआ चमारों के घर की तरफ दौड़ा। इस बार, उस बुढ़िया-ब्राह्मणी से न रहा गया। वह, लोगों को रोकने लगी। लेकिन, लोगों ने उसे धक्का मारकर गिरा दिया और मानों नशे में चूर हो रहे हों, इस तरह उसे कुचलते हुए उस मुहल्ले की तरफ दौड़े। मुहल्ले में इस आक्रमण की ख़बर पहुँचते ही, स्त्रियाँ, बच्चे, वृद्ध आदि घर छोड़-छोड़कर भागे। आक्रमणकारियों में से, कुछलोग तो उनके पीछे दौड़े और कुछ उनके घर जलाने के काम में लग गये।

यह समाचार, प्रेमाश्रम में फौरन ही आ पहुँचा। पादरीबाबा ने भयसूचक घण्टा बजाया और तत्क्षण ही हमारी एक टुकड़ी तैयार होगई। हम, सबलोग दौड़ते-दौड़ते वहाँ पहुँचे। वह गाँव, आश्रम से सिर्फ तीन माइल दूर था। हमारे पहुँचने की ख़बर मिलते ही, गॉव के लोग अपने-अपने घरों में घुस गये और चमार मुहल्ले के सब स्त्री-पुरुष, मय बच्चों एवं बूढ़ों के, कॉपते-काँपते हमारे सामने आये। श्रीकान्तभाई ! आप उस दृश्य की पूरी तरह कल्पना भी नहीं कर सकते। लगभग पचास दुःखी-प्राणी, उस समय हमारे सामने खड़े थे। उनका क्या अपराध था? उन्होंने, इस जन्म में या पूर्वजन्म में कौन-से पाप किये थे? उन्हें देखते ही, मेरी आँखों में ख़ून उतर आया। मुझ से न रहा गया। मैंने, एक आवाज़ लगाकर सबलोगों को गॉव में घुस पड़ने को कहा। पादरीबाबा ने, मुझे ऐसा करने से रोका। वे, धीरे-धीरे बातें करने लगे। इसी समय, सामने से गिरती-पड़ती वह बुढ़िया-ब्राह्मणी वहाँ आ पहुँची। उसे देखकर हमलोग चौंके।

पादरीबाबा ने, उसे अपने पास बुलाकर सब बातें पूछीं। उसने, सारी योजना कह सुनाई। उस बेचारी का सिर फूट गया था, कपड़े फट गये थे और हाथ-पैर छिल गये थे।

पादरीबाबा की आज्ञा से, हम सबलोग मुहल्ले में गये और जल्दी-से-जल्दी एक छोटा-सा अस्पताल बनाकर तैयार कर दिया। जले हुए और घायल-मनुष्यों की मरहमपट्टी शुरू होगई। सौभाग्य से, उन लोगों के घर बहुत ज़्यादा न जले थे। सिर्फ दो-एक घरों की सामग्री ही जली थी। बाकी ज्यों-के-त्यों बच गये थे। पादरीबाबा ने, धीरे-धीरे सब बातें पूछकर लिख लीं। वहाँ का काम पूरा हो जाने के बाद, वे कुछ स्वयंसेवकों को लेकर गाँव में गये। इन स्वयंसेवकों में एक मैं भी था। गाँव में सन्नाटा था। एक भी आदमी गलियों में न दीख पड़ा। उस अन्धे के शव को देखकर, पादरीबाबा की आँखों में पानी भर आया। स्वयंसेवकों ने, वह मुर्दा वहाँ से उठा लिया।

किसी के साथ बातचीत किये बिना ही, हमलोग गाँव से वापस लौट पड़े। मुहल्ले के लोगों में, जो अधिक घायल हुए थे, उन्हें प्रेमाश्रम के अस्पताल में रवाना करके, लोगों को आश्वासन देने के बाद, हम सब प्रेमाश्रम लौट आये।

इस दृश्य ने, पादरीबाबा की तबियत तोड़ दी। दो-तीन दिन तक उन्होंने भोजन नहीं किया। सारे दिन, प्रार्थना ही करते रहते। किन्तु, विलियम साहब की स्थिति इससे भिन्न थी। उन्होंने, बड़ी कठिनाई से पादरीबाबा को समझाया और इस सारी घटना का सच्चा-चित्र पुलिस के सामने पेश किया। परिणामतः, आठ-दस मनुष्यों को सज़ा हुई और कुछ लोगों को जुर्माने हुए। किन्तु, विलियम साहब इतने ही से सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने, वहाँ एक मिशन क़ायम किया और पाठशाला प्रारम्भ की। वे स्वतः भी कभी-कभी वहाँ जाने लगे। अनेक बार मैं भी उनके साथ ही जाता। हमारी सहानुभूति,

शिक्षा और उपदेश से, दो ही वर्षों में उस सारे मुहल्ले ने क्रिश्चियन धर्म स्वीकार कर लिया। अब, उस गाँव में एक भी चमार नहीं रह गया है।

इतना कहकर रामदेव रुका और श्रीकान्त के मुँह की तरफ देखने लगा। श्रीकान्त के चेहरे पर दुःख की गहरी-छाया दिखाई दे रही थी। आँखें, असह्य-वेदना के कारण, आधी बन्द हो रही थीं। रामदेव ने, बोलना बन्द कर दिया था, किन्तु फिर भी बड़ी देरतक श्रीकान्त इस तरह स्थिर बैठा रहा, मानों सुन रहा हो।

"हाँ, फिर?" थोड़ी देर बाद आँखें खोलकर श्रीकान्त ने कहा।

"उस घटना की क्या आप कल्पना भी कर सकते हैं?" बात करने के बदले रामदेव ने यह प्रश्न पूछा।

"आपने अच्छा किया, जो क्रिश्चियन होगये" बड़ी कठिनाई से श्रीकान्त बोल पाया। रामदेव की आकृति पर सन्तोष की एक हलकी-सी रेखा दौड़ गई।

"हाँ, रामदेव! अब आगे की बातें शुरू करो" श्रीकान्त ने कहा।

"आप, और अधिक नही सुन सकते। आपका हृदय, इससे अधिक चोट नहीं सह सकता। आपकी आँखें और आपका चेहरा, आपके हृदय की स्थिति प्रकट कर रहा है।"

"भले ही हृदय के टुकड़े होजायँ, लेकिन मुझे सुनना जरूर है। मेरी जाति ने कैसे-कैसे पाप किये हैं, यह तो जानूँ।"

"किन्तु, आगे की बातों में, केवल मेरे हृदय का मन्थन ही है"।

"चाहे जो हो, आप अपनी बात अब शीघ्र ही पूरी कीजिये"

"अच्छी-बात है", कहकर रामदेव ने बात शुरू की।

२१

अन्तिम-स्थिति.

उस घटना के बाद से, मेरी मनोदशा एकदम पलट गई। अबतक, मेरे हृदय में, केवल दुःख की ही होली जल रही थी। वहाँ, अब इस दृश्य को देखकर अनेक होलियाँ जलने लगीं। विलियम साहब, इस घटना के पीछे छिपी हुई क्रूरता का मुझे सदैव भान करवाते रहते थे। इस वर्ष, मै मेट्रिक की परीक्षा में पास न हुआ, क्योंकि पढ़ाई से मेरा जी उचट गया था। वर्ष के अन्त में, दीक्षा-समारम्भ होनेवाला था, उसमें मैंने अपना नाम भी लिखवा दिया।

विलियम साहब ने मना किया, किन्तु फिर भी मै अपने घर गया और दीक्षा-समारम्भ के अवसर पर वापस न आ सका। घर जाने के बाद, अपनी मनोदशा छिपाना मुझे उचित नहीं प्रतीत हुआ। उस घटना की स्मृति, मुझे दिन-प्रतिदिन उत्तेजित करती जा रही थी। मैंने, अपने घर पहुँचने के बाद, तीसरे या चौथे दिन अपनी माँ से बतला दिया, कि—'अब, मुझसे क्रिश्चियन धर्म स्वीकार किये बिना नहीं रहा जाता'। इस वाक्य ने, उस पर मानों वज्र गिरा दिया! किन्तु, इससे मैं विचलित न हुआ। मैंने, उससे बतला दिया, कि—पिछले एक वर्ष से, मैं मामा के यहाँ नहीं, 'बल्कि प्रेमाश्रम में ही रहता हूँ'। इस समाचार ने, उसकी बची-खुची आशाएँ भी नष्ट कर

दीं। उसने, बिना कुछ बोले, दीवार पर अपना सिर मारा। मैं, काँप उठा। मैने, उसके पास जाकर, उसका सिर पकड़ लिया।

"रहने दे, अब ज़िन्दजी में कोई सार नहीं है" माँ ने कहा।

मेरी समझ में न आया, कि इतने जबरदस्त आघात का कारण क्या है? उस समय तो मैने जैसे-तैसे करके उसे समझा दिया। किन्तु, इस प्रश्न का, इस तरह हल नहीं निकल सकता था।

कुछ दिन, घर में मौन रहते हुए हमलोगों ने व्यतीत किये। किन्तु, इस तरह कबतक जीवित रह सकते थे? घण्टे, दिन के सदृश और दिन वर्ष के बराबर जान पड़ने लगे। काना भगत भी कभी-कभी मुझे समझाते थे, लेकिन किसी की बात मेरे गले न उतरती। काना भगत के वे शब्द, जिनमें उन्होने कहा था, कि—'इसने रक्त पिलाकर तुझे पाला है, इसलिये इसे लात न मारना' उन्होंने अपने ही मुँह से दोहराकर, मेरी भावनाओं को हिला दिया। मैने, अपनी उस भावमय-स्थिति में, फिर इस बात का वादा किया, कि—'मैं बेधरम न होऊँगा"। किन्तु, वहीं रुके रहने की उनकी इच्छा का पालन करने में मैंने अपनी असमर्थता प्रकट की और मे फिर प्रेमाश्रम को लौट गया।

मेरे देर से लौटने का ऐसा ही कोई कारण होगा, यह बात विलियम साहब पहले ही जान गये थे। उन्होंने, मुझसे घर की सब बातें पूछी। मैंने, कुछ भी छिपाये बिना, उन्हें सारी परिस्थिति बतला दी और यह भी कह दिया, कि अन्त में मैं वचन देकर ही घर से निकला हूँ। वे हँसे और मुझसे कहने लगे—'इस तरह का वचन, बन्धन नहीं है, क्योकि यह वचन विचारपूर्वक दिया हुआ वचन नहीं कहा जा सकता'। मैंने भी अपने मन को इसी तरह मना लिया और आश्रम में सब के सामने, अपने सम्बन्ध में प्रचलित इस बात का, कि मैं दीक्षा लेनेवाला हूँ,—समर्थन किया।

दिन और उसके बाद महीने बीतने लगे। विलियम साहब के मुँह से भगवान् ईसामसीह की कथाएँ सुनता हुआ, मैं हृदय से क्रिश्चियन बनता गया। अपने जीवन के पूर्वभाग की स्मृतियों तथा प्रतिदिन वहाँ आनेवाले समाचारों को सुनकर हिन्दू धर्म के प्रति मेरे मन में रोष उत्पन्न होता जा रहा था। मैंने, क़ायदे की पढ़ाई तो छोड़ ही दी थी। किन्तु, वर्ष पूरा होते ही, सामान्य-रूप से मेरी माँ के पास जाने का प्रश्न उत्पन्न हुआ। इस बार, अनेकानेक विचारों के पश्चात्, मैंने वहाँ न जाना तय किया और न गया। अब, प्रेमाश्रम के छोटे-बड़े कार्यों में मैं अपना समय देने लगा। किन्तु, एक दिन मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा, जब प्रेमाश्रम के दरवाज़े में आकर एक गाड़ी खड़ी हुई और एक भाई ने यह ख़बर दी, कि मुझे कोई बाहर बुला रहा है। दरवाज़े में दृष्टि पहुँचते ही, मेरे पैर ढीले पड़ गये। गाड़ी के पास ही, मेरी माँ, काना भगत और वे ही मेरे मामा खड़े थे। क्षणभर के भीतर ही, मेरे मस्तिष्क में सैकड़ों विचार उत्पन्न हुए और मुझे अशान्त बनाकर नष्ट होगये।

मैं, बाहर निकलकर उनके नज़दीक आया, तब कोई कुछ भी न बोला। सब की दुःख तथा भय से व्याकुल आँखें, मेरी ही तरफ लगी थीं। मैं, झूठमूठ हँसता हुआ बोला—'क्यों, तुम सबलोग यहाँ आगये? मुझे लिखा होता, तो मैं वहीं न चला आता!'

'जो हुआ, सो ठीक' काना भगत बोले 'अब, तू घर लौट चल, बाक़ी सब ठीक हो जायगा'।

मैंने, समयसूचकता से काम लिया। तर्कवितर्क या विवाद करने का समय न था। मैं, तैयार होकर वापस आया और गाड़ी में बैठकर अपने गाँव की तरफ चल दिया।

रास्ते में, बहुत-सी बातें हुईं, लेकिन वे सब दुःख तथा वेदना की ही थीं। उनमें, कोई नवीनता न थी, फिर भी उनका प्रत्येक शब्द,

बार-बार अन्तर को बेधे डालता था। आँसुओं की धाराएँ पहले भी देखी थीं और निःश्वास भी सुने थे, लेकिन आज ये सब मिलकर मेरा हृदय मथे डालते थे।

घर पहुँचकर, मेरी माँ खाट पर पड़ गई। और किसी के लिये नहीं, तो कम-से-कम माँ को अच्छी करने के लिये ही सही, मुझे अपने धर्मपरिवर्तन के सम्बन्ध में कुछ न बोलना चाहिये, यह मैंने निश्चित कर लिया। उसकी बीमारी को एकाध महीना हुआ, कि त्योंही घर में अन्न चुका। मेरी माँ को यह बात मालूम थी, अतः काना भगत से कहकर उसने उन्हीं के मार्फत कहीं से अनाज उधार मँगवाने की व्यवस्था की। उसे, यह साहस था, कि मैं दस-पाँच दिन के भीतर ही अच्छी होकर, यह कर्ज पाट दूँगी। मुझे, इस नये-प्रश्न ने परेशानी में डाल दिया। मैं, अब जवान हो चुका था। काफी पढ़ा-लिखा था। अपने-आपको होशियार भी समझता था। अपनी माँ की परिचर्या अथवा अपने पेट भर के लिये भी क्या मैं नहीं कमा सकता? यह बात मेरे मन में लग गई। मैंने, कमाने का दृढ़-निश्चय किया।

किन्तु, इस तरह निश्चय कर लेने मात्र से ही काम नहीं चल सकता था। उस छोटे-से ग्राम में, कपड़े बुनने, चमड़े का काम करने या थोड़ी-सी मजदूरी के सिवा, और मेरे लिये क्या व्यवसाय था? इस प्रश्न पर विचार करते समय, मुझे अपना चमारपन फिर सालने लगा। मुझे जान पड़ा, कि सब रोगों की जड़ मेरे चमारपन में ही है। इस एक में से यदि मैं छूट जाऊँ, तो सब-कुछ प्राप्त कर सकता हूँ। मुझे जान पड़ा, कि उस अवस्था में सारी दुनिया, अपने सभी साधनों सहित मेरे लिये प्रस्तुत हो जायगी और उस विशाल-व्यवस्था में, मैं अपने-आपको चाहे जहाँ लगा सकूँगा।

इस प्रश्न ने मुझे उद्विग्न कर दिया। इस पर विचार करता-करता, मैं थक गया। एक दिन, अपनी इस परिस्थिति की खबर मैंने विलि-

यम साहब को दी। ये दिलेर-आदमी, दूसरे ही दिन मेरे दरवाजे आ खड़े हुए। इनके साथ एक डॉक्टर भी थे। मुहल्ले के लग, यह सब देखकर एकत्रित होगये। डॉक्टर और विलियम साहब घर में आये, तब मेरी माँ एकदम घबरा उठी। किन्तु, भय के मारे कुछ बोल न पाई। डॉक्टर ने, शरीर की परीक्षा करके एक शीशी दवा दी और पूरी तरह आराम करने को कहा।

विलियम साहब, बातें करने के लिये मुझे एक तरफ लेगये। मुझे याद है कि अत्यन्त-भयभीत दशा में मेरी माँ यह देख रही थी। विलियम साहब ने हँसते-हँसते मेरे हाथ में पचास रुपये के नोट धर दिये और आवश्यकता पड़ने पर जो चाहिये, सो मँगा लेने की हिदायत करने लगे। उन्होंने, उस समय, मेरे सामने धर्म विषयक अथवा दीक्षा विषयक कोई बात ही न की। मैंने, रुपये लेने में बहुत आनाकानी की। किन्तु, उन्होंने कहा, कि—'मनुष्यों की सेवा करके यह ऋण चुका देना'।

वे चले गये। मेरी माँ को रुपये की बात मालूम हुई। काना भगत को भी पता लग गया। वे दोनों, ख़ूब दुःखी हुए। 'ऐसा रुपया हमें न चाहिये। मै, उसमें से रोटी खाना पसन्द न करूँगी।' मेरी माँ ने यह बात स्पष्ट कर दी। उसने, डॉकटर द्वारा दी हुई दवा भी ढोल दी। मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ होगया। मै, दुःखी होने लगा। सचमुच ही मेरे जी में उस दिन विश्वास होगया, कि मेरी माँ बिलकुल अज्ञानी है और कुछ भी नहीं समझती।

परमात्मा की कृपा से, थोड़े ही दिनों में वह अच्छी होगई। किन्तु अब, उसका स्वभाव बदल गया था। मुझे जान पड़ा, कि उसके हृदय में, मेरे प्रति जो अपार-स्नेह था, वह अब घट गया है। वास्तव में, मेरी यह धारणा भ्रमपूर्ण थी। वह बेचारी, दुःख के मारे ही मुझ पर चिढ़ती थी। किन्तु, हम दोनों के बीच का मीठापन

अदृश्य होगया। मुझे, वहाँ रहना दु:खद जान पड़ने लगा। एक दिन, मैंने जाने की आज्ञा चाही और उसने फौरन ही दे दी। मैं समजता था, कि इस स्वीकृति के पीछे, असह्य-दु:खजनित रोष छिपा है। फिर भी, मैंने यह आज्ञा स्वीकार कर ली और प्रेमाश्रम की तरफ बिदा हुआ।

श्रीकान्तभाई! उस समय के सभी दिनों की बात कहने लगूँ, तो पार नहीं मिल सकता! सबेरे मेरे हृदय में एक विचार आता, दोपहर को दूसरा और रात को मै कोई तीसरा ही निश्चय करके सोता था। इस तरह, भीतर-ही-भीतर कुचलाता हुआ, मै अपने दिन व्यतीत कर रहा था। उसके बाद, मै दो बार दीक्षा लेने को तैयार हुआ, किन्तु दोनों ही बार रुक गया। किन्तु, आखिर एक दिन ऐसा आ ही गया, जब मैंने अन्तिम-निर्णय कर डाला। विलियम साहब और पादरीबाबा, एक दिन चाँदनी-रात में मेरी कोठरी में आये। पादरीबाबा ने, मेरे सिर पर हाथ धरकर, मुझे सद्बुद्धि प्राप्त हो, इसके लिये प्रार्थना की। मेरे मन पर, इस प्रार्थना का गम्भीर-प्रभाव पड़ा। विलियम साहब से बातचीत करते हुए, मैंने दीक्षा लेने का अपना दृढ़-निश्चय प्रकट किया।

मेरे निश्चय की वह रात्रि, मेरे लिये बहुत कठिन होगई। मैं, बिलकुल बदला जा रहा होऊँ, ऐसा मालूम हुआ। अपनी माँ को, उस रोगशय्या पर चीखें डालती हुई छोड़कर, मै मानों किसी महल के झरोखे में बैठने जा रहा होऊँ, ऐसा मुझे जान पड़ने लगा। माँ!...माँ!-मेरे मनोराज्य में, एक मूर्त्ति-सी उठ खड़ी हुई। मैंने, नींद लेने के लिये बहुत प्रयत्न किये, किन्तु वह किसी तरह न आई। श्रीकान्तभाई! आप विश्वास करेंगे? रात को तीन बजे मै वहाँ से चलकर विलियम साहब के पास गया और दिल खोलकर रोया। मैंने, उनसे बतलाया, कि-'मै, अपनी माँ के बिना नहीं जी सकता'। उन्होंने, मेरे शरीर पर हाथ फेरा और आश्वासन देकर मुझे शान्त किया। खूब उपदेश देने

के बाद, उन्होंने मुझे अन्तिम-बार अपनी माँ को फिर समझाने का प्रयत्न करने की सलाह दी। मुझे, इस सम्बन्ध में किञ्चित् भी विश्वास न था, फिर भी अपने मन में तरह-तरह की योजनाएँ गढ़ता और प्रार्थना करता-करता, मैं अन्तिम-बार अपने गाँव जाने के लिये निकला। मेरे पैर घर की तरफ बढ़ रहे थे, किन्तु मुझे ऐसा जान पड़ता था, मानों वे पीछे लौट रहे हों। मेरे मन में, बार-बार यह बात उठती थी, कि मै अकारण ही स्वतः दुःखी होने और अपनी माँ को अधिक दुःखी करने जा रहा हूँ। किन्तु, अपने हृदय में उठनेवाली इन समस्त शंकाओं को, प्रार्थना की आवाज़ में दबाता हुआ, मै अपने गाँव पहुँचा।

मुहल्ले में पैर रखते ही, मेरा हृदय काँपने लगा। मैं, अपने-आपको पराया जान पड़ा। घर में जाते हुए तो मेरी स्थिति बिलकुल-विचित्र होगई। मैं, जब घर पहुँचा, तब मेरी माँ वहाँ न थी। मेरे आने का समाचार मिलते ही, वह पड़ोसी के यहाँ से आई। मेरी चिन्ताग्रस्त-आकृति देखकर, उसके हृदय में सहानुभूति उत्पन्न होगई। वह, मेरी तरफ दयापूर्ण-दृष्टि से देखती हुई, मेरे सामने आकर बैठी। उसके मुँह से, पहली ही बात यह निकली, कि—'चला आया, न—भाई !' यह सुनते ही, मेरे हृदय की धड़कन और बढ़ने लगी। मैं, कुछ भी न बोल पाया। मन में सोची हुई सभी युक्तियाँ, परमात्मा जाने कहाँ ग़ायब होगई !

'भोजन करेगा, न ? भूख लगी होगी।' कहकर उसने मेरे लिये भोजन परोसा मैंने बिना कुछ बोले, जितना अच्छा लगा, खा लिया। मुझे, इतना अधिक गम्भीर देखकर, उसे कुछ और ही चिन्ता पैदा होगई।

'तुझे, कुछ कर तो नहीं डाला है ! इन साहबलोगों का कभी विश्वास ही नहीं किया जा सकता।'

ये शब्द सुन लेने के बाद, दीक्षा के सम्बन्ध में एक भी शब्द उच्चारण करने का साहस मुझे न हुआ। वह दिन, मैंने इधर-उधर की बातें करने में व्यतीत कर दिया और दूसरे दिन के सबेरे पर निर्जीव-आशा रखकर, बिछौने में पड़ रहा।

आधी-रात तक विचार करके, मैंने अपने मन में निश्चित किया, कि सबेरे अपनी माँ के सामने यह बात रक्खूँगा। फिर, वह मान जाय, तब तो ठीक ही है, अन्यथा मुझे तो ईसाई धर्म स्वीकार ही करना है। उस समय आशा की एक हलकी-हलकी रेखा यह भी दिखाई देती थी, कि यदि अभी न मानेगी, तो अन्त में मुझे क्रिश्चियन के रूप में देखकर तो मानेगी ही। क्रिश्चियन धर्म की महत्ता, यदि इसकी समझ में नहीं आती, तो अन्त में मेरा प्रेम तो इसे वहाँ खींच ही लावेगा।

ऐसा निश्चय लेकर मै सबेरे उठा और माँ से बातचीत शुरू की। मैं, संक्षेप में बतला दूँ, कि मेरी सभी युक्तियाँ बेकार गईं। मेरे बतलाये हुए सुख तथा सुविधा प्राप्त करने से, उसने एक क्षण में इनकार कर दिया। धर्म की महत्ता समझने से तो बिलकुल नाहीं कर दी। इतना ही नहीं, उसने मुझसे यहाँ तक कह दिया, कि—'जो तू बेधरम हो जायगा, तो मै हाथ में कटोरी लेकर भीख भले ही माँग खाऊँ, लेकिन तेरे दरवाज़े हर्गिज न आऊँगी'। इस स्थिति में, मेरे पास उसे समझाने के लिये और कुछ बाक़ी ही न रह गया था। मैंने, मौन होकर अपने ही सम्बन्ध में विचार करना प्रारम्भ किया और शाम होते ही, अपनी माँ को सूचित किये बिना, मुहल्ले के एक गाड़ीवाले से, मुझे प्रेमनगर छोड़ आने को कह आया। कुछ अँधियारा होते ही, मेरे मकान के पास आकर गाड़ी खड़ी हुई। मैंने, चुपचाप अपना सामान उसमें धर दिया। मेरी माँ, आँखें फाड़कर मेरा यह कृत्य देखती रही, किन्तु कुछ बोली नहीं। इसी भीषण-मौन के बीच, मै मुहल्ले से चल दिया।

इतना कहकर रामदेव रुका और मानों किसी गम्भीर-विचार में पड़ गया हो, इस तरह नीचे देखता हुआ बैठा रहा।

"मौन क्यों होगये ?" श्रीकान्त ने उसे जाग्रत किया।

"बस, बात पूरी होगई !" दुःखपूर्ण-स्वर में उसने कहा और अपना सिर उसी तरह झुकाये रक्खा।

"लेकिन, अभी तो......"

"अब, कहने योग्य कोई बात नहीं है। उसके बाद की बात में, कोई रस नही है। अश्रु, व्यथा और दुःख के अतिरिक्त, और कोई बात नहीं है, जो कही जा सके।"

श्रीकान्त ने, और कुछ न पूछा। वह भी इस गम्भीर-प्रसंग के उपयुक्त मौन धारण करके, शान्तिपूर्वक बैठा रहा। एक के बाद एक क्षण बीतने लगी।

"श्रीकान्तभाई ! रामदेव ने ऊपर देखकर कहा—"मेरी कथा पूरी होगई। अब, यदि आपको जाना हो, तो जा सकते हैं।"

"ऐसा क्यों ? यदि मैं रहूँ, तो क्या कोई हर्ज है ?"

"नहीं" वह मानों आँसू बहा रहा हो, ऐसा जान पड़ा।

२२

प्रेम का स्पर्श.

मधुसूदन को सविता का बुलौआ मिलते ही, वह फौरन आया। सविता, इस तरह उसे कभी-कभी बुला लिया करती थी, अतः मधुसूदन को कुछ नवीनता नहीं जान पड़ी। किन्तु, सविता के पास आकर, उसने जब रात का सब इतिहास सुना, तब उसकी स्थिर-बुद्धि भी थोड़ी देर के लिये कुण्ठित होगई। सविता ने, बात पूरी करते हुए, अपना यह निश्चय भी प्रकट कर दिया, कि-'चाहे जितना बलिदान करना पड़े, अकबर और जमादार को बचाना ही चाहिये'। मधुसूदन, सविता के इस निश्चय से सहमत था, लेकिन किस तरह बचाना चाहिये, यह प्रश्न उसे हैरान कर रहा था।

लगभग दो घण्टे तक इन दोनों ने बातें कीं और विभिन्न योजनाओं पर विचार किया। किन्तु, ऐसा कोई मार्ग न सूझ पड़ा, जो सर्वथा-सुरक्षित हो। सविता को, मन की गहराई में एक विचार सूझ पड़ता था, वह उसने प्रकट किया—"हमलोग, यदि उन मुसलमानों के ही यहाँ जायँ, तो?"

"तो......" मधुसूदन चौंक पड़ा। सविता, उसकी तरफ देखती हुई बोली-"मै नहीं समझती, कि उन लोगों पर हमारे इस कार्य का कोई प्रभाव ही न पड़े"।

मधुसूदन, विचार में ही पड़ा रहा। सविता ने फिर पूछा—"आपको यह योजना कैसी जान पड़ती है?"

"यह बात, विचारणीय तो अवश्य है" मधुसूदन बोला। सविता के हृदय में, उत्साह की वृद्धि हुई।

"हमलोग, पहले जमादार के पास जायँ और वहाँ से उसे साथ लेकर उन लोगो के पास जायँ" सविता ने कहा।

"उपाय तो प्रशंसनीय है। हमलोगों को यही मार्ग शोभा दे सकता है। किन्तु, शायद इससे हमलोग खुद ही विषम-परिस्थिति में जाकर फँस जायँ।" मधुसूदन कुछ रुका और फिर बोला—"लेकिन, जमादार के पास एक बार जा तो आना ही चाहिये"।

सविता तो तैयार ही थी। उसने कहा—"तो चलो, चलें। बाक़ी बातें वहीं परिस्थिति को दृष्टि में रखकर तय कर लेंगे।"

"मै, यदि पिताजी से यह बात कहूँ, तो?" मधुसूदन बोला।

"तो वे तो मुझे कहीं जाने ही न देंगे। मेरी इच्छा है, कि एक बार मै मोती तथा जमादार को साथ-साथ देखूँ। उस अक़बर से परिचय बढ़ाने को भी जी चाहा करता है।"

"तो चलो" मधुसूदन तैयार होगया। लेकिन, इन दोनों में से, किसीने भी, जमादार का घर न देखा था। सविता, मुहल्ले में दो-तीन जगह पूछकर पूरा पता मालूम कर आई। दोनों, जमादार के घर की तरफ चल दिये।

रात को, जब अक़बर और मोती लौटकर घर आये, तब जमादार बिछौने में पड़ा-पड़ा सो रहा था। उसकी नींद में, आराम का अंश न था, यह बात उसके चेहरे के भावों तथा उसके बार-बार चौंक पड़ने से मालूम होती थी। मोती, उसे जगाये बिना ही सो गई।

सबेरे, मोती, जमादार की अपेक्षा पहले जागी थी। आज, रोटी बनाने के लिये घर में आटा न था, इसकी उसे चिन्ता होने लगी, किन्तु काम पर तो किसी तरह जा ही नहीं सकती थी। थोड़ी देर विचार करने के बाद, वह अमीनाबाई के यहाँ से आटा तथा दाल ले आई। चूल्हा जला लेने के बाद उसने जमादार को जगाया। जमादार, मानों सोया ही न हो, इस तरह जाग पड़ा। उसकी आँखें, लाल-सुर्ख़ दीख पड़ती थीं। उसकी आकृति की प्रत्येक रेखा से भय व्यक्त होता था। चूल्हे पर दाल चढ़ाकर, मोती जमादार के पास आई और उससे सब बातें कहीं। जमादार ने, मूढ़ की तरह सब बातें सुन लीं। उसके चेहरे पर, इससे कोई फर्क न पड़ा। थोड़ी देर के बाद, अक़बर भी वहीं आगया। किन्तु, जमादार ने उससे भी कोई बातचीत न की। मोती को चिन्ता होने लगी, कि यह कहीं पागल न हो जाय! मोती ने, उससे दो-तीन बार दातुन करने को कहा, तब वह बड़ी कठिनाई से उठा और जैसी-तैसी दातुन करके, फिर ज्यों-का-त्यों आकर बैठ गया।

नौ बजे के लगभग, मोती ने उसे रोटी परोस दी। जमादार ने चुपचाप भोजन किया। फिर उठा और एक टाट बिछाकर उसी पर लम्बा होगया। मोती, उसके पास बैठकर उसका सिर दाबने लगी। पाँच मिनिट भी न बीते होंगे, कि जमादार की लाल-लाल आँखों से आँसू बहने लगे। मोती, बिना कुछ बोले सिर दाबती रही। थोड़ी देर रोकर जमादार ने अपनी आँखें पोंछ डालीं। वह, उठकर बैठने लगा, लेकिन मोती ने उसे फिर सुला दिया।

रोने के पश्चात्, जमादार कुछ शान्त दीख पड़ा। अब, मोती की इच्छा कुछ बातचीत करने की हुई। लेकिन, ज्योंही वह कुछ बोलना चाहती थी, कि अक़बर ने दरवाज़े में प्रवेश किया। मोती, सावधान होकर बैठ गई। अक़बर ने, प्रसन्न होते हुए यह समाचार

सुनाया, कि 'मधुसूदन तथा देवा की लड़की, दोनों आ रहे हैं'। जमादार के कानों पर भी ये शब्द पड़े। वह, एकदम उठ बैठा। उसके नेत्र विकल हो उठे। उसे, कुछ सूझ न पड़ा। वह, इधर-उधर देखने लगा।

सविता, हँसती हुई आकर मोती के दरवाजे में खड़ी होगई। जमादार, अपनी आँखें ऊपर न उठा सका। मोती ने खड़ी होकर, मौनभाव से आगन्तुकों का स्वागत किया। सविता, मधुसूदन और अकबर, तीनों भीतर आकर बैठे। जमादार ने, अपनी आँख फिर भी ऊपर न उठाई। उसे देखते ही, सविता का सारा रोष शान्त होगया। उस दिन सड़क पर पान का गोला चबाता और सिगरेट फूँकता हुआ जमादार, आज का जमादार न था। आज, बेचारे की दाढ़ी बढ़ रही थी। आँख भीतर घुसी हुई थीं। गाल बैठ गये थे। सिर, लज्जा के मारे नीचे झुक गया था और उसकी साँस ज़ोर-से चलती सुनाई पड़ती थी।

इस स्थिति में, बात कैसे की जाय, यह एक प्रश्न था। पहले कौन प्रारम्भ करे, यह सब से बड़ी उलझन थी। अकबर, स्थिति समझ गया। उसने जमादार से कहा—"ऊपर देख, ये लोग तेरे लिये ही आये हैं"।

जमादार ने ऊपर न देखा।

"ये शरमाते हैं, आपको जो कुछ कहना हो, सो कहिये, न !" मोती ने सविता से कहा।

"हमें, कुछ भी नहीं कहना है। हमने, कई तरह से विचार किया, लेकिन इसमें से निकलने का कोई रास्ता नहीं दीख पड़ता।" मधुसूदन ने कहा "जमादार कुछ बातचीत करे, तो और कोई सूरत सोची जावे"।

"मुझे एक विचार आया है" अकबर बोला।

"बहिन अगर हिम्मत करें, तो जमादार के पास जो सौ रुपये हैं, वे लेकर ये ख़ुद ही हसन के घर जायँ"।

सविता ने, एकदम मधुसूदन की तरफ़ देखा। मधुसूदन ने भी ऐसा ही किया।

"मेरे मन में भी ऐसा ही विचार आया है" सविता ने कहा।

"नहीं-नहीं, ऐसा मत करना" जमादार बोल पड़ा।

"क्यों, क्या हर्ज है ?" सविता ने पूछा।

"वहाँ, कोई मनुष्य नहीं है, सब मुझ जैसे हैवान ही हैं" जमादार ने जवाब दिया।

"तो वे क्या करेंगे ?" सविता ने पूछा।

जमादार, आँखें फाड़कर इस प्रश्न के पूछनेवाले की तरफ़ देखता रह गया। सविता को जान पड़ा था, कि यह उस दिनवाला जमादार नहीं है, उसी तरह जमादार को भी जान पड़ा, कि-'यह लड़की नहीं है'। वह, कुछ बोल न पाया। अपने फटे हुए नेत्रों से, वह सविता का भयहीन-मुँह देखता रहा।

"क्यों, अगर मैं वहाँ जाऊँगी, तो वे लोग क्या करेंगे ?" सविता ने फिर पूछा।

"आप न जाना"।

"लेकिन, आख़िर ऐसा क्यों ? बहुत करूँ, तो मधुसूदनभाई को अपने साथ लेती जाऊँ।"

जमादार ने मधुसूदन की तरफ़ देखा। वह मधुसूदन को पहचानता था। चन्द्रकान्त देसाई के पुत्र के रूप में और भंगी चमारों की सेवा करनेवाले के रूप में भी।

"वहाँ जाना उचित नहीं है। मै क्या बतलाऊँ? वे सब, ज़िन्दा-आदमी को खा जायँ, ऐसे हैं। आप, वहॉ न जाना, और कुछ नहीं।" जमादार को कुछ और भी कहना था, लेकिन वह अधिक न बोल पाया।

"मेरा तो जी चाहता है, कि मैं एक बार वहाँ हो आऊँ" सविता ने धीमे-स्वर में कहा।

"आप जाओगी, तो सारे मामले का रूप ही बदल जायगा" अक़बर ने समर्थन किया।

"लेकिन, हमारे बदले आप......" मोती, ढीले-स्वर में बोली।

"यह तो कोई बात ही नहीं है। ये अक़बरभाई किस लिये जोखिम उठाते हैं? और तुम क्यों जमादार के काम में बाधक हुई?" सविता ने कहा "क्यों मधुसूदनभाई! हमलोग जायँगे, न?"

"लेकिन, यह जमादार क्या करना चाहता है, यह तो जान लें"।

"मै? मैं कुछ नहीं चाहता, जैसा आप कहें, वैसा ही करूँ" कहकर उसने अपना सिर हिलाया। "मै क्या करूँ, यह मेरी समझ में नहीं आता। लेकिन, आप वहाँ न जाना।" पिछला वाक्य, वह काफी ज़ोर से बोला। उसकी आकृति से स्पष्ट मालूम होता था, कि उसके अन्तस्तल में ज़बरदस्त-उथलपुथल मची है। सबलोग उसी की तरफ देख रहे थे।

"लेकिन, ये न जायँ, तो क्या करें?" मोती ने कहा "अब विचार करो, कि हमलोगों के इतने पाप होते हुए भी, यह दुनिया कैसे टिकी हुई है?"

जमादार के हृदय में घमासान मच रहा था। इतनी ज़िन्दगी में, उसने अनेक खेल देखे थे, लेकिन ऐसा विचित्र-खेल उसे कभी देखने को न मिला था। बहुत-लोगों से वैर किया था और बहुतों से दोस्ती

जोड़ी थी, लेकिन ऐसी स्थिति उसने पहले कभी न देखी थी। उसने, अत्यन्त-नम्र दृष्टि से सविता की तरफ देखा। वह, क्षणभर उसी की तरफ देखता रहा। सविता, तथा शेष सभी लोगों ने जान लिया, कि वह अपनी किसी भावना को जबरदस्ती रोक रहा है। किन्तु, वह अधिक देरतक अपने-आपको न रोक सका और थोड़ी ही दूरी पर बैठी हुई सविता के चरणों में लोट गया। सविता ने, उसे तत्क्षण ही अपने हाथों से उठाकर बैठा दिया और उसके सिर पर हाथ फेरने लगी।

"कुछ नहीं, मेरे मन में तो कोई बात है ही नहीं" सविता ने कहा। जमादार, सिर उठाकर, आँसू छलछलाते हुए नेत्रों से सविता की तरफ देखने लगा। सब के नेत्र भीज गये। मोती के हृदय में शान्ति जान पड़ी। उसे विश्वास होगया, कि अब निश्चय ही भगवान् हमें इस विपत्ति से उबार लेंगे।

२३

जागा और गया.

"मैं, आपको तो जाने ही न दूँगा" जमादार ने शान्त होकर कहा–"भले ही मुझे मार डालना हो, तो वे लोग मार डालें"।

"मेरा कुछ नहीं करेंगे, तुम शान्ति रक्खो। मधुसुदनभाई को मैं अपने साथ लिये जाती हूँ, फिर क्या चाहिये?"

"नहीं, अब मुझे और पाप में नहीं पड़ना है। आपका, यदि कुछ होजाय, तो मेरे सिर पर कलंक का टीका लग जाय। आप, अपने घर जाइये। मेरा जो होना हो, सो भले ही हो।"

"लेकिन, जमादार!" अक़बर ने कहा "बहिन का वे कुछ नहीं बिगाड़ सकते। तू, फिजूल ही डरता है।"

"लेकिन, यदि वे कुछ कर बैठें, तो फिर क्या किया जा सकता है? और फिर मैं किस धरती में समाऊँगा?"

"तो तुम भी साथ ही जाओ" मोती बोली।

"नहीं–नहीं" अक़बर ने फौरन कहा।

सबलोग विचार में पड़ गये।

'मैं समझता हूँ, कि हमलोग आज का दिन यों ही रहने दें।

ज़रा अच्छी-तरह विचार करके क़दम उठाना ठीक होगा। यह, जोखिम का काम है।" मधुसूदन की यह सलाह सब को पसन्द आई।

"तो आज, तुम घर से बाहर न निकलना" सविता ने जमादार को सावधान रहने का आदेश दिया और जमादार ने भी यह बात सविता से कही। सविता तथा मधुसूदन, दोनों उठे। जमादार तथा मोती ने, दरवाज़े तक जाकर, उनका आभार मानते हुए उन्हें बिदा किया। अमीनाबाई तथा अक़बर, दोनों भी वहीं आगये थे।

सविता के चले जाने के पश्चात्, जमादार और मोती, दोनों वापस घर में आये। थोड़ी देर तक दोनों चुपचाप बैठे रहे, लेकिन चैन न पड़ी। जमादार व्याकुल होने लगा।

"मोती" उसने बात शुरू की "मेरा जी कहता है कि मैं ख़ुद ही हसन के पास जा आऊँ। भले ही उसे जो करना हो, सो कर डाले।"

मोती, बिना कुछ उत्तर दिये, जमादार की तरफ देखती रह गई।

"वह, औरत होकर इतनी हिम्मत करती है, तो मैं क्यों न करूँ? अधिक-से-अधिक मुझे मार डालेंगे, यही न? मौत कौन दो बार आवेगी?"

"लेकिन, जान-बूझकर ऐसा क्यों किया जाय?"

"तू नहीं जानती। वे सब, आकाश-पाताल एक कर दें, ऐसे लोग हैं। यदि, मैं नहीं जाऊँगा, तो सब का बुरा होगा और जाऊँगा, तो सिर्फ मेरा ही। यों, वे सब बदमाश, बहिन को न छोड़ेंगे। मैं जाऊँगा, तो बात में फर्क पड़ जायगी। और इसी में सब की भलाई भी है। ये बेचारी अमीनाबाई और अक़बर भी हैरानी से बच जायँगे। और तूने कल सुना न था? वे, तुझ से भी बदला लेने से चूकें, ऐसी बात नहीं है। क्या कहती है? मैं जाता हूँ।"

"नहीं-नहीं, वे तुम्हें वापस ज़िन्दा न आने देंगे"

"भले ही न आने दें, मैं तो जाऊँगा ही" जमादार उठा। मोती भी घबराकर उठ खड़ी हुई। उसने, जमादार को पकड़कर अक़बर को पुकारा। अमीनाबाई और अक़बर, दोनों दौड़ते हुए वहाँ आये।

"इन्हें पकड़ रक्खो, ये उन मुसलमान दोस्तों के पास जाने को उतावले हो रहे हैं"।

"फिर क्या झगड़ा उठाया है?" अक़बर ने डाटते हुए पूछा।

"कुछ नहीं, मुझे जाने दो। भले ही वे मुझे मार डाले। एक स्त्री, जिस पर मैने अपने दुर्भाव की दृष्टि डाली, वह मेरे बदले मरने जाय और मै घर में बैठा रहूँ? मुझे जाने दो।" जमादार, मोती और अक़बर का हाथ छुड़ाकर जाने को तैयार हुआ।

"अब, पागल मत बन। नीचे बैठ। सब ठीक हो जायगा।" अकबर ने उसे बैठाना चाहा।

"तुम, मुझे रोको मत। मैं कहता हूँ, कि सारी बात बिगड़ जायगी। तुम में से कोई भी उन्हें नहीं पहचानता। तुम्हारी पुलिस-बुलिस कुछ न कर पावेगी और वे बदमाश उसे उठा ले जायँगे-हाँ!"

'कुछ नहीं होगा। तू, चुपचाप बैठा रह, बस यही काफी है।" अक़बर ने उसे बैठा दिया।

"मैंने बहुत-बुरा किया!" जमादार थककर बोला। सब के हृदय में, उसके प्रति अनुकम्पा पैदा होगई।

"जो हो चुका, सो हो ही चुका। तू, कुछ दिन घर से बाहर न निकल। सब ठीक हो जायगा।" अमीनाबाई ने कहा।

"तुम नहीं जानतीं हो-अमीनाबाई! वे सब राक्षस हैं-राक्षस!"

"तू, अब बड़ा अक़्लमन्द बन रहा है, लेकिन पहले ही वहाँ क्यों गया था?" अमीनाबाई क्रोधपूर्ण-स्वर में बोलीं।

"मेरे भाग्य का दोष है, और कुछ नहीं" ।

"तू वहाँ गया था, या वे तुझे मिले थे?" अमीनाबाई ने पूछा।

'शराब की दूकान पर सबलोग इकट्ठे होगये थे। वहाँ से, वे मुझे सादिक़मियाँ के पास ले गये और मैंने हाँ कर दी।"

"किस बात की हाँ कर दी?"

"कुछ नहीं, अब मुझसे कुछ न पूछो। मेरी बुद्धि ही घूम गई थी।"

"लेकिन, वे तुझे बीच में क्यों डाल रहे थे?" अक़बर ने पूछा।

"मुझे पीस डालने को! उन पर कौन विश्वास कर सकता है? मैं होऊँ, तो मुहल्ले में आ-जा सकूँ और प्रत्येक-क्षण की बातें जान सकूँ।"

"तुझे, क्या उस दिन कुछ विचार ही न आया था?"

"बहुत आया था, लेकिन क्या करूँ? नौकरी गई, आबरू गई और मन में यह विचार भी पैदा हुआ था, कि क्या मैं इस लड़की को नीचा नहीं दिखला सकता?"

"अब, इस बात को छोड़ो" मोती बीच ही में बोली—"अमीनाबाई, एक पाप में से तो हमलोगों का उद्धार हुआ है, अब जो होना होगा, सो होगा"।

"कुछ नहीं होगा। ख़ुदा, सब का भला ही करेगा।"

अमीनाबाई और अक़बर, थोड़ा आश्वासन देकर अपने घर चले गये। मोती और जमादार दोनों ही रह गये, अतः मोती ने घर के किंवाड़े भीतर से बन्द कर लिये और जमादार के लिये एक तरफ बिछौना डालकर उसने कहा—"लो, ज़रा सो जाओ, तो मन में शान्ति आजाय। मैं भी रात की जागी हुई हूँ, इसलिये थोड़ी देर सो जाऊँ।"

जमादार सो गया। एक तरफ दूसरा बिछौना डालकर मोती भी पड़ रही। थोड़ी देर में, विचार करती-करती मोती सो गई। जमादार को नींद न आई। उसे, विचार सताने लगे। वह, ज्यों-ज्यों सोने का प्रयत्न करता गया, त्यों-त्यों निद्रा उससे दूर भागती गई। बहुत दिनों के बाद, आज उसने भगवान् को याद किया, लेकिन नींद न आई। विचारों के बवण्डर में उसका मन घिर गया।

उसका, हसन के यहाँ जाने को जी चाहने लगा। उसने सोचा—'न जाने में नामर्दी है। इस तरह जीने से तो मर जाना ही अच्छा है। एक औरत......' ये विचार, बार-बार उसके मन में आने लगे। उसकी आँखों के सामने, सविता की मूर्त्ति आ खड़ी हुई। उस दिन सड़क पर घायल-परेवा की तरह तड़फड़ानेवाली सविता, इस समय जगदम्बा-सी जान पड़ने लगी। विचार-ही-विचार में जमादार उठकर बिछौने पर बैठ गया। उससे न रहा गया। 'जाऊँ ही' उसके मन में आया 'ज़्यादा-से-ज़्यादा मुझे मार ही तो डालेंगे? कोई चिन्ता नहीं। स्त्री और बच्चे भूखों न मरेंगे। मोती में, रोटी पैदा कर लेने की ताक़त है और नहीं तो भगवान् सब का मालिक है।' उसे, अक़बर और अमीनाबाई याद आईं। सविता और मधुसूदन याद आया। 'ये लोग भूखों मरने ही न देंगे'।

जमादार ने, धीरे-से मोती की तरफ देखा। मोती, गाढ़ी-निद्रा में सो रही थी। बच्चों की तरफ देखा। दोपहर की गर्मी के कारण वे भी नींद ले रहे थे। जमादार उठा। उसने कोट पहना। जेब में सौ रुपये के नोट पड़े थे, उन्हें देखा। धीरे-धीरे दरवाज़े के पास गया और ज़रा भी आवाज़ न होने पावे, इस तरह उसने दरवाज़ा खोला तथा बाहर निकलकर फिर धीरे-से किंवाड़े बन्द कर दिये। बग़ल के घर-अमीनाबाई के मकान-की तरफ उसने दृष्टि दौड़ाई। उसका दरवाज़ा भी भीतर से बन्द था। माँ-बेटे, दोनों थककर सो गये थे। जमादार, बिलकुल धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतरा। उसके हृदय में भय

"तुझे, यह करना ही पड़ेगा। न करेगा, तो......" हसन ने कमर में खोंसा हुआ छुरा बतलाया।

"लेकिन, मैंने क्या क़ुसूर किया है ? मैं, यह बात किसी से न बतलाऊँगा।"

"अरे, नहीं कहने के बच्चे ! तेरी औरत ये सब बातें नहीं जानती ? और अक़बरिया एवं उस की माँ ?"

"लेकिन, वे लोग किसी से न कहेंगे, इसका मैं विश्वास दिलाता हूँ"।

"तेरा विश्वास !" आदम ने व्यंग्य में कहा।

हसन, कुछ विचार में पड़ गया। जमादार, उसी की तरफ़ देख रहा था। हसन ने, धीरे-से जमादार के हाथ से सौ रुपये के नोट ले लिये और बिना कुछ बोले बैठा रहा। कुछ क्षणें, यों ही बीत गईं। जमादार व्याकुल होने लगा।

"तो मैं जाऊँ ?"

"कहाँ ?"

"घर"

"या ख़ुदा के घर !"

जमादार का सारा शरीर काँप उठा। उसने, इधर-उधर देखा। आदम, हँसने लगा।

"मुझे, किसी तरह......" जमादार ने हाथ जोड़े।

"हमें, मर नहीं जाना है। अब तू जाय, तो हमारी तो शामत आ जाय, न ?"

"लेकिन, यह बात किसी के पास जाने नहीं पावेगी"।

"तो यह बात भी न जाने पावेगी" आदम हँसता हुआ बोला।

हसन ने, अपनी जेब से सिगरेट की डिबिया निकाली और एक सिगरेट जमादार को दी। जमादार ने, काँपते हुए हाथ से सिगरेट ले ली। दूसरी सिगरेट आदम ने ली। हसन, सिगरेट सुलगाता हुआ बोला—

"आख़िरी पी ले—बच्चा!"

जमादार ने, आँखें नीची करके कुछ सोचा। हसन, उसके चेहरे की ही तरफ ताक रहा था। जमादार की आँखें संकुचित हुईं, यह हसन ने देखा। जमादार का उस तरफ ध्यान न जाय, इस तरह उसने छुरा निकालकर अपने हाथ में ले लिया। जमादार के कुछ ही पीछे बैठे हुए आदम ने भी एक बड़ा-सा चाक़ू अपने हाथ में उठाया। जमादार ने सिर उठाकर ऊपर देखा, तो हसन के हाथ में छुरा चमक रहा था। उसने, सहसा पीछे नज़र डाली, तो वहाँ आदम के हाथ में बड़ा-सा चाक़ू था। वह, फिर नीचे देखने लगा। उसके मस्तिष्क में, लाखों विचार पैदा होने लगे। उसे, मृत्यु सामने ही खड़ी दिखाई दी। भीषण-मौन में, उसे मृत्यु की पदध्वनि सुनाई देने लगी।

हसन, खिलखिलाकर हँस पड़ा। आदम ने भी उसी का अनुकरण कियाँ।

"बेवकूफ़, तू इतना भी नहीं समझता था, कि तू किसके साथ सौदा कर रहा है? अगर तुझ में हिम्मत नहीं थी, तो तू इसमें पड़ा ही क्यों था?"

जमादार के लिये, कुछ भी बोलना व्यर्थ था। उसने, सिर झुकाये हुए ये सब बातें सुन लीं। हाथ में पकड़ी हुई सिगरेट नीचे गिर पड़ी। मन, बधिर बन गया। उसे जान पड़ा, कि मौत होने से पहले ही वह मर चुका है। ठीक इसी समय, किसी ने हसन के घर का दरवाजा खटखटाया। जमादार के हृदय में, आशा का संचार हुआ। कुम्हलाता हुआ चेहरा, फिर कुछ ठीक होने लगा। हसन और आदम हँस पड़े। आदम ने उठकर दरवाज़ा खोला। तीन और बदमाश भीतर आये।

जमादार, इन सब को पहचानता था। उसकी सारी आशा मिट्टी में मिल गई।

आगन्तुकों में से, एक ने हसन को एक तरफ बुलाकर उसके साथ थोड़ी देरतक बातें कीं। हसन के मुँह पर भय तथा आश्चर्य की रेखाएँ दौड़ गईं। लगभग आधे-घण्टे तक वे दोनों बातें करते रहे। जमादार, कुछ भी न समझ पाया। वह, चुपचाप बैठा रहा।

"क्यों जमादार, घूमने चलोगे, न ?"

जमादार, इस प्रश्न का मर्म समझ गया। वह, बिना कुछ बोले, हसन की तरफ ताकता रहा।

"तुझे मारना नहीं है, तू डर मत" हसन के साथ बातें करनेवाले ने जमादार से कहा।

जमादार, कुछ निश्चित न कर पाया।

"तू घबरा मत" उसने नज़दीक आकर कहा-"तुझे, यह काम न करना हो, तो मत कर। लेकिन, हमें यह तो बतलावेगा, कि आख़िर हमारा यह काम कैसे पूरा हो ?"

"मुझे, अपने घर जाने दो" जमादार ने अकुलाते हुए स्वर में कहा।

"घर तो फिर जा सकेगा। पहले तुझे सब बातें बतलानी ही होंगी।" उसने ज़रा सख़्त-आवाज़ में कहा।

जमादार को, पिछली-बात सत्य जान पड़ी। लेकिन, बातें बतलानी चाहिएँ, या नहीं, यह परेशानी पैदा हुई। क्षणभर के लिये उसके जी में आया, कि मार भले ही डालें, लेकिन बातें तो न बतलाऊँगा। किन्तु, दूसरे ही क्षण, जीवित रहने की लालसा बलवान् हो उठी। थोड़ी ही देर में, उसके दिमाग़ में कई विचार उत्पन्न हुए। फिर, मन में सोचा, कि इन्हें किसी भी तरह समझा दूँगा। इससे, मैं भी बच जाऊँगा और देवा की लड़की भी बच जायगी।

वह, बाहर चलने को तैयार होगया। दरवाजा खोलते ही जमादार ने देखा, कि वहाँ एक मोटर खड़ी है। जमादार, कुछ बोलना चाहता था, कि इसी समय आदम ने मुँह पर उँगली धरकर उसे चुप रहने का संकेत किया। सबलोग मोटर में बैठे। मोटर चल दी। शहर की गलियों तथा मुख्य-रास्तों को पार करती हुई, वह शहर के बाहर निकल गई। जमादार ने हसन से पूछा, कि हमलोग कहाँ जा रहे हैं? किन्तु, हसन ने मुँह पर उँगली धरकर मौन रहने को कहा। मोटर, शहर से आठ-दस माइल दूर चली गई।

जमादार घबराया। उसने फिर पूछा। जवाब देने के बदले, हसन ने मोटर रोकने को कहा। सबलोग नीचे उतरे। मोटर को वहीं खड़ी करके सबलोग पैदल ही एक तरफ चल दिये। इस तरफ, छोटी-छोटी टेकरियों की पंक्ति थी। जमादार, भयभीत होता हुआ सब के साथ चला। एक फर्लांग के क़रीब जाकर जमादार ने फिर पूछा—"हमलोग कहाँ जा रहे हैं?"

हसन ने जवाब दिया—"जहन्नम में"।

जमादार को, अपने नेत्रों के सन्मुख जहन्नम दीख पड़ने लगा। वह समझ गया, कि यहाँ मेरी हत्या की जाएगी।

थोड़ी दूर जाने के बाद, सबलोग बैठ गये। जमादार भी बैठा। हसन ने जमादार से पूछा—

"सेठ की लड़की तेरे यहाँ आई थी?"

जमादार को आश्चर्य हुआ। किन्तु वह फौरन ही समझ गया, कि इन लोगों को सब बातों की ख़बर लग गई है। उसने कहा—"हाँ"।

"फिर क्या हुआ?"

"कुछ नहीं"।

"सच बतला!" हसन ने डाटते हुए कहा।

"सच ही कह रहा हूँ"।

"तूने, उसे हमारे नाम-पते बतलाये हैं?"

"न उसने पूछे और न मैंने बतलाये ही"।

"उसके साथ और कौन था?"

"मधुसूदन"

"देसाई का लड़का!" एक ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ"

"उसने क्या कहा?"

"किसी ने भी कुछ नहीं कहा"।

"तो क्या झख मारने आये थे?"

जमादार चुप रहा।

"इसे अब ख़तम करो, बाक़ी बातें फिर देख ली जावेंगी"।

जमादार ने, कहनेवाले की तरफ देखा। वह, हँस रहा था। जमादार, आँखें फाड़कर सबलोगों के मुँह देखने लगा। वह देख ही रहा था, कि इसी समय उसकी पीठ में एक छुरा पड़ा। वह चिल्लाया। खड़ा होने लगा, कि दो छुरे और पड़े। एक पेट पर और दूसरा गर्दन पर। खून के फव्वारे बहने लगे। पेट में से आँतें बाहर निकल पड़ीं।

उसे जहाँ का तहाँ छोड़कर, सबलोग दौड़ते हुए मोटर में जा बैठे। मोटर, शहर की तरफ दौड़ने लगी। जमादार, थोड़ी देर तड़फड़ाया और फिर उसने मौत की गोदी में विश्राम ले लिया। इस समय, सूर्यास्त हो रहा था।

●

२४

आधार नष्ट होगया.

जमादार के जाने के लगभग दो घण्टे बाद मोती जागी। उसने देखा, तो जमादार वहाँ न था। वह, जल्दी-जल्दी उठ बैठी। खूँटी पर जमादार का कोट न था, यह देखते ही मोती की समझ में वस्तुस्थिति आगई। उसके हृदय की धड़कन बेहद बढ़ गई। सहायता के लिये किसी को पुकारना चाहती हो, इस तरह वह दौड़कर बाहर आई। अमीनाबाई के घर के दरवाज़े अभी थोड़ी ही देर पहले खुले थे। मोती को उद्विग्न देखकर, वे बाहर दौड़ आईं।

"जमादार चला गया"।

"कहाँ ?" बोलता हुआ अकबर घर में से बाहर दौड़ आया। सब के मन में अशुभ-कल्पनाएँ उत्पन्न होने लगीं। मोती, पागल-सी होकर इधर-उधर देखने लगी। क्या करे और कहाँ जाय, यह उसकी समझ में न आया।

"मैं जाती हूँ" वह बोली। लेकिन कहाँ जायगी, यह बात वह ख़ुद भी न जानती थी। अमीनाबाई ने, उसे पकड़कर अपने पार्श्व में लिया। घर में, बच्चे जाग उठे। सब ने रोना प्रारम्भ कर दिया।

अकबर, विचार में पड़ गया। उसे ख़याल आया, कि पता लगाना चाहिये। फ़िर सोचा, कि शामतक रास्ता देखने में कोई बुराई

नहीं है। उसने, मोती को आश्वासन देना प्रारम्भ किया। मोती को सान्त्वना तो न मिली, किन्तु वह निरुपाय होकर बैठ गई। उसने, एक-एक क्षण गिनना शुरू किया। उससे न रहा गया। उसने अकबर से कहा—"मैं जाती हूँ"।

"कहाँ ?"

"उस हसन के यहाँ। यह, वहीं गया होगा।"

"लेकिन, अपने हाथों......"

"हाँ-हाँ, उससे ज़्यादा मेरे लिये और कुछ नहीं है। अमीनाबाई! जरा बच्चों का ध्यान रखना।" मोती, तैयार होकर चल दी।

"ठहर, मोती!" अकबर ने कहा "मैं भी चलता हूँ"।

"नहीं, तुम घर पर ही रहो, मुझे अकेली को जाने दो"।

"नहीं-नहीं, अकेली नहीं जा सकती" अकबर जाने को तैयार हुआ। अमीनाबाई, एक भी अक्षर बोले बिना अकबर की तरफ देखती रहीं। अकबर ने, उन आँखों में न-जाने क्या-क्या पढ़ा। उसका हृदय हिल उठा, लेकिन फिर भी ज़ोर लगाकर वह चल दिया। अमीनाबाई ने, उसे मना न किया।

मोती और अकबर, दोनों सीधे हसन के घर गये। लेकिन, मकान बन्द था। बाहर से ताला लगा था। एक-दो मिनिट वहाँ खड़े रहे, लेकिन, आसपास भी ऐसा कोई न था, जो कुछ बतला सके। अपना-सा मुँह लेकर दोनों वापस लौट पड़े।

"हमलोग सविता बहिन के पास चलें" अकबर ने कहा। मोती को, यह सलाह अच्छी जान पड़ी। ये, वहाँ गये। सविता तथा मधुसूदन, दोनों बैठे थे। वे भी, इसी विषय पर बातचीत कर रहे थे। सविता, मधुसूदन से कह रही थी, कि हमलोग ही उन गुण्डों के पास

चलें। लेकिन, मधुसूदन इसे स्वीकार नहीं करता था। अन्त में, सविता ने कहा—"तो फिर मैं उन लोगों के घर जाऊँ। उनके घर में भी कोई-न-कोई 'मोती' होगी ही।"

ये बातें हो ही रही थीं, कि इसी समम मोती और अक़बर, दोनों वहाँ आगये। इनकी चाल और मुखमुद्रा देखकर, सविता तथा मधुसूदन की समझ में यह आगया, कि कोई अनिष्ट-घटना होगई है। मोती ने, दरवाज़े मे खड़े-ही-खड़े जमादार की बात कही। सविता के चेहरे पर चिन्ता छा गई। मधुसूदन भी विचार में पड़ गया।

"भीतर आकर बैठो" सविता ने मोती तथा अक़बर से कहा। दोनों भीतर आकर बैठे।

"आज राततक रास्ता देखा जाय" मधुसूदन ने कहा।

"मैने भी मोती से यही बात कही है" अक़बर बोला।

"मुझे शान्ति नहीं पड़ती। मेरे मन में न-जाने क्या-क्या भाव उठते हैं।" मोती ने घबराई हुई आवाज़ में कहा। सविता, तड़फड़ाती हुई चिड़िया जैसी उद्विग्न मोती की तरफ देख रही थी।

बातचीत के अन्त में यह तय पाया, कि राततक रास्ता देखा जाय और यदि तबतक भी जमादार वापस न लौटे, तो पुलिस को इत्तिला दी जाय। अक़बर और मोती, दोनों उठे। सविता को विचार आया, कि-'इस समय मोती के साथ रहना चाहिये'। उसने, अपना विचार प्रकट किया।

"अच्छी बात है, मै इस सम्बन्ध में बापूजी की सलाह ले आऊँ" मधुसूदन ने कहा। यह बात भी सब को अच्छी लगी। सब, साथ-ही-साथ बाहर निकले। मुहल्ले के कुछ लोगों का इस तरफ ध्यान आकर्षित हुआ। दो-तीन आदमियों ने सविता से पूछा भी, किन्तु सविता ने 'कुछ नहीं है'-कहकर उन्हें चुप कर दिया।

अक़बर को सकुशल लौटा देखकर, अमीनाबाई के चित्त को शान्ति हुई। सबलोग, जमादार की राह देखते हुए मोती के घर में बैठे। सन्ध्या होने आई। किन्तु, जमादार न लौटा। मोती की शंका, प्रबल-रूप धारण करने लगी। सविता, उसे आश्वासन देना चाहती थी, किन्तु मोती के मुँह से ऐसे-ऐसे शब्द निकल पड़ते थे, जिन्हें सुनकर सविता काँप उठे।

सविता, मधुसूदन की प्रतीक्षा कर रही थी, कि इसी समय वह आगया। किन्तु, उसके साथ ही, उसके पिता भी थे, यह देखकर सब को आश्चर्य हुआ। कुछ आशा भी बँधी। देसाई, भीतर आकर ज़मीन पर बैठ गये। मोती ने गद्दा दिया, लेकिन उन्होंने उसे दूर हटा दिया।

"मुझे, पहले इसकी कोई सूचना तक न दी?" उन्होंने नीचे बैठकर सब से पहले कहा। सब ने अनुभव किया, कि यह भूल हुई। फिर, सारा हाल जानने की इच्छा से उन्होंने कुछ प्रश्न पूछे और ढाढ़स देकर उठ गये। जाते-जाते, वे इतना और कह गये—"तुम्हें किसी को भी अब यहाँ से जाने की ज़रूरत नहीं है। मैं खुद ही सब जाँच करवा लूँगा।" मधुसूदन को उन्होंने अपने साथ ले लिया।

अँधेरा होने लगा, किन्तु जमादार का कोई पता न चला। देसाई की तरफ से दो बार आदमी आकर समाचार पूछ गया। मोती के हृदय की धड़कन बढ़ने लगी। उसके नेत्रों के सन्मुख भयंकर-दृश्य उपस्थित होने लगे। उसने बहुत प्रयत्न किये, किन्तु फिर भी वह अपने मुँह से चीख़ निकाले बिना न रह सकी। सविता, उसके पास बैठी-बैठी उसे समझाने लगी। अमीनाबाई भी वहीं बैठी थीं। एक के बाद एक घड़ी बीतने लगी।

रात के दस बज गये। नीचे, किसी मोटर की आवाज़ सुन पड़ी। देसाई, मधुसूदन और एक पुलिस ऑफीसर मोटर से उतरे। सविता

तथा मोती, दोनों ही मोटर की आवाज सुनकर बाहर आगई। किन्तु, पुलिस ऑफीसर को देखते ही, उन लोगों की तिनके जैसी बची–खुची आशा भी नष्ट होगई। देसाई ने, पुलिस ऑफीसर से सब समाचार कहे। उसने, सब बातें लिख लीं और बिदा होगया।

देसाई, बहुत रात बीते अपने घर गये। सविता ने, देवाभाई को सन्देशा भेज दिया और मधुसूदन के साथ वह मोती के यहाँ रह गई। रात बीतने लगी। रात्रि के प्रथम भाग का प्रकाश जाने और अन्धकार फैलने लगा। मोती के हृदय में भी ऐसी ही स्थिति आरंम्भ हुई।

सबेरा हुआ। मुहल्ले तथा शहर में यह बात फैलने लगी। दस बजे चन्द्रकान्त देसाई को पुलिस ऑफिसर का टेलीफोन मिला। उन्हें, मुर्दा मिल गया था। देसाई, फौरन ही मोटर लेकर पुलिस ऑफीसर के यहाँ गये। यहाँ से, वे इन्स्पेक्टर को अपने साथ लेकर हॉस्पिटल गये और मुर्दा देखा। सब समाचार भी सुने। दुःखित–हृदय से वे वापस लौटे।

मोती की ऐसी दशा हो रही थी, मानों वह जीवन की अन्तिम–घड़ियाँ व्यतीत कर रही हो। जब देसाई वहाँ पहुँचे, तब उसने इनके चेहरे को देखकर आशा प्राप्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु वहाँ तो चेहरा ही हताश था, तब क्या हो? देसाई ने, मधुसूदन को एक तरफ ले जाकर सब बातें बतलाईं। मधुसूदन, ये समाचार सुनकर स्तब्ध हो-गया। दूर से इन लोगों की तरफ देखनेवाली मोती, सारा मामला समझ गई। उसने, चिल्ला–चिल्लाकर रोना शुरू कर दिया। सविता और अमीनाबाई, दोनों मिलकर उसे आश्वासन देने लगीं, किन्तु व्यर्थ था। देसाई भी थोड़ी देरतक वहीं खड़े रहे। किन्तु, इस दुःख का अन्त लाने के लिये, किसी के भी पास कोई साधन न था। मधुसूदन को अनेक सूचनाएँ देकर, वे धीरे–धीरे चलते हुए वापस लौट पड़े।

मोती ने, पछाड़े खाना और छाती पीटना प्रारम्भ किया। बच्चे, चीत्कार करके रोने लगे। सविता, मधुसूदन, अकबर और अमीनाबाई सब अपने-अपने आँसू पोंछते हुए, बच्चों और मोती को चुप रहने के लिये समझाने लगे।

बाहर, दोपहर की दाहक-गर्मी, संसार को भूने डाल रही थी और सारी दुनिया का कारोबार प्रतिदिन की ही भाँति चल रहा था।

२५

अन्तस्तल के प्रवाह.

रामदेव की कथा पूरी होगई और मानों कथा पूरी करने के लिये ही धारण किया हो, इस तरह उसका धैर्य भी कथा के साथ ही समाप्त होगया। उसके नेत्रों से, एक के बाद एक आँसू टपकने लगे। श्रीकान्त, उसके हृदयप्रवाह में बाधा डाले बिना, गम्भीर-आकृति लिये यह सब देख रहा था।

लगभग आधे घण्टे तक रामदेव ने आँसू बहाये। उसके चेहरे पर की कठोरता गायब हो चुकी थी, अतः आँसुओं से भीजा हुआ उसका मुँह दयनीय जान पड़ने लगा। सामने बैठा हुआ श्रीकान्त, नज़दीक आकर रामदेव से सटकर बैठ गया और उसकी पीठ पर हाथ फेरता हुआ बोला—

"हमलोग बाहर चलें?"

रामदेव ने, बिना कुछ उत्तर दिये, अपना सिर ऊपर उठाकर श्रीकान्त की तरफ देखा। श्रीकान्त, उसकी स्थिति समझ गया और उसे हाथ पकड़कर खड़ा किया।

"आप, मुँह धो लीजिये, हमलोग घूमने चलें"।

रामदेव ने मुँह धो लिया और दोनों मित्र धीरे-धीरे चलते हुए प्रेमाश्रम से बाहर घूमने निकले। सन्ध्या का समय था, अतः प्रकृति

मानों आराम-सा ले रही थी। पक्षी, इधर-से-उधर दौड़ रहे थे और वायु के झोंकों से वृक्षों के पत्ते हिल रहे थे। किन्तु, इससे प्रकृति की शान्ति में किसी प्रकार की बाधा न पड़ती थी। रामदेव तो अपने चित्त का भार हलका कर चुका था, अतः प्रकृति का संसर्ग होते ही उसके हृदय में शान्ति उत्पन्न होने लगी। किन्तु, श्रीकान्त की कुछ और ही स्थिति थी। रामदेव की कथा सुनकर, उसका सारा हृदय खलबला उठा था। रामदेव की वैरवृत्ति का तो श्रीकान्त पर कोई असर ही न हुआ था। किन्तु, रामदेव ने पृथ्वी पर पैर धरा, तब से लगाकर आजतक उस पर जो-जुल्म हुए थे, उनके वर्णन ने श्रीकान्त की मनोसृष्टि में तूफान पैदा कर दिया। रामदेव का रोष, उसे उचित ही प्रतीत हुआ। किन्तु, इस रोष के पीछे छिपकर झाँकनेवाले और अन्त में बाहर निकल पड़नेवाले आँसुओं ने तो श्रीकान्त का हृदय आर्द्र कर दिया। रामदेव की वाणी की कटुता का जो स्पर्श उसे हुआ था, वह फौरन ही नष्ट होगया और केवल प्रेमपूर्ण-सहानुभूति का प्रवाह उसके प्रति बहने लगा।

'सविता !' यह विचार तो श्रीकान्त को प्रत्येक विचार के आरपार आता ही रहता था। किन्तु, रामदेव की कथा ने, सविता के प्रति श्रीकान्त का जो प्रेम था, उसे एक नया ही स्वरूप दे दिया। श्रीकान्त को यह विश्वास होने लगा, कि सविता अपने मुहल्ले में जो कुछ कर रही है, वह जीवन का महान् कार्य है। संसार ने, जिन्हें दुत्कार दिया हो, ऐसे लोगों को अपनी गोद में लेने में, भले ही दुःख सहन करना पड़े, किन्तु उस दुःख में भी एक वर्णनातीत-मीठापन होता है, यह बात रामदेव की पीठ पर हाथ फेरते समय ही श्रीकान्त को जान पड़ने लगी थी। एक बात-केवल एक ही बात-इसमें से उसकी समझ में न आई। विचार तो बहुत-से उठते थे, किन्तु बात समझ में न आ सकी। 'ये धर्म क्या चीज़ है' ? हिन्दूधर्म में, इतनी भयंकरता क्यों है ?....और क्या इन सब दीन-दुःखियों के लिये केवल क्रिश्चियन हो

जाना ही एकमात्र मार्ग है?' इस शंका के सम्बन्ध में, अनेक प्रश्न हृदय में उत्पन्न होते थे और बिना किसी प्रकार का उत्तर पाये, मन ही में समाप्त हो जाते थे। प्रत्येक प्रश्न, इस एक निश्चय को तो बलवान् बना ही जाता था, कि—'ये लोग दुःखी हैं और इनके दुःख का अन्त किसी तरह होना ही चाहिये'।

रामदेव और श्रीकान्त, दोनों बिना कुछ बोले, चले जा रहे थे। रामदेव ने दीक्षा ले ली थी, किन्तु फिर भी मानों उसका हृदय पूरी तरह रँगा न हो, उसके हृदय में बारम्बार शंकाएँ उत्पन्न होती रहती थीं। किन्तु, विलियम साहब की कृपा से प्राप्त हुए ज्ञान के बल से, वह सभी निर्बलताओं को दबाता हुआ, भगवान् ईसामसीह का स्मरण कर रहा था और थोड़ी देर पहले अनुभव की हुई व्यथा को भूलने के लिये प्रयत्नशील था। बहुत-दूर निकल जाने के बाद, श्रीकान्त ने रामदेव से पूछा।—

"अब, क्या आप अपने घर जायँगे?"

रामदेव चौक पड़ा। "घर! नहीं—नहीं"।

"क्यों?" श्रीकान्त ने धैर्यपूर्वक पूछा।

"जाऊँगा तो जरूर, लेकिन अभी नहीं"।

"आपकी माँ को दुःख होगा, यही कारण है, न?"

"हाँ, और तो हो ही क्या सकता है!"

"आपने दीक्षा ले ली, यह बात उसे मालूम है?"

"मै समझता हूँ, कि वह नहीं जानती"।

"यह समाचार सुनकर तो उसके दिल पर सांघातिक—चोट जरूर लगेगी। है, न?"

"जरूर। शायद उसका जीवित रहना भी कठिन हो जाय।"

"आप, ख़ूब कठोर बन गये हो !" श्रीकान्त ने भावनापूर्ण-वाणी में कहा।

यह सुनते ही, रामदेव चलता-चलता रुक गया। क्षणभर में ही उसके विचारों में जबरदस्त-उथलपुथल मच गई और मानों उसके कानों में विलियम साहब की गर्जना सुनाई दी। उसके नेत्रों में, रोष की रेखाएँ दीख पड़ने लगीं। वह बोला—

"इतना सुन लेने के बाद भी, आपको ऐसा ही जान पड़ता है ?"

"लेकिन, यह सब तो आपने अपने सुख के लिये ही किया है, न ?"

"केवल अपने सुख के लिये ही क्यों ? इस मार्ग पर मैं अपनी सारी जाति को लाने का प्रयत्न करूँगा और हिन्दूधर्म की जड़ें खोदने में, अपनी सारी शक्तियाँ खर्च करूँगा।"

"आपकी जाति, अब आपकी बात सुनना भी पसन्द करेगी ?" श्रीकान्त ने शंका प्रकट की।

"क्यों नहीं सुनेगी ? मेरी बात सत्य है और सर्वथा-स्पष्ट है।"

"फिर भी आपकी सच्ची-बात, आपकी माँ को अन्ततक पसन्द न आई-वह न समझ सकी। उसने, आपकी अपेक्षा भी, अपने धर्म को अधिक प्यारा माना !"

"मेरी माँ...हाँ, मेरी माँ" आवाज़ कुछ भर्रा-सी उठी "वह तो अज्ञानी है"।

"लेकिन, क्या सब लोग ऐसे ही नहीं होंगे ?"

"चाहे जो हो" रामदेव लापरवाही बतलाता हो, इस तरह बोला—"मेरा रास्ता सच्चा है। मुझे तो अपने-आप पर हुए ज़ुल्मों का बदला लेना है।"

"आपको, क्या ऐसा नहीं जान पड़ता, कि आपने ऐसा करने में जल्दी कर डाली है ?"

"ज़रा भी नहीं"।

"यह रास्ता कहाँ जाता है ?" थोड़ी देर मौन रहकर चलने के बाद, एक तरफ घूमनेवाली सड़क की ओर संकेत करके श्रीकान्त ने पूछा।

"मेरे गाँव की तरफ" रामदेव ने जवाब दिया।

"उसे छोड़े, छः महीने होगये हैं, न ?"

"हाँ, अपनी माँ को समझाने का अन्तिम प्रयत्न मैंने तभी किया था"।

बातें करते-करते, दोनों, शहर से दूर एक पुल के पास पहुँच गये। धीरे-धीरे, अँधेरा होने लगा था। श्रीकान्त ने, वहीं बैठने की इच्छा प्रकट की, अतः दोनों बैठे।

"मिस्टर सेमुअल !" श्रीकान्त ने बात शुरू की—"मैं, आपसे अपने मन की एक शंका पूछूँ ?"

"ज़रूर पूछो"।

"मैं, आपको उत्तेजित करने के लिये, या आपकी टीका करने के इरादे से वह प्रश्न नहीं पूछना चाहता, यह बात पहले ही बतला दूँ। मुझे जान पड़ता है, कि आपकी जाति के मनुष्यों के उद्धार के लिये या हिन्दुओं से बदला लेने के लिये ही यदि आप क्रिश्चियन हुए हों, तो शायद आपका यह उद्देश्य पूर्ण न हो सकेगा।"

"क्यों ?"

"आपकी बात सुनकर, मैं इस निर्णय पर आया हूँ, कि आप क्रिश्चियन हो चुके हैं, इसलिये आपकी बात तो कोई सुनेगा ही नहीं। ऐसी दशा में, केवल बदला लेने से आपको क्या आनन्द आवेगा ?"

"आप भूल करते हैं" जरा शान्त होकर रामदेव बोला—"मैं, जगह-जगह इस धर्म का प्रचार करूँगा और अपने-आपका उदाहरण देकर लोगों को समझाऊँगा। यही नहीं, इस धर्म में समानता तथा प्रेम के जो तत्त्व हैं, वे हिन्दूधर्म में नही हैं, यह बात भी लोगों को बतलाऊँगा।"

"ऐसा नहीं होसकता। हिन्दूधर्म में भी प्रेम और समानता के तत्त्व तो होंगे ही।"

"तो फिर हमलोगों पर इतने अत्याचार क्यों होते हैं?"

"हाँ" श्रीकान्त जरा सहमा "यह प्रश्न तो मुझे भी हैरान करता है, लेकिन क्या आपने..." कुछ रुककर फिर बोला-"हिन्दूधर्म का भी कुछ अध्ययन किया है?"

"आप, अध्ययन की बातें कह रहे हैं? लेकिन, मैंने ख़ुद जो अनुभव किया है!"

"नहीं-नहीं, मै इस अर्थ में नहीं पूछता। जिस तरह पादरीबाबा से या विलियम साहब से आपने क्रिश्चियन मज़हब के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया है, उसी तरह क्या किसी हिन्दू से भी कुछ जाना है? अथवा उस धर्म के शास्त्र पढ़े हैं?"

"शास्त्र तो पढ़े हैं। यहाँ की लायब्रेरी में, हिन्दुओं के पाखण्ड-पुराण हैं।"

"एक बात और पूछता हूँ। आप, हिन्दूधर्म से बदला कैसे लेंगे?"

"अपने भाइयों को और दूसरे जितने भी हो सकेंगे, उतने हिन्दुओं को उसमें से छुड़ाकर तथा जगह-जगह हिन्दूधर्म की निन्दा करके"।

"इसके अतिरिक्त और कुछ?"

"और कुछ ? मेरे मन में आता है, कि जैसी मेरी दशा हुई थी, वैसी ही दशा, यदि उनमें से कोई मेरे हाथ आ जाय, तो उसकी भी करूँ।"

"यानी क्या ? मैं, आपकी बात ठीक-ठीक नहीं समझ पाया।"

"कुछ नहीं, यह तो मेरे जी में आता है, किन्तु मै यह भी जानता हूँ, कि ऐसा होना सम्भव नहीं है। हाँ, इतना तो मैंने अपने मन में जरूर ही निश्चय कर रक्खा है, कि अब यदि कोई हिन्दू, मुझ पर तो ठीक, किन्तु किसी भंगी-चमार पर भी हाथ उठाता हो तो मै उसे परेशान किये बिना न छोड़ूँ।"

"आपके जी में, क्या यह विचार कभी नहीं आता, कि यदि मैंने ऐसा न किया होता, तो अच्छा था ? अथवा, दीक्षा लेते समय, क्या आपको किंचित् भी संकोच नहीं प्रतीत हुआ ?" श्रीकान्त ने, फिर रामदेव की भावनाओं को ठेस पहुँचाई। रामदेव, हलके-हलके प्रकाश में श्रीकान्त की तरफ देखने लगा। श्रीकान्त ने, जैसे शब्द कहे थे, वैसी ही भावना की रेखाएँ भी उसकी आकृति पर अंकित हो रही थीं।

"आप, ये सब बातें क्यों पूछ रहे हैं ?"

"मुझे, यह मामला ऐसा विचित्र जान पड़ता है, कि मेरी समझ में कुछ नहीं आता—इसी लिये। आप, अत्यन्त-उग्र होकर बोलते हैं, किन्तु आपका हृदय बार-बार कोमल हो जाता है।"

रामदेव की आँखे ढीली पड़ने लगीं। वह, श्रीकान्त की तरफ देखता ही रहा। वे आँखें, मानों और सुनने की इच्छा रखती हों, इस तरह श्रीकान्त ने उनकी तरफ देखते ही फिर कहना शुरू किया—

"आप, जब मुजसे मिले, तब कितने उग्र थे ? लेकिन, जब छूटे, तब आपके नेत्रों मे कैसा पानी भर आया था ? और मेरे घर, मेरे माता-पिता को देखकर, आपके हृदय में कैसे सहानुभूति के भाव

उत्पन्न होगये थे ? देखो न, आपके स्वयं ही मुझे अपने साथ आने से मना कर दिया था ! आप, थोड़ी-बहुत तो यह बात जान ही गये थे, कि मेरे पिता रूढ़िवादी-हिन्दू हैं, फिर भी आपके हृदय में रोष क्यों नहीं उत्पन्न हुआ ?"

"बोलो-बोलो !" श्रीकान्त ने बोलना बन्द कर दिया, तब रामदेव ने कहा।

"मेरे मन में, इन दोनों स्थितियों का किसी तरह मेल ही नहीं बैठता। आज, आपकी माँ की बात आते ही, आप कैसे ढीले पड़ गये !"

श्रीकान्त ने बोलना बन्द कर दिया, अतः वहाँ शान्ति छा गई। रामदेव ने, ऊपर आकाश की तरफ और दूर-दूर दिशाओं की तरफ नज़र फेंककर, शान्त होने का प्रयत्न किया।

"इसी लिये मै आपसे पूछना चाहता हूँ, कि आपके हृदय की वास्तव में क्या स्थिति है ?"

"ऐसी बात न पूछो" रामदेव बड़ी कठिनाई से बोल पाया— "चलो, हमलोग वापस लौट चलें" वह, उठ खड़ा हुआ।

"नहीं-नहीं, अब तो आपको मुझसे बतलाना ही होगा" श्रीकान्त ने हाथ खींचकर रामदेव को बैठा लिया।

"क्या बतलाऊँ ? मुझे अन्तिम-समय तक कोई बात सूझ ही नही पड़ी। मे, आपसे न मिला होता, तभी अच्छा था। मैंने, आपसे बात न की होती और आपके घर न आया होता, तथा......तथा आपके साथ परिचय न बढ़ाया होता, तो इतनी अधिक परेशानी में मुझे हर्गिज़ न पड़ना पड़ता।"

"यानी ?" श्रीकान्त आश्चर्य में भरकर बोला।

"मैंने अत्यन्त-प्रयत्न करके, अपने मन को दीक्षा के लिये तैयार किया था। इस तैयारी का एक कारण, मुझ पर हुए जुल्मों का, निरन्तर रहनेवाला

भान था। दूसरा कारण, मेरे शिक्षागुरु तथा पादरीबाबा का प्रेम था। और अपनी वर्तमान स्थिति में जीवनयापन दुःखद जान पड़ने की परेशानी, तीसरा कारण थी। मैं, अपनी माँ के पास जाता, या मुझे उसका स्मरण हो आता, तो मैं रो पड़ता था। किन्तु, फिर ज्योंही पादरीबाबा या विलियम साहब के वचन सुनता था, त्योंही खिंच जाता था।"

"तब तो आपने बड़ी-बड़ी वेदनाएँ सहन की हैं!"

"इसका साक्षी कोई नहीं है"।

"लेकिन, आपको क्रिश्चियनधर्म के प्रति आकर्षण तो है, न?"

"अवश्य है! यदि आकर्षण न होता, तो मैं इस रास्ते जाता ही क्यों? इतना ही नहीं, बल्कि इसमें मेरे तथा मेरी जाति के मनुष्यों दुःखों के निवारण का उपाय है, ऐसा भी मैं मानता था।"

"मानता था के क्या मानी है? क्या अब नहीं मानते?"

"मानता ही हूँ, लेकिन......"

"तो फिर वेदनाएँ भोगने का क्या कारण है?"

"यही बात तो ठीक-ठीक समझ में नहीं आती। किसी-किसी क्षण, हाँ, किसी-किसी क्षण ही, जी में यह बात आ जाती है, कि यदि विलियम साहब ने सतत-आग्रह न किया होता तो मैं दीक्षा न लेता।"

"क्यों? जब आपको विश्वास होगया, कि क्रिश्चियनधर्म सच्चा है, जब आपकी समझ में यह बात आगई, कि ईसमें आपके ताप का अन्त है, तो फिर इसे स्वीकार करने में क्या आपत्ति थी?" श्रीकान्त, अपनी परेशानी दूर करने के लिये पूछने लगा।

"कभी-कभी मेरे जी में आता था, कि मैं इस सम्बन्ध में अधिक नहीं समझता और कभी-कभी मेरी मां का विचार मुझे अपने ध्येय से डिगा देता था। मेरे जी में, कभी-कभी यह बात भी पैदा होजाती

थी, कि मेरी चाहे जो दशा हो, लेकिन मुझे ऐसा काम न करना चाहिये, जिसमें उन्हें दुःखी होना पड़े।"

"आप, ये सब बातें, विलियम साहब से भी कहते तो रहे ही होंगे ?"

"हाँ, कभी-कभी कहता था"।

"तब, वे क्या कहते ?"

"क्रिश्चियनधर्म की महत्ता, मेरी माँ का अज्ञान और मोह, हिन्दू-धर्म की भयंकरता तथा मेरे भविष्य की सुन्दर-योजनाएँ बतलाते थे"।

"यह सब, आपको सत्य जान पड़ता था ?"

"जान ही क्यों पड़ता था ? यह तो सत्य था ही। आज भी मुझे इस बात पर विश्वास है।"

"एक और बात पूछूँ ?"

"पूछो"

"आपको, मेरे प्रति सहानुभूति क्यों हो आती है ?"

"समझ में नहीं आता" घबरा रहा हो, इस तरह रामदेव बोला।

"मुझसे मिलने के बाद और मेरे माता-पिता को देखने के पश्चात्, क्या आपकी स्थिति में कोई अन्तर पड़ा था ?"

"हाँ, वहाँ से वापस लौटते समय, फिर मेरा मन बदलने लगा था। मेरे हृदय की गहराई में एक प्रश्न पैदा होता था, कि मेरे प्रति निर्दय-से जान पड़नेवाले ये लोग, अन्तर में इतने ढीले क्यों हैं ? और आपके सम्बन्ध में तो बहुत-से विचार आया करते थे।" रामदेव, जरा रुक गया। श्रीकान्त, उसे उत्साहित करता हुआ बोला—"क्या विचार आया करते थे ?" रामदेव ने फिर कहा—"सच बतलाऊँ ? आप जैसा ममत्व से बातें करनेवाला, मुझे और कोई मिला ही न था ! हाँ, विलियम साहब भी नहीं !" बोलते समय, रामदेव कृतज्ञतापूर्ण-

दृष्टि से श्रीकान्त की तरफ देखने लगा। "और इसका, मेरे हृदय पर बहुत-गहरा प्रभाव पड़ा। मेरे जी में आया, कि मैं आज तो दीक्षा न लूँ।" श्रीकान्त ने पूछा—"फिर?" लेकिन, रामदेव ने मानों यह बात सुनी ही न हो, इस तरह अपनी बात कहता गया। "और यह विचार आते ही, मेरी आँखों के सामने, हड्डियों के पिंजर जैसी तथा आँसू गिराती हुई मेरी माँ आ खड़ी हुई। मेरा मन बदलने लगा। मेरे मन में आया, कि दीक्षा का समय यदि आगे बढ़ जाय, तो अच्छा हो।' "फिर?" श्रीकान्त ने उत्साह-सा दिया। "फिर? फिर•कुछ नहीं। मैंने फौरन ही समझ लिया, कि इस भावना का जन्म, मेरी निर्बलता में से हुआ है।"

"तुम्हें, दीक्षा लेते समय, क्या जरा भी संकोच नहीं हुआ?"

"संकोच? संकोच ही नहीं, मेरी छाती की धड़कन भी बढ़ गई थी। किन्तु, पादरीबाबा के प्रेमपूर्ण-स्पर्श ने मुझे शान्ति प्रदान की और मेरा जीवनधर्म समझाया था।"

श्रीकान्त को, इससे सन्तोष न हुआ। किन्तु, अधिक क्या बातचीत की जाय, यह उसकी समझ में न आया, अतः वह फिर अपने विचारों में ही डूब गया। रामदेव, बात को इस तरह अचानक खतम होते देखकर कुछ आश्चर्य में पड़ गया। किन्तु, चिन्ता के भार से झुके हुए श्रीकान्त के मुँह की तरफ देखते ही, उसके हृदय में सहानुभूति तथा प्रेम उत्पन्न होगया, अतः वह स्वयं भी शान्त ही रहा।

रात को आठ बजे के लगभग, दोनों वहाँ से वापस लौटे।

२६

धर्म की समस्या.

प्रेमाश्रम की तरफ वापस लौटते समय, रामदेव ने दो-एक बार श्रीकान्त से बात करने का प्रयत्न किया। किन्तु, अपनी व्यथा में पड़े हुए श्रीकान्त ने, उस तरफ अधिक ध्यान नहीं दिया। रामदेव समझकर मौन हो रहा और अपने जीवन के सम्बन्ध में ही विचार करने लगा। श्रीकान्त भी, मानों रामदेव का प्रश्न तथा उसकी सारी कथा भूल गया हो, इस तरह अपने ही विचारों में डूब गया। प्रेमनगर की सड़क पर धीरे-धीरे जाते हुए, उसके नेत्रों के सामने, जहाँ वह स्वतः था, सविता थी, माता-पिता थे और सुख-समृद्धि का ढेर था, वह दृश्य आ खड़ा हुआ। उसे विचार आया, कि सविता के पास पहुँचने में, मुझे बहुत देर होगई। सविता, अब क्या कर रही होगी, इस बात की विचित्र-विचित्र कल्पनाएँ मन में उठने लगी। इन सभी कल्पनाओं के बीच, एक धागा तो मौजूद ही था। वह यह, कि सविता अपने मुहल्ले के उन अभागों की सेवा में ही लगी होगी। वह घर छोड़ आया, यह याद आते ही, कुछ खेद हुआ, किन्तु तत्क्षण ही यह विचार आया, कि-'मैंने अच्छा-साहस किया। यही सच्चा-मार्ग था।' माता ने, उसका सिर अपनी छाती से लगा लिया और आँखों से आशीर्वाद दिया, यह याद आते ही श्रीकान्त का मन प्रफुल्लित हो उठा। दूसरे ही क्षण,

पिताजी की दुःखमय–स्थिति याद आ जाने से, उसे कुछ ग्लानि–सी हुई। 'वह कहाँ आ पड़ा ?' यह विचार आते ही, फिर रामदेव स्मृतिपट पर आगया। वह, साथ ही चल रहा था, किन्तु फिर भी उसके संस्मरण तथा मुखभाव ताजे होने लगे। थोड़ी ही देर पहले, रामदेव ने अपने प्रति जो भाव अनुभव किये और भावनाप्रवाह में मग्न होकर उसने जिस तरह अपना हृदय खोलकर सामने धर दिया, वह श्रीकान्त को अत्यन्त–मीठा जान पड़ा। वह, गद्गद् होगया।

घर छोड़ दिया था और जिसके अन्त का कुछ पता न था, ऐसे प्रवास पर श्रीकान्त निकल चुका था। फिर भी, उसके हृदय में इन कोमल–कोमल भावनाओं ने माधुर्य उत्पन्न कर दिया। उसके चेहरे पर गम्भीरता आगई, किन्तु शोक की गहरी–छाया जैसी नहीं। श्रीकान्त को, गाम्भीर्य एवं मौन में, अपने प्रियजनों का सहवास जान पड़ने लगा और भावी–जीवन की शान्ति के दर्शन होने लगे। वह, ठेठ प्रेमाश्रम में पहुँचने तक एक शब्द भी न बोला और पुल छोड़ने के कुछ मिनिट बाद से उसने कोई विचार भी नहीं किया। फिर भी, उसके हृदय की गहराई में समाधान जान पड़ने लगा। उसे प्रतीति होने लगी, कि मुझे जहाँ जाना चाहिये, वहीं जा रहा हूँ।

प्रेमाश्रम में आकर, दोनों ने साथ–साथ भोजन किया। श्रीकान्त और रामदेव, दोनों के लिये साथ–साथ भोजन करने का प्रसंग एक नई–बात थी। किन्तु, भोजन समाप्त होने तक, दोनों में से कोई भी, इस विषय में कुछ न बोला। उठते समय रामदेव ने कहा—"मुझे आज खूब आनन्द आया"। श्रीकान्त ने मुस्कराकर उत्तर दिया—"और मुझे भी"।

ये दोनों, भोजनोपरान्त इधर–उधर की बातें कर रहे थे, कि इसी समय रामदेव की कोठरी की तरफ कोई आता जान पड़ा। रामदेव चौंका। आनेवाले को उसने दूर ही से पहचान लिया। "श्रीकान्तभाई!

विलियम साहब आते हैं" यह कहकर वह दरवाज़े की तरफ बढ़ा। श्रीकान्त, कौतूहलपूर्वक, सामने से आते हुए विलियम साहब को देखने लगा।

रामदेव की कथा पर से श्रीकान्त, विलियम साहब के सम्बन्ध में कुछ जानता था। उसने, अपने हृदय में, विलियम साहब की एक कल्पनामूर्ति तैयार की थी। किन्तु, विलियम साहब को प्रत्यक्ष देखते ही, वह कल्पनामूर्ति नष्ट होगई। कुछ समझ में न आया, किन्तु श्रीकान्त को इस समय कुछ खेद-सा प्रतीत होने लगा। उसने, जैसी कल्पना की थी, वैसी यह आकृति न थी। उसने जैसी सोची थीं, वैसी ये आँखें न थीं। उसने ख़याल किया था, वैसी यह वाणी न थी। श्रीकान्त को, उनकी आँखें अच्छी न लगीं, चेहरा कठोर मालूम हुआ और बातचीत में सरलता का कहीं लेश भी नहीं दीख पड़ा। श्रीकान्त के चेहरे पर होनेवाले परिवर्तनों को रामदेव ग़ौर से देख रहा था और श्रीकान्त को यह बात मालूम भी थी। फिर भी, उसने अपनी मनोदशा छिपाने का अधिक प्रयत्न नहीं किया।

"क्रिश्चियनधर्म के सम्बन्ध में तो आप कुछ जानते ही होंगे" इधर-उधर की बातें करने के बाद विलियम साहब ने पूछा।

"अधिक नहीं, जो थोड़ा-बहुत सुना है, वही"।

"क्रिश्चियनधर्म तथा ईसामसीह के सम्बन्ध में, आपकी क्या मान्यता है?"

"अपना मत प्रकट कर सकूँ, इतना तो मुझे ज्ञान ही नहीं है। हाँ, भगवान् ईसा के सम्बन्ध में, मैंने जो बातें सुनी हैं, उनके आधार पर जान पड़ता है, कि वे महान थे और उनका सारा जीवन मानव-जाति के कल्याण के कार्यों में ही व्यतीत हुआ था।" श्रीकान्त, इस बातचीत को संक्षेप में ख़तम कर देना चाहता हो, इस तरह बोला।

"आपको, ऐसा नहीं जान पड़ता, कि केवल उन्हीं का मार्ग सत्य था?"

"मैंने बतलाया न, कि तुलना करने योग्य मेरे पास ज्ञान ही नहीं है"।

"आपको, ईसामसीह के जीवन में, सब से अधिक किस प्रसंग ने आकर्षित किया है?"

"दो प्रसंगों ने" श्रीकान्त ने तत्क्षण उत्तर दिया—"एक तो वेश्या को अभयदान देनेवाला प्रसंग और दूसरा उन्हें मारनेवालों के लिये भगवान् से क्षमा की प्रार्थना करने का प्रसंग।"

"चमत्कार की बातें आप जानते हैं?"

"कुछ सुनी हैं, किन्तु मुझे उनकी तरफ आकर्षण नहीं है"।

"क्यों? उनके जीवन की वह तो एक विशेषता थी!"

"होगी"।

"यों नहीं" विलियम ज़रा हँसकर बोले—"आकर्षण न होने का कारण क्या है?"

"अपने धर्म की ऐसी बातों पर भी मेरे हृदय में कोई श्रद्धा नहीं है"।

"आपके धर्म में तो केवल वहम की ही बातें भरी हैं! आपने, पुराण तो पढ़े ही होंगे!"

"पढ़े तो नहीं हैं, लेकिन घर में तथा बाहर उनकी बहुत-सी बातें सुनी हैं"।

"उन बातों पर से आपको क्या जान पड़ा?"

"ख़ास कुछ नहीं। मैं छोटा था, तब कहानी के रूप में इन सब बातों में मज़ा मालूम देता था, इतनी ही बात है।"

"हिन्दूधर्म, अन्त्यजों के स्पर्श को पाप मानता है, स्त्रियों को हलकी गिनता है और वर्णों में भी ऊँच-नीच का भेद बतलाता है। इन सब के सम्बन्ध में, आपका क्या मत है?"

"मैंने बतलाया न, कि हिन्दूधर्म अथवा अन्य किसी धर्म का, मैंने कोई अध्ययन ही नहीं किया है" ज़रा ऊबकर श्रीकान्त बोला।

"लेकिन, आप ये सब बातें देखते तो हैं, न?"

श्रीकान्त ने, उत्तर देने से पूर्व, रामदेव की तरफ देखा। वह, आतुरतापूर्वक यह चर्चा सुन रहा था।

"देखता तो ज़रूर हूँ" श्रीकान्त ने जवाब दिया।

"यह देखकर आपको क्या जान पड़ता है?"

"यह बुरा है, ऐसा तो मालूम ही होता है"

"किन्तु, हिन्दूधर्म तो इसका समर्थन करता है"।

"यह बात मुझे मालूम नहीं है"।

"आपको, यह जानना चाहियें। एक और बात बतलाइये। यदि, यह बात आपको मालूम होजाय, तो आप हिन्दूधर्म छोड़ देंगे, न?" विलियम ने आँखें समेटकर पूछा।

"मुझे, इस सम्बन्ध में ज़्यादा दिलचस्पी ही नहीं है" श्रीकान्त ने प्रश्न को टालना चाहा।

"लेकिन, इसमें तो करोड़ों मनुष्यों के जीवनमरण का प्रश्न छिपा है। आपको, इसमें दिलचस्पी ज़रूर लेना चाहिये।"

श्रीकान्त, कुछ न बोला।

"क्या विचार कर रहे हैं ?"

"आपकी बात सच है, मुझे ये सब बातें जाननी चाहिएँ"।

"यहाँ, आप कितने दिन रहेंगे ?" विलियम ने बात बदली।

"एक-दो दिन"।

"क्यों, इतनी जल्दी क्यों ?"

"मुझे, जरूरी-काम के लिये जाना है"।

"आपके जीवन में भी ऐसे प्रश्न से सम्बन्ध रखनेवाली कोई समस्या उठ खड़ी हुई है, न ?"

"हाँ, है तो जरूर, किन्तु वह धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं रखती"।

"आचार से तो सम्बन्ध रखती है ?"

"अवश्य"

"हमलोग, उसी पर विचार करेंगे। आप, कुछ दिन यहाँ ठहरिये। मि. सेमुअल के साथ आपको आनन्द मिलेगा और पादरीबाबा से भी आप थोड़ा-बहुत परिचय कर सकेंगे। यों तो हमारे बहुत-से मिशन हैं, किन्तु हिन्दुस्तान के स्वभाव को देखकर चलनेवाला, एक यही मिशन है। आप देखिये न, प्रेमाश्रम नाम ही हिन्दुस्तानी है!" उत्साह में भरकर विलियम साहब बोले।

"हाँ, लेकिन 'सेमुअल' हिन्दुस्तानी नहीं जान पड़ता" श्रीकान्त ने कहा।

"ठीक है" कहकर विलियम जरा रुके और फिर बोले—"नाम पर से ही ज़्यादातर मनुष्य का धर्म जाना जाता है और उस मनुष्य को भी इस बात का स्पष्ट ध्यान रहता है, कि मैं कौन हूँ"

श्रीकान्त के मन में एक प्रश्न उठा, लेकिन वह इस चर्चा को संक्षिप्त कर डालना चाहता था, अतः चुप रहा। किन्तु, विलियम तो अपना धर्मकार्य जारी ही रखना चाहते थे, अतः उन्होंने फिर पूछा—

"तो आप कुछ दिन रुकेंगे, न ?"

"नहीं–नहीं, मेरा तो गये बिना काम ही नहीं चल सकता"।

"अच्छी–बात है, तो फिर कभी सही" कहकर विलियम ने बात समेट ली। श्रीकान्त ने, छुटकारा अनुभव किया। एकाध मिनिट और बैठकर विलियम उठे। शिष्टाचार के नाते श्रीकान्त भी खड़ा होगया। कोठरी के दरवाजे के पास पहुँचते–पहुँचते विलियम ने पूछा—

"कल, क्या आप मेरे यहाँ आ सकेंगे ?"

श्रीकान्त ने, कोई उत्तर न दिया, किन्तु चेहरे के भाव से ही अपनी अनिच्छा प्रकट कर दी। विलियम ने, अधिक आग्रह न किया।

उनके जाने के कुछ समय बाद तक, दोनों मित्र चुपचाप बैठे रहे। रामदेव के मुँह पर, चिन्ता की रेखाएँ दौड़ गईं। उसे, इस चर्चा को सुनकर यह सन्देह उत्पन्न होगया, कि शायद श्रीकान्त के मन पर विलियम साहब का कोई अच्छा–असर नहीं पड़ा है। उसने, अपनी इस धारणा को स्पष्ट करने के इरादे से, श्रीकान्त से पूछा—

"क्यों, विलियम साहब को देखा, न ?"

"हाँ" गम्भीर–मुखमुद्रा से श्रीकान्त ने केवल इतना ही कहा। रामदेव ने, अधिक न पूछा। वह भी उस चर्चा पर विचार करने लगा। श्रीकान्त तो बहुत–अधिक गहराई में उतर गया था। उसे जान पड़ा, कि अब तो धर्म का अध्ययन करना ही होगा। जब से सविता का प्रश्न उठ खड़ा हुआ था, तभी से धर्म का प्रश्न भी उत्पन्न हुआ था। और रामदेव के मिलने के बाद से तो प्रत्येक क्षण यह शब्द सामने

आता रहता था। श्रीकान्त के मन में, सविता के पास जाकर रहने और मुहल्ले के लोगों की सेवा करने का मनोरथ उत्पन्न हो चुका था। उसके इस कार्य में तो प्रत्येक क़दम पर धर्म बाधक होगा, ऐसा उसे जान पड़ने लगा।

'धर्म क्या चीज़ है, यह बात बिना शास्त्र पढ़े—अध्ययन किये बिना नहीं मालूम हो सकती' श्रीकान्त को विश्वास होगया। वह, अभी विचार ही कर रहा था, कि रामदेव ने उसे अपनी कथा कहने की बात याद दिलाई। श्रीकान्त ने, नम्र-वाणी में रामदेव से कहा—"यदि सबेरे ही कहूँ, तो? इस समय, मन में अनेक प्रश्न उठ-उठकर परेशानी में डाल रहे हैं।" रामदेव को, इसमें कोई आपत्ति न थी, उसने स्वीकार कर लिया। श्रीकान्त को एकान्त तथा शान्ति मिले, इसलिये रामदेव कोई बहाना निकालकर बाहर चला गया। प्रेमाश्रम की उस कोठरी में, श्रीकान्त अकेला रह गया। उस छोटी-सी कोठरी में बैठे-ही-बैठे, उसने अपनी सृष्टि की रचना प्रारम्भ कर दी।

२७

गम्भीर-वेदना.

रात के ग्यारह बजे तक, विचार में पड़े-पड़े श्रीकान्त ने रामदेव की प्रतीक्षा की। किन्तु, रामदेव न आया। इस सम्बन्ध में भी अनेक विचार उत्पन्न हुए, लेकिन पिछली रात्रि के जागरण तथा थकावट के कारण, उसकी आँख लग गई। उसके सो जाने के लगभग आधे घण्टे बाद रामदेव आया। उसकी कोठरी के दरवाज़े तक, विलियम उसके साथ-साथ आये थे। अलग होने से पहले उन्होंने रामदेव से कहा—"प्रभु का आदेश न भूल जाना"।

रामदेव ने देखा, कि श्रीकान्त सो रहा है। वह, श्रीकान्त के चेहरे की तरफ़ ग़ौर से देखने लगा। उसके हृदय में, गहरी-सहानुभूति की भावना उत्पन्न होगई। वह, धीरे-से श्रीकान्त के समीप बैठ गया। उसे, मानों शान्ति प्राप्त होने लगी हो, ऐसा जान पड़ा। साथ ही, मानों कुछ भय अनुभव कर रहा हो, इस तरह उसने खुले हुए दरवाज़े की तरफ़ देखा। दरवाज़े में, विलियम खड़े थे। उन्हें देखकर रामदेव काँप उठा। वह उठकर दरवाज़े के पास गया। विलियम ने, उसे आँख से संकेत किया, अतः वह उनके पीछे-पीछे चल दिया।

"देख सेमुअल! आज तूने जो दीक्षा ली है, उसके प्रति वफ़ादार रहना। मुझे, तेरे इन मित्र का भय है। ये, तुझे चाहे जिस तरह

समझावें, किन्तु, यदि तू अपना कल्याण चाहता हो, तो इस प्रेम तथा समानता के धर्म को कदापि न छोड़ना।"

"आप, मुझसे ऐसी बातें क्यों कहा करते हैं ? मैं, किसी भी तरह भगवान् ईसामसीह का धर्म नहीं छोड़ सकता।"

"मैं देख रहा हूँ, कि आज सबेरे से तेरे मुँह पर घबराहट छा रही है। जब से तेरे ये मित्र आये हैं, तब से मैं तेरा निरीक्षण कर रहा हूँ। इनके प्रति, तेरे हृदय में, अजीब-तरह से आकर्षण बढ़ता जा रहा है।"

"लेकिन, इससे मेरी दीक्षा या मेरे धर्म को क्या हानि पहुँच सकती है ?"

"गम्भीर-हानि पहुँच सकती है। तू, इससे अपना मिशन भूल जायगा। तुझे, हिन्दूधर्म से बदला लेना है, यह बात विस्मृत हो जायगी। अभी कल तक तुझ पर जो मुसीबतें पड़ी हैं, वे तुझे याद न आवेंगी।"

"नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता"।

"देख, आधी रात होने आई है। ऊपर अनन्त-आकाश है। ये सब बातें याद रखना, ईश्वर का स्मरण करना और अपने वचनों के प्रति वफादार रहना। हाँ, यहाँ से जाने से पूर्व, मैं तुझे एक बात और बतलाता जाऊँ। इस संसार में, तुझ पर जिसने सब से अधिक उपकार किये हैं और जिसके लिये तेरे हृदय में मार्मिक-वेदनाएँ उत्पन्न होती रहती हैं, उस अपनी प्यारी-माता का भी तूने इस सत्यधर्म के लिये परित्याग कर दिया है। अब, वह त्याग लज्जित न होने पावे, इस बात का तुझे भली-भाँति ध्यान रखना है। श्रीकान्त हिन्दू है, इसलिये तू उससे वैर कर ले, यह बात मैं नहीं कहता। यह तो तेरा अपना प्रश्न है। किन्तु, अपनी माता के प्रेम का बलिदान देते

समय तूने जिस दृढ़ता से पीछे लौटकर देखा तक नहीं, उस दृढ़ता को इस दो दिन की दोस्ती के प्रेम में न खो बैठना।"

रामदेव, चुपचाप खड़ा रहा।

"अच्छी-बात है, तो मै तुझ पर विश्वास करके जाता हूँ। हमलोगों को एकसाथ मिलकर, तेरी सारी जाति का उद्धार करना है, इस बात को तू ध्यान में रख और ईसामसीह का नाम लेकर अब चुपचाप सो जा।"

विलियम चले गये। रामदेव, भारी पैरों से कोठरी में आया। दरवाजा बन्द करके, उसने बिछौना बिछाया और सो रहा। बग़ल की ही पथारी में श्रीकान्त पड़ा खर्राटे ले रहा था। उसका सौम्य-मुख देखकर, रामदेव के जी में उथलपुथल मचने लगी। क्षणभर के लिये, उसकी आँखों के सामने विलियम का मुँह आगया। रामदेव को, आज पहली ही बार वह मुँह कुरूप और कुछ अरुचिकर-सा जान पड़ने लगा।

रामदेव, पड़ा था, नींद न आती थी। दो दिन की स्मृतियों ने, उसे बेचैन बना डाला। आज रात को, विलियम साहब ने उससे जो बातें कही थीं, उन्होंने तो एक और ही तूफ़ान खड़ा कर दिया। 'मुझ पर इतनी अधिक निगरानी रखने की क्या जरूरत है?' 'जब, मैंने दीक्षा ले ली है, तब फिर मुझसे इतना ज़्यादा कहने-सुनने का अर्थ क्या है?' आदि प्रश्न रामदेव के मस्तिष्क में उत्पन्न होने लगे। उसे, इन शंकाओं के उत्तर न सूझ पड़े, लेकिन विलियम साहब का आचरण तो उसे किसी तरह उचित ही नहीं प्रतीत हुआ।

दूसरी तरफ, श्रीकान्त के सम्बन्ध में विचार आये। उसके प्रश्नों ने, मुझे तिलमिला दिया था, यह याद आते ही, वह फिर भावनाओं के वश होगया। श्रीकान्त के प्रति उसके हृदय में इतना अधिक आकर्षण क्यों है, यह उसकी समझ में न आया। लेकिन, उसके जी में यह बात आई, कि-'अब यदि इसी व्यक्ति के साथ रहने को मिले, तो

कितना अच्छा हो !' प्रेमाश्रम के घण्टाघर में एक बजा, तब रामदेव को अधिक रात बीतने का भान हुआ। उसने उठकर एकबार श्रीकान्त का सारा शरीर ग़ौर से देखा और फिर बत्ती बुझा दी।

क्राइस्ट का स्मरण करता-करता, आख़िर वह भी सो गया। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में जन्मे तथा पले हुए, किन्तु समान-दुःखी, वे दोनों मित्र गहरी-नीद में सो रहे थे।

बड़े सबेरे, जब श्रीकान्त जागा, तब रामदेव नींद में था। उसने, रामदेव को बिना जगाये ही अपना नित्यकर्म कर डाला। उजाला हो चुकने पर रामदेव की आँखें खुलीं। श्रीकान्त, स्नानादि से निवृत्ति पाकर, अब उसी के सामने बैठा था। उसके हाथ में, 'न्यू टेस्टामेण्ट' (बाइबिल का नूतन-खण्ड) था। रामदेव ने, आश्चर्यपूर्वक यह देखा और हँसते-हँसते बोला—

"कब से जाग रहे हो?"

"मैं तो बहुत-जल्दी उठ गया था। आप, रात को किस समय लौटे थे?'

"रात को? हाँ, देर होगई थी और लगभग दो बजे सोया था।"

"इतनी अधिक देरी!"

"विलियम साहब के पास गया था"।

"रात को क्यों?"

"गया तो था एक मित्र के यहाँ। लेकिन, वहाँ वे मिल गये और अपने साथ ही अपने यहाँ ले गये।"

"ठीक, लेकिन, आज का क्या कार्यक्रम है?"

"मुझे तो सारे दिन फ़ुरसत ही है। यों तो मेरे ज़िम्मे कई काम हैं। लेकिन, मैंने चार दिन की छुट्टी ले ली है।"

"तो अब आप नित्यकर्म से निवृत्त हो जाइये, तब हमलोग फुरसत से बैठें"।

रामदेव उठा और प्रातःकर्म करने लगा। श्रीकान्त, 'न्यू टेस्टामेण्ट' के पन्ने उलटता रहा। कुछ वाक्यों में उसे आनन्द आया, कुछ समझ में नहीं आये और कुछ अच्छे नहीं लगे। किन्तु, रामदेव के निवृत्त होने तक, वह पढ़ता ही रहा।

"बोलो, मै तैयार हूँ" रामदेव ने आकर कहा।

"बैठो" श्रीकान्त ने पुस्तक को टेबल पर धरते हुए कहा—'तो अपनी बात तुमसे कहूँ, क्यों?"

रामदेव ने सिर हिलाया और श्रीकान्त के समीप कुर्सी खींचकर बैठ गया। श्रीकान्त ने, शान्त-चित्त से बात कहनी प्रारम्भ की। अपने पिता के परिचय से लगाकर, अपने पालन-पोषण, सविता के आगमन, कुटुम्ब के मधुर-जीवन, अकस्मात ही देवाभाई का आना, पिता का सन्देह तथा भय, सविता का त्याग, उसके बाद सब के हृदय का मन्थन, पिता की दशा, माता की स्थिति, अपनी मनोव्यथा, जमादारवाली घटना, तीव्र-वेदना, गृहत्याग की उद्विग्नता, सविता तथा मधुसूदन, सविता में होनेवाले परिवर्तन, पिता की बीमारी, धर्मपुर से रामनगर की आमद और अन्ततक की सभी घटनाओं का वर्णन श्रीकान्त ने रामदेव के सन्मुख किया। रामदेव, एक भी शब्द बोले बिना, सब सुनता रहा। लगभग तीन घण्टे तक यह बातचीत होती रही। इन तीन घण्टों में, कोई भी वहाँ से न उठा। यही नहीं, वे दोनों किसी अन्य वातावरण में मानसिकरूप से भी न जा सके। रामदेव तो आश्चर्यचकित होगया। मानों, अपनी कल्पना से परे के किसी प्रसंग की बातें सुन रहा हो, इस तरह, छोटे बच्चों के सदृश कौतूहलपूर्ण-दृष्टि से, वह श्रीकान्त के मुँह की तरफ ताक रहा था। थोड़ी देर के लिये, उसे अपना दुःख और व्यथाएँ भूल गईं। उसे, अपनी कथा का रस भी कम जान

पड़ने लगा। श्रीकान्त की अपेक्षा, वह किसी उलटे ही मार्ग से जा रहा है, ऐसा विचार उसके मस्तिष्क में क्षणभर के लिये उत्पन्न होगया।

"आपकी कथा तो अद्भुत है"।

"भगवान् जाने, अभी और क्या-क्या होनेवाला है!"

"हाँ, अब तो शायद आपको इससे अधिक कष्टों का मुक़ाबिला करना पड़ेगा"।

"केवल मुझे ही नहीं, सब को! मेरा दुःख तो किसी गिनती में ही नहीं है। सविता वहाँ बैठी है और पिताजी घर पर दुःखी हो रहे हैं तथा माता हृदय की भावनाओं को कुचल रही हैं। इन सब लोगों के दुःख के मुक़ाबिले, मेरा दुःख तो सुख जैसा ही समझना चाहिये।"

"आपने ग़ज़ब की हिम्मत दिखलाई!"

"मैंने कुछ नहीं किया, मुझसे हो ही गया"।

"अब क्या होगा? आपका क्या ख़याल है?"

"मैं, कुछ सोच भी नहीं पाता। मै तो कल या परसों सविता के पास पहुँच जाऊँगा, इससे मुझे और उसे तो शान्ति मिलेगी......।"

"वहाँ कैसी शान्ति? चमार की अपेक्षा भंगी की दशा अधिक-बुरी होती है।" रामदेव ने बीच ही में कहा।

"लेकिन, हमलोग साथ-साथ होंगे न, तो यह सुख शेष सभी दुःखों को भुला देगा। वास्तविक-दुःख तो माता-पिता को ही भोगना पड़ेगा। हमलोग, भंगीपुरे में शान्ति प्राप्त कर सकेंगे, और वे महल में भी न पा सकेंगे। रामदेव!" श्रीकान्त से बोले बिना न रहा जाता हो, इस तरह वह कह गया—"मुझे जान पड़ता है, कि मन के सुख-दुःख को आप अभीतक नहीं समझ पाये है। अन्यथा, यहाँ की सुखमय-सुविधा के मुक़ाबिले, अपनी माता की गोदी में आपको अधिक आनन्द अनुभव होता।"

रामदेव, नीचे देखता रहा । मानों घबरा रहा हो, इस तरह उसने अपना सिर हिलाया और जैसे कोई समाधान सूझ पड़ा हो, इस तरह उसने तत्क्षण ही उत्तर दिया—

"मै, केवल अपने सुख के लिये ही नहीं आया हूँ। यह, सत्य-मार्ग है। मेरी माता को भी यही मार्ग ग्रहण करना चाहिये।"

"ख़ैर, जो होगया, सो ठीक ही है" श्रीकान्त ने बात पूरी करने के इरादे से कहा।

'ऐसा नही है-श्रीकान्तभाई ! आपने मेरी बात सुनी है। फिर भी, अबतक आप इस बात की कल्पना नहीं कर पाये, कि मैंने कितनी पीड़ाएँ सहन की हैं।"

"मेरे हृदय में, उसकी ठीक-ठीक कल्पना आगई है। आपकी विपत्ति सुनकर, मैं काँप उठा हूँ।"

"फिर भी आप ऐसी बातें क्यों करते हैं ?"

"मेरे मन का समाधान नहीं होता, अतः बार-बार मेरे जी में यह बात पैदा होती है, कि इसमें आपके हाथ से भूल ही हुई है।"

"ठीक है, लेकिन आपको मेरी स्थिति का तो विचार करना चाहिये ! भले ही मैंने भूल की हो—नहीं-नहीं, मै उसे भूल मानता ही नहीं हूँ।" रामदेव, क्षणभर रुका और फिर जोश में आकर कहने लगा—"क्या यह बात सत्य नहीं है, कि हिन्दू जाति ने मुझ पर अत्याचार करने में कोई कसर नहीं रक्खी ? मै भी, सवर्णों जैसा ही मनुष्य हूँ। फिर भी सवर्णों ने मुझे अपने जानवरों के बराबर स्थान नहीं दिया। केवल मुझे ही नहीं, मेरी सारी जाति को त्राहि-त्राहि करवाने में, उन्होंने क्या उठा रक्खा है ? मैं आपसे कह चुका हूँ, कि एक सामान्य-वहम का निराकरण करने के लिये ही, सवर्णों ने हमारी जाति पर कैसे-कैसे ज़ुल्म गुजारे थे ! श्रीकान्तभाई ! मैं समझ गया, कि मेरा क्रिश्चियन होना, आपको अच्छा नहीं लगा ! मुझे, आप पर

२८

प्रेम की वेदना.

"मेरा चित्त, अत्यधिक-अशान्त रहता है। मैं, थोड़े दिनों के लिये यदि जा आऊँ, तो क्या हर्ज है?"

"तू, इतना निर्बल है, यह बात मैंने कभी सोची भी न थी। सेमुअल! तुझ पर हुए सभी अत्याचारों को तू एक घड़ी में भूल जायगा, ऐसी यदि मेरे हृदय में कल्पना भी होती तो मैं तुझे दीक्षा देकर ईसामसीह के नाम पर......" शेष शब्द वे रोष में पी गये।

"लेकिन, मैं ऐसा क्या कर रहा हूँ?"

"तू, ऐसा ही कर रहा है। तू नहीं जानता, कि यदि तू इस प्रेमधर्म के वातावरण से दूर चला जायगा, तो फौरन ही तेरे सिर पर शैतान चढ़ बैठेगा। उस दशा में, तुझे अपने हिताहित का भी ध्यान न रहेगा।"

"मैं, ऐसा नहीं समझता" ऊब रहा हो, इस तरह रामदेव बोला।

"कहाँ से समझेगा? तुझे समझना ही नहीं है। तूने, समझने की शक्ति ही खो दी है। तेरे मित्र ने, तुझ पर कोई जादू कर दिया है।"

"आप, यह क्या कह रहे हैं? मेरे उन मित्र को आप पहचानते ही नहीं। वे, दूसरे हिन्दुओं जैसे नहीं हैं। वे तो..

"मैं जानता हूँ, कि वह दूसरे हिन्दुओं जैसा नहीं है। दूसरे हिन्दुओं जैसा होता, तो मैं जरूर ही तुझे उसके साथ जाने की आज्ञा दे देता।"

"तो आपने उनमें क्या दोष देखा? मुझे तो वे मेरी अपेक्षा कहीं अधिक दुःखी जान पड़ते हैं और उनके हृदय में किसी के प्रति तिरस्कार का कहीं लेश भी नहीं है।"

"यही तो उसकी भयंकरता है। तुझे, हिन्दूधर्म में फँसाने के लिये, अब तिरस्कार या जुल्म से काम नहीं चल सकता, यही तो उसने समझ लिया है। उसका प्रेम, वास्तविक-प्रेम नहीं, बल्कि एक प्रकार का इन्द्रजाल है। सेमुअल!" आदेश दे रहे हों, इस तरह के स्वर में विलियम साहब बोले—"कृतघ्न न बन। जिस धर्म ने तुझे शान्ति दी, समानता दी, सुख प्रदान किया और थोड़े ही समय में जो तुझे पत्नी तथा सम्पत्ति देगा, उसके प्रति बेवफाई न कर।"

"लेकिन, आप......आप......"

"मैं, सब जानता हूँ। तू, भोला है और केवल भावनाओं का ही बना हुआ है, इसलिये उसकी युक्तियाँ तू नहीं समझ सकता। मैं, तुझे सच बतलाता हूँ, कि यह प्रेमधर्म का दुश्मन है। कल, उसके साथ मेरी जो बातचीत हुई, उसी से मैंने जान लिया, कि इसमें हलाहल-विष भरा है।"

रामदेव, अकुलाने लगा। श्रीकान्त में हलाहल-विष की कल्पना भी उससे सहन न हो सकी। किन्तु, आजतक जिसके सामने विनम्र-भाव से जीवन व्यतीत किया था, उसके सामने बोलने के लिये, उसे एक शब्द भी न सूझ पड़ा। वह, घबराता और हैरान होता हुआ चुपचाप बैठा रहा। मन में द्वन्द्व पैदा होगया।

"देख, सेमुअल!" फिर बुलन्द-आवाज सुन पड़ी। रामदेव, मानों विचार से जाग पड़ा हो, इस तरह विलियम के लाल मुँह की तरफ देखता रह गया।

"तू जानता है, कि जो प्रेमधर्म का त्याग करता है......"

"लेकिन, मैं त्याग कहाँ कर रहा हूँ ? श्रीकान्तभाई, मुझे अपने साथ चलने को कहते भी नहीं हैं। मुझे ख़ुद ही......"

"यह सब मायाजाल है। तू, ज्योंही प्रेमाश्रम के बाहर निकलेगा, त्योंही तेरे मन में इस धर्म के प्रति वह शंकाएँ उत्पन्न करेगा और तुझे अपने ध्येय से डिगा देगा। तेरी माँ की याद दिलाकर, तेरी निर्बलताओं को जाग्रत करेगा। कुछ भोले-भाले हिन्दुओं से तेरा परिचय करवाकर, तेरे रोष की ज्वालाएँ शान्त कर देगा.......!"

मानों भविष्यवाणी हो रही हो, इस तरह की बुलन्द और स्थिर-आवाज़ निकलने पर, रामदेव एक के बाद एक वाक्य श्रवण करने लगा। उसकी व्याकुल-बुद्धि, और अधिक घबराने लगी।

"और तू जानता है? इस प्रेमधर्म का नाश करने के लिये, इस देश में अभी थोड़े ही दिनों के भीतर अनेक शैतानियतें पैदा हुई हैं। वे, अपने पादरीबाबा जैसे पवित्र-पुरुषों को स्वार्थी और दग़ाबाज के नाम से पुकारते हैं। इस धर्म की, शराब और गौहत्या का लांछन लगाकर, निन्दा करते हैं। बोल, तूने यहाँ कभी शराब अथवा गौहत्या देखी है ? पादरीबाबा के नेत्रों में, पवित्रता के अतिरिक्त, क्या तूने कभी और कुछ भी देखा है ?"

रामदेव, विलियम के मुँह की तरफ देखता हुआ मौन बैठा रहा।

"इसी लिये मैं कहता हूँ, कि तू यहाँ से दूर न जा। तू नहीं जानता, लेकिन मुझे मालूम है, कि तेरे जाने का क्या दुष्परिणाम होगा। और एक बात तुझसे फिर बतलाता हूँ। मैं, तुझे सारी ज़िन्दगी यहीं बन्द नहीं रखना चाहता। पादरीबाबा ने और मैंने, तुझसे धर्मप्रचार की बड़ी-बड़ी आशाएँ बांध रक्खी हैं। किन्तु तू अभी नवदीक्षित है, तेरा हृदय अभीतक सुकोमल है, तेरे ज्ञान

में अभीतक न्यूनता है। आज, यदि तू दूसरे वातावरण में पहुँच जाय, तो तेरा धर्म और तेरा अस्तित्व सुरक्षित न रह सके।"

रामदेव की परेशानी कुछ कम होने लगी। उसके मुँह पर नम्रता एवं पश्चात्ताप की रेखाएँ दीख पड़ते ही विलियम साहब बोले—

"और, यदि तू मेरी सलाह माने, तो मैं तो यह कहूँगा, कि तू एकाध वर्ष मेरे ही साथ रह और धर्म का अध्ययन कर"। विलियम, आशाभरे नेत्रों से रामदेव की तरफ़ देखने लगे। उन्होंने, रामदेव के चेहरे पर सहमति के भाव पढ़े। वे हर्षित होकर बोले—'प्रभु के प्रताप से, तू बच गया है। मेरी सलाह है, कि तू अब घर न जा। हमलोग, श्रीकान्त को कहला भेजें, कि तू उनके साथ न जा सकेगा।"

"नहीं-नहीं, जाना तो चाहिये ही। वे, अभी जानेवाले हैं।"

विलियम के चेहरे पर, एक बदली छाकर चली गई। उन्होंने, शान्त-स्वर में कहा-"तो भले ही हो आ, लेकिन मैंने जो कुछ कहा है, उसे एक क्षण के लिये भी न भुलाना"।

रामदेव उठा। विलियम, उसके धीरे-धीरे पड़नेवाले पैरों को, बड़ी-देरतक देखते रहे। रामदेव थोड़ी दूर चला गया, तब उन्होंने अपने एक साथी मि. जोन को आवाज़ देकर बुलाया और दूर जाते हुए रामदेव की तरफ़ उँगली दिखलाई। मि. जोन, फौरन ही रामदेव के पीछे-पीछे चलने लगे। विलियम, वापस लौटकर आरामकुर्सी पर बैठे और विचार करते-करते सिगरेट जलाकर पीने लगे। साफ़-सुथरे कमरे में, यत्र-तत्र धुएँ के गोले-से उठने लगे।

रामदेव को, वापस लौटते समय, फिर व्याकुलता जान पड़ने लगी। अत्यन्त प्रयत्न के पश्चात्, विलियम साहब ने, उसके मन पर जो प्रभाव डाला था, वह प्रत्येक क़दम पर कम होने लगा। घर के समीप आने तक तो उसकी उद्विग्नता बहुत-ज़्यादा बढ़ गई। घर पहुँचकर, ज्योंही उसकी दृष्टि श्रीकान्त पर पड़ी, त्योंही उसके मन में ये प्रश्न उठने लगे—

'यह दगाबाज है ? यह भयंकर है ? यह इन्द्रजाल करता है ?' आदि। जवाब की जरूरत न थी। एक के बाद एक शंका नष्ट होने लगी, किन्तु जाने का निश्चय तो किसी तरह हो ही न सका।

"क्या निर्णय किया ?" रामदेव के कोठरी में पैर धरते ही श्रीकान्त ने पूछा।

"वे नाराज़ हैं" रामदेव ने भारी-आवाज़ में कहा। श्रीकान्त, उसकी आकृति देखकर उसके मन की व्यथा समझ गया। पहले तो इस व्यथा को जानने की जिज्ञासा पैदा हुई, किन्तु उसने तत्क्षण ही उसे रोक लिया। "अच्छी बात है, तो मै तैयारी करूँ" कहकर वह उठा और तैयार होने लगा। रामदेव, दयनीय-नेत्रों से उसकी तरफ़ देखता रहा।

"यह बिछौना लेते जाइयेगा" रामदेव इस तरह बोला, कि श्रीकान्त कोई उत्तर ही न दे पाया। उसने, बिछौना हाथ मे लिया और रामदेव के खड़े होने की प्रतीक्षा करने लगा।

"मै, स्टेशन पर नही जाऊँगा, मेरी तबियत प्रसन्न नहीं है" बड़ी कठिनाई से बोल रहा हो, इस तरह रामदेव ने कहा।

"ठीक है, मैंने स्टेशन देखा है, अकेला चला जाऊँगा"। एक प्रेमपूर्ण-दृष्टि डालते हुए श्रीकान्त ने कहा और घर के बाहर पैर निकाला। रामदेव, कुछ ऊँचा हुआ, किन्तु फौरन ही बगलवाली टेबल पर उसने अपना शरीर डाल दिया। श्रीकान्त ने, यह आवाज सुनी, लेकिन वापस बिना देखे ही वह आगे चलता रहा। नज़दीक ही खड़े हुए मि. जोन, श्रीकान्त को अकेला जाते देखकर प्रसन्न हुए और प्रेमधर्म की सतह से स्खलित होते हुए रामदेव को शान्ति प्रदान करने के लिये, वे उसकी कोठरी में दाखिल हुए।

२९

बहिन के सान्निध्य में.

प्रेमाश्रम के दरवाजे से बाहर निकलते हुए श्रीकान्त ने, एक बार पीछे की तरफ नजर डाल ली। उसकी आँखे, रामदेव की कोठरी की दीवारें भेदकर भीतर का दृश्य देखना चाहती थीं, किन्तु दीवारें अभेद थीं, अतः वे टकराकर लौट आईं। श्रीकान्त, खिन्न-हृदय लिये स्टेशन की तरफ चलने लगा। घर छोड़ते समय, विश्व के साथ एकरूप की जो भावना जाग्रत हुई थी, उसी के प्रत्युत्तर में मानों इस समय अकेलेपन' के भाव उसके हृदय में जाग्रत हो पड़े थे। रास्ते पर, सैकड़ों मनुष्य जा रहे थे, किन्तु श्रीकान्त को उनमें से एक भी अपना न जान पड़ा। वह, बग़ल में बिस्तरा दाबे, जल्दी-जल्दी चलता हुआ स्टेशन पर आ पहुँचा। गाड़ी, अबतक आई न थी, अतः टिकिट ख़रीदकर वह प्लेटफॉर्म पर एकान्त में पड़ी हुई एक बेंच पर जा बैठा और जीवन की विचित्रताओं पर विचार करके आश्चर्यचकित होने लगा। थोड़ी ही देर में, उसके पास आकर दो युवक बैठ गये। वे लोग तो अपनी बातों की ही धुन में थे, फिर भी श्रीकान्त का अकेलापन कुछ कम हुआ। वह, उन दोनों की बातें सुनने लगा।

"ऐसा त्याग, बहुत-दिनों तक नहीं टिक सकता। भावना की एक लहर आने पर त्याग कर दे और दूसरी लहर आने पर त्याग का

दुःख हो, यह ठीक नहीं है। मनुष्य को, भावनाशील कदापि न होना चाहिये।" एक बोला।

"भावनाओं के बिना तो मनुष्य जीवित ही नहीं रह सकता। यदि, कोई मनुष्य भावनाहीन बनकर जीने का प्रयत्न करे, तो वह शनैः-शनैः पशु ही बन जायगा।" दूसरे ने कहा।

"इसमें, भावनाहीनता की कोई बात ही नहीं है। जिस भावना में बुद्धि का साहाय्य नहीं है, वह अन्ततक कभी टिक ही नहीं सकती। आदर्श के स्वप्न, थोड़े दिनों में ही मिथ्या हो जाते हैं।"

"बुद्धि की सहायता लेने को कौन मना करता है? लेकिन पराई बुद्धि की सहायता किस काम की?"

"भावना के बिना, मनुष्य उन्नति ही नहीं कर सकता। बिना आदर्श का व्यवहार, बिना गन्धवाले कागज़ के फूल के सदृश है।"

"और व्यावहारिक-ज्ञान से रहित आदर्श के मानी हैं—हवा में गाँठ लगाना"।

श्रीकान्त को, बात में आनन्द आया। कुछ बोलने की इच्छा हुई, कि इसी समय एक बहिन आकर उसी बेंच पर बैठ गई। श्रीकान्त ने, उनकी तरफ जरा-सा देखकर अपनी आँख खींच ली। गाड़ी का समय हुआ, अतः प्लेटफॉर्म पर मनुष्य बढ़ने लगे। बेंच पर भीड़ होते ही, उन दोनों मित्रों की चर्चा बन्द होगई और गाड़ी आने तक इधर-उधर की गप्पे लगती रहीं।

गाड़ी आगई। श्रीकान्त, बिछौना लेकर गाड़ी में जा बैठा। गाड़ी चलने से पहले, उसने सारे प्लेटफॉर्म पर नज़र दौड़ाई। किन्तु, एक भी जान-पहचानवाला मनुष्य उसे न दिखाई दिया। अन्त में, गाड़ी चलते समय, उसकी दृष्टि वेटिंगरूम के दरवाजे में खड़े विलियम साहब पर पड़ी। श्रीकान्त ने, दोनों हाथ उठाकर नमस्कार किया। विलियम

ने, सलाम से उत्तर दिया। गाड़ी, धीरे-धीरे प्लेटफॉर्म से बाहर निकलने लगी।

श्रीकान्त, शरीर और मन दोनों ही से थका हुआ था। उसके सद्भाग्य से तीसरे दर्जे के डिब्बे में जगह भी थी, अतः उसने बिछौना फैलाकर अपनी आँखे बन्द कर लीं। नींद तो न आई, किन्तु कुछ आराम जरूर मालूम हुआ। मन में, विचार तो बहुत-से भरे ही थे, अतः एक के बाद एक आने लगे। ज्यों-ज्यों गाड़ी की गति बढ़ने लगी, त्यों-त्यों माता-पिता और रामदेव के बदले, सविता के विचार बढ़ने लगे। 'वह क्या करती होगी?' यह विचार तो अनेक बार आया, किन्तु कल्पना का एक भी दृश्य सामने उपस्थित न हो सका। रात के दस बजे तक, श्रीकान्त इसी प्रकार के विचारों में डूबा हुआ जागता रहा। फिर, उसकी आँख लग गई। निद्रा, बिना स्वप्न की कैसे होती? अनेक स्वप्न, विचित्र-विचित्र प्रकार से आये। किन्तु, उन सब में सविता, रामदेव और माता-पिता तो थे ही। एक स्वप्न और उसमें भी केवल एक ही दृश्य चित्त में भय उत्पन्न करनेवाला था। विलियम साहब, मानों रामदेव की आंखों में गरम किये हुए लाल-लाल दो सूजे भोंक रहे हैं और रामदेव चीख़ रहा है। वह, रामदेव को बचाने की इच्छा रखता था, लेकिन चल न पाता था। क़दम धरने की इच्छा करते ही पैर शिथिल पड़ जाते थे और आँखे मानों बन्द होजाती थीं। भय की थरथराहट से श्रीकान्त क्षणभर के लिये जाग पड़ा, किन्तु दूसरे ही क्षण फिर नीद आगई और दूसरा स्वप्न शुरू हुआ। यह मधुर था। वह, सविता के यहाँ पहुँचता है, तब देखता है, कि माता-और पिता, वहाँ पहले ही से आकर बैठे हैं। इन लोगों के चारों तरफ हरिजनों का झुण्ड बैठा है और उमादेवी एक को कुछ समझा रही हैं।

इसी तरह के स्वप्नों में, उसने सारी रात बिताई। सवेरे जब वह जागा, तब उसकी गाड़ी एक ऊजड़-प्रदेश में होकर दौड़ी जा रही थी। जमीन साफ पड़ी थी, अतएव सूर्योदय स्पष्ट दीख पड़ता

था। पहली किरण फूटते ही, श्रीकान्त ने उसके आँख भरकर दर्शन किये। ठण्डी हवा तथा गर्मी देनेवाली सूर्यकिरणें, श्रीकान्त को स्वास्थ्यप्रद जान पड़ीं। उसका चित्त ज़रा प्रफुल्लित हो उठा। कल्पना के भी पर पैदा होगये। मनोराज्य में, भावी-जीवन की अनेक कल्पनाएँ उत्पन्न होने लगीं। उसे जान पड़ा, कि जब वह सविता के पास पहुँचेगा, तब से जीवन का कल्याणकारी-मार्ग प्रारम्भ हो जायगा।

दोपहर को तीन बजे, उसकी गाड़ी इच्छित स्टेशन पर पहुँच गई। स्टेशन नजदीक आनेवाला था, तब श्रीकान्त के हृदय की धड़कन में वेग उत्पन्न होगया। विचार और कल्पनाएँ इतनी तेज़ी से उठती थीं, कि अन्त में घबराहट-सी प्रतीत होने लगती। गाड़ी के स्टेशन पर खड़े होने से पहले ही, श्रीकान्त ने प्लेटफॉर्म पर दृष्टि फेंककर अपने दो-चार पहचानवाले लोगों को देख लिया। उन सब की दृष्टि बचाकर श्रीकान्त गाड़ी से उतरा और स्टेशन से बाहर निकल गया। वह जानता था, कि मैं अब श्रीकान्त नहीं हूँ। पिताजी को छोड़ने के पश्चात्, उनके धन धनवान् नहीं बना जा सकता और न उनकी प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठावान् ही, यह बात वह भली-भाँति समझता था।

'सविता कैसे आश्चर्य में पड़ जायगी!' यह मधुर-कल्पना उसके मन में पैदा होगई। मित्र तथा स्नेही आदि सबलोग अपने मन में क्या सोचेंगे, इस ख़याल के आते ही कुछ-कुछ ग्लानि उत्पन्न हुई। स्टेशन से बाहर निकलकर, उसने गाड़ी किराये नहीं की, बल्कि बिस्तरा अपनी बग़ल में दाबकर पैदल ही भंगीपुरे की तरफ चल दिया। उसके पास होकर, अनेक गाड़ियाँ तथा मोटरें निकल गईं। किसी मोटर का हॉर्न सुनकर वह एक तरफ हट गया और किसी गाड़ी की घण्टी सुनकर फुटपाथ पर चढ़ गया। किसी के धक्के से अपने को सम्हालकर और अपने शरीर से किसी को धक्का लग जाने पर क्षमायाचना करता हुआ वह आगे बढ़ा। इस तरह, जीवन में जिन बातों का कभी

अनुभव न हुआ था, उनका अनुभव प्राप्त करता हुआ, वह भंगीपुरे के नज़दीक आ पहुँचा।

भंगीपुरा देखते ही, उसके हृदय के तार झनझना उठे। सविता को देखने में, अब सिर्फ दो मिनिट की ही देरी थी। उसके मन में, कुछ शान्ति आई। पता नहीं क्यों, लेकिन मुहल्ले में पैर धरते ही वह गम्भीर बन गया। वह, अनेकबार वहाँ आया था, लेकिन आज का आगमन उसे कुछ और ही तरह का जान पड़ा। वह, धीरे-धीरे चलता हुआ सविता की कोठरी की तरफ घूमा। मुहल्ले के बच्चों का ध्यान इधर आकर्षित हुआ। वे, दौड़कर सविता के पास गये और उसे यह संवाद सुनाया! सविता, आश्चर्यचकित होगई। वह, फौरन ही बाहर निकल आई। उस समय, श्रीकान्त सीढ़ियाँ चढ़ रहा था। सविता, के हृदय में, आनन्द की लहरें उठने लगीं। वह, न तो कुछ बोल ही सकी और न श्रीकान्त के सामने ही देख सकी। श्रीकान्त, एक के बाद एक सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आया। क्षणभर, दोनों भाई-बहिन एक-दूसरे के सामने खड़े रहे। बगल की कोठरी से मोती दौड़ी आई। थोड़ी ही देर में, वहाँ बहुत-से स्त्री-पुरुष एकत्रित होगये। श्रीकान्त, उन सब की तरफ और वे सब श्रीकान्त की तरफ आश्चर्यपूर्वक देखने लगे। एक भी अक्षर बोले बिना, श्रीकान्त ने कोठरी में जाकर बिछौना धरा और उसी पर बैठ गया।

सविता, ज़रा गम्भीर बन गई, अतः लोग बिखर गये। वह भी भीतर आकर बैठी। मोती, अपना बच्चा लिये हुए उसी की बगल में आ बैठी। मौन भाषा में बातचीत शुरू हुई और दोनों की आँखे आँसुओं से चमक उठीं।

प्रेरणा का मूल.

"**क्यों**, बहिन !" अन्तस्तल से आवाज़ आ रही हो, इस तरह श्रीकान्त बोला।

उत्तर में, सविता के चेहरे पर मुस्कराहट आगई। मोती, यह अद्भुत-दृश्य देखकर विस्मय में पड़ गई। उसकी समझ में, यह कुछ न आया। उसे जान पड़ा, कि इस समय मेरा यहाँ बैठना उचित नहीं है। यह सोचकर, वह उठने लगी, किन्तु सविता ने हाथ पकड़कर उसे फिर बिठा दिया। श्रीकान्त, मोती की तरफ देखता रह गया।

अन्त में, मौन समाप्त हुआ। उठती हुई लहरें, कुछ कम होने लगीं। सविता ने, सब से पहले माताजी तथा बापूजी के समाचार पूछे। इन समाचारों में ही श्रीकान्त के समाचार भी आगये। श्रीकान्त ने, संक्षेप में गृहत्याग की बात कह सुनाई। रामदेव का भी थोड़ा-सा परिचय दिया।

"बापूजी, ख़ूब दुःखी हुए होंगे !" बात सुन चुकने के पश्चात्, सविता के मुँह से ये उद्‌गार निकले।

"हाँ" इससे अधिक श्रीकान्त कुछ न बोल पाया।

"माताजी तो बेचारी......" सविता का हृदय भर आया।

"अब मैं जाऊँ, आपलोग बैठिये" कहकर मोती उठ खड़ी हुई। सविता ने उसका हाथ पकड़ा, किन्तु पकड़ ढीली थी। मोती, धीरे-से हाथ छुड़ाकर अपनी कोठरी में चली गई। भाई-बहिन अकेले रह गये।

"आपको भोजन करना होगा" एक घण्टा बीतने के बाद सविता का याद आया।

"हाँ, लेकिन अब शाम को ही, सब के साथ-साथ"।

सविता, कुछ गम्भीर बन गई। श्रीकान्त, उसके मन की बात समझ गया।

"जो होगा, वही खा लूँगा"।

"आपसे नहीं खाया जा सकेगा। सिर्फ खिचड़ी और रोटी खा पाओगे! उसके साथ, साग भी न होगा।"

"केवल रोटी भी खा सकूँगा"।

सविता ने, दूसरा प्रश्न न पूछा। किन्तु, उसके मन में अनेक प्रश्न उत्पन्न होगये।......श्रीकान्त यहाँ रह सकेगा?......क्या करेगा?......दिन कैसे बितावेगा? यहाँ का जीवन देखकर, क्या इसके मन में घृणा नहीं पैदा होगी?"

"क्या विचार करती है—सविता!" श्रीकान्त ने पूछा।

"कुछ नहीं। यही सोच रही हूँ, कि आप यहाँ रह भी सकेंगे?"

"कोई हर्ज है?"

"और तो क्या, यह सब......." सविता ने अपनी कोठरी में और कोठरी से बाहर नज़र दौड़ाई।

"यह सब सोचकर ही मैं आया हूँ। देख, मैं झाड़ू निकालने भी आऊँगा।"

सविता, आश्चर्यचकित होकर श्रीकान्त की तरफ देखने लगी।

"और जो-जो काम तू करती होगी, वे सब मै करूँगा"।

"आपको बड़ी कठिनाई होगी"।

"तू देख लेना"।

"सविता के दिमाग में, एक विचार पैदा हुआ। श्रीकान्त, यदि मधुसूदन के यहाँ रहे, तो ? उसने, हिचकते-हिचकते यह श्रीकान्त से कहा।

श्रीकान्त ने फौरन उत्तर दिया—"तो फिर बापूजी का घर क्या बुरा था ?"

"लेकिन, वहाँ से यहाँ आ सकोगे। कुछ समय-तक यहाॅ ठहर भी सकोगे।" सविता निरुत्तर हो चुकी थी, फिर भी बोली।

"तू भी मधुसूदन के यहाँ आवेगी ?" श्रीकान्त ने सविता पर अपनी आॅखे जमाकर पूछा।

"मै ?"

"हाँ, वहाॅ नहीं, तो किसी दूसरी जगह हमलोग एक स्वतन्त्र-मकान लेकर रहें। देवाभाई भी हमारे साथ रह सकेंगे।" कहकर श्रीकान्त सविता के चेहरे की तरफ देखने लगा, किन्तु उसमें कोई परिवर्तन नहीं जान पड़ा।

"मै तो अब कहीं नहीं जा सकती"।

"क्यों ?"

'मेरा जीवन, अब इस मुहल्ले के कार्यों में ओतप्रोत होगया है। अब, देवाभाई एक ही नहीं रहे।"

"तो थोड़े दिनों में मेरी भी यही स्थिति हो जायगी"।

अभी बातें हो ही रही थीं, कि मोती आई। उसने, आॅख के इशारे से सविता को बाहर बुलाया। सविता, उसका मतलब समझ गई। उसने, वहीं बैठे-बैठे उत्तर दे दिया—"प्रतिदिन जैसा होता है, वैसा

ही"। मोती को, यह बात न रुची। सविता ने हँसकर कहा—"मेरे भाई हैं। जो कुछ मै खाऊँगी, वही ये भी खायँगे।" श्रीकान्त, मोती की तरफ देखकर हँसा। सविता के शब्दों ने, मानों भोजन में अपूर्व-स्वाद भर दिया हो, ऐसा श्रीकान्त के मन में आया।

मोती के चले जाने पर, श्रीकान्त ने उसके सम्बन्ध में पूछा। सविता ने, विस्तार से सब बातें बतलाईं। श्रीकान्त, आश्चर्यमग्न होगया। मोती के प्रति, उसके मन में सहानुभूति उत्पन्न हुई और अपनी बहिन सविता की तरफ वह आँखें फाड़-फाड़कर देखता रहा। सविता का जीवन, अब यहाँ के कार्यो में ओतप्रोत होगया है, यह बात उसे सत्य जान पड़ी। श्रीकान्त समझ गया, कि अब सविता को न तो दुःख है और न व्यथा ही। उसकी सारी परेशानियाँ और घबराहट दूर हो चुकीं हैं और वह अपने मार्ग पर दिनप्रतिदिन आगे बढ़ रही है।

"सविता! तूने तो अपना सारा कलेवर ही बदल डाला है!"

"नहीं, कलेवर नहीं" सविता हसी "आत्मा"।

"हाँ-हाँ, आत्मा ही" श्रीकान्त ने स्वीकार किया।

"आप भी तो यही कर रहे हैं, न!"

"हाँ, लेकिन अभी मेरी व्यथा पूरी नहीं हुई है!"

"पूरी हो चुकी है। आपने रामदेव की बात की, उसे सुनकर ही मै यह समझ गई, कि अब आपकी आत्मा भी बदल गई है।"

"सविता! रामदेव की कथा, तेरी कथा से बिलकुल उलटी ही है!"

"और आपकी?"

"हाँ, यह भी निराली ही है"।

"निराली ही नहीं, अद्भुत भी!"

"किन्तु, मै तो तेरी भावनाओं से आकर्षित होकर यहाँ आया हूँ"।

"चाहे जिस तरह हो, लेकिन आपने एक अद्भुत-स्वार्पण तो किया ही है, न!"

"मेरा स्वार्पण, तेरे स्वार्पण का-सा भव्य नहीं है। मैंने तो अपना दुःख और अपनी वेदनाओं का त्याग किया है और तूने तो हर्षपूर्वक अपने हृदय में उन्हें स्थान दिया है।"

"ऐसा नहीं है—बड़े-भैया!" सविता ने बात बदलकर पूछा—"और हाँ, क्या रामदेव अब क्रिश्चियनधर्म का प्रचार करेगा और हिन्दूजाति से बदला लेने का ही कार्य करेगा?"

"वह तो कहता है, लेकिन मैं नहीं समझता, कि वह ऐसा कर पावेगा। रामदेव, अभीतक केवल भावनाओं की ही एक कोमल-प्रतिमामात्र है।"

"आपके प्रति, उसके हृदय में ख़ूब अनुराग पैदा होगया है, क्यों?"

"हाँ, मुझे भी हुआ है"।

"तो फिर आप वहाँ क्यों नहीं रह गये?"

"यह तो परमात्मा जाने"।

सविता का चेहरा प्रसन्न हो उठा। वह, भावनामय-वाणी में बोली—

"बड़े-भैया! तू यहाँ क्यों आया?"

श्रीकान्त, जवाब देने के बदले, सविता के हँसते हुए चेहरे की तरफ देखने लगा। अभीतक गम्भीर जान पड़नेवाली आकृति, अब सर्वथा बदल गई थी। श्रीकान्त को जान पड़ा, मानों यह वही सविता है, जो घर पर थी, जो हिंडोले पर थी, जो छत पर थी, जो बगीचे में थी, जो उसके अपने श्वासोच्छ्वास में थी।

"क्यों, बोलते क्यों नहीं हो?"

"बोलने की कोई बात ही नहीं है"।

"तो यहाँ नहीं रह सकते !"

"यहाँ तो तेरी ही हुकूमत चलती होगी !"

"तो किसकी, आपकी ? यह हुकूमत मुफ्त में नहीं मिली है, समझे !"

श्रीकान्त ने गम्भीर होकर कहा-"मैं जानता हूँ"।

"मै तो हँसी करती थी" सविता ने हँसना बन्द करके कहा।

"मै भी हँसी ही समझ रहा हूँ। लेकिन, इस हँसी में भी जो सत्य है, उसे तो समझना ही चाहिये, न ! सविता ! अब जो तू कहेगी, वही मै करूँगा।"

"नहीं, जैसा आप कहें"।

"मुझे तो कोई अनुभव ही नहीं है"।

"नजर डालते ही आपको सब अनुभव हो जायगा"।

"सविता ! तुझे क्या जान पड़ा है ? इन सभी दुःखियों के दुःख का मूल कहाँ है ?"

"अज्ञान में"

"केवल इतना ही ?"

"और अस्पृश्यता में !"

श्रीकान्त, सविता की तरफ देखने लगा। आज, पहली बार ही उसे सविता अपने गुरु जैसी जान पड़ी। वह, कुछ अधिक विचारे, इससे पूर्व ही चौक में मनुष्यों का कोलाहल सुनाई देने लगा। सविता समझ गई, कि 'झाड़ूमण्डली' आ पहुँची है। उसने, श्रीकान्त का ध्यान उधर आकृष्ट किया। थोड़ी ही देर में, झाड़ू-टोकरा लिये हुए देवाभाई ने कोठरी में प्रवेश किया। श्रीकान्त को देखते ही, उन्हें

आश्चर्य हुआ और वे संकोच में पड़ गये। श्रीकान्त ने, हँसकर उनका संकोच कम करने का प्रयत्न किया।

लगभग पन्द्रह मिनट् के बाद ही, सबलोग एकसाथ भोजन करने बैठे। श्रीकान्त, ज़रा गम्भीर होकर नीचे देखता हुआ भोजन करने लगा। सविता का ध्यान, भोजन करने की तरफ कम होगया। वह, बड़े-भैया का गम्भीर-मुँह देखती, तथा उसके सम्बन्ध में विचार करती हुई धीरे-धीरे खाने लगी। सब रोगों के मूल अस्पृश्यता का वहाँ नाश हो रहा था, किन्तु किसी को इस बात का किंचित् भी ध्यान न था। कारण, कि निवारण की प्रेरणा का मूल दयाभाव में नहीं, बल्कि प्रेमभाव में था।

३१

माता-पिता के पास.

रात को, मधुसूदन आया। श्रीकान्त को देखते ही, मानों अपनी भविष्यवाणी सत्य होने का भाव प्रकट करना चाहता हो, इस तरह प्रसन्न नेत्रों से उसने सविता की तरफ देखा। सविता, हँस रही थी। रात को, मधुसूदन भी वहीं रह गया। उसने, श्रीकान्त से बहुत-सी बातें कीं। इन बातों में, जीवनपरिवर्तन तथा अस्पृश्यतानिवारण की बातें मुख्य थीं।

दूसरे दिन सबेरे से ही, श्रीकान्त के समाचार लोगों में फैलने लगे। सन्ध्या को प्रकाशित होनेवाले समाचारपत्रों में, मोटे-मोटे शीर्षकों के नीचे श्रीकान्त के परिवर्तन के समाचार छपे। दो-तीन समाचारपत्रों के प्रतिनिधि भी वहाँ आकर श्रीकान्त से मिल गये। श्रीकान्त को, अख़बारी दुनिया का किंचित् भी ज्ञान न था। उसने, अपने हृदय की व्यथा तथा मनोरथ आदि, निःसंकोच होकर उन प्रतिनिधियों को बतला दिये। वे, सब बातें उसने जब दूसरे ही दिन के समाचारपत्रों में पढ़ीं, तब वह आश्चर्यचकित रह गया। पत्रों में छपी हुई कुछ बातें, श्रीकान्त को अच्छी न जान पड़ीं। अपना, सविता का और माता-पिता के फोटो छपे देखकर तो उसे खेद भी हुआ। उसने, अपने मन में सोचा, कि यदि पिताजी की दृष्टि इन सब बातों पर पड़ेगी, तो उनके दुःख का कोई पार ही न रह जायगा।

मधुसूदन, इन सब बातों से प्रसन्न हो रहा था। नये-विचारों की एक लहर, सारे शहर में दौड़ गई थी। इस लहर के कारण, जनता का जो अज्ञान बहा जा रहा था, उसमें, मधुसूदन की माता के बचे-खुचे अज्ञान का अंश भी होता था। मधुसूदन, आशाओं के बड़े-बड़े महल बनाने लगा। चन्द्रकान्त देसाई के आनन्द का भी कोई पार न था। वे, एक बार मुहल्ले में आकर श्रीकान्त से मिल भी गये। जमादारवाली घटना के पश्चात् से, कोई-कोई सवर्ण मुहल्ले में आने लगे थे। किन्तु, श्रीकान्त के आ जाने के बाद से तो उनकी संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि होने लगी। मुहल्ले के लोग, इन सब बातों को अभीतक आश्चर्य-पूर्वक ही देख रहे थे। उन्हें, अभी इस बात का भान न हुआ था, कि उनके बन्धन कट रहे हैं।

श्रीकान्त के आने के समाचार मिलते ही, उसके काका तथा अन्य सम्बन्धीगण दुःखी होने लगे। एक बार साहस करके वे लोग श्रीकान्त से मिलने आने को तैयार हुए। किन्तु, उसी दिन धर्मदास ने श्रीकान्त के आचरण पर विचार करने के लिये, जाति की सभा बुलाई। श्रीकान्त के सगे-सम्बन्धी, भय से चुप हो रहे। किसी का साहस न हुआ, कि मुहल्ले में आवे। इस तरह, सगा-सम्बन्धी तो कोई न आया, हाँ दो-एक मित्र जरूर ही आकर मिल गये। किन्तु, एक सम्बन्ध, जो 'सम्बन्ध' जान ही नहीं पड़ने लगा था, अटूट रहने लगा। श्रीकान्त का मोटरड्रायवर 'बड़े-भैया' के आने के समाचार पाते ही मुहल्ले में दौड़ आया। श्रीकान्त को, भंगीपुरे की एक कोठरी में खड़ा देखकर, वह बच्चे की तरह रो पड़ा। पैंतीस वर्ष के उस वयस्क-मनुष्य को, श्रीकान्त ने चुप रक्खा और थोड़ी देर बाद वापस घर लौट जाने को कहा। ड्रायवर ने, वापस जाने से इनकार कर दिया। किन्तु, श्रीकान्त के ख़ूब समझाने और कभी कभी मिलते रहने का आश्वासन देने पर, वह बड़ी कठिनाई से वापस गया।

लगभग चार दिन बीत गये। पिता से पूछकर, मधुसूदन ने

एक दिन श्रीकान्त के सन्मुख सार्वजनिक-सभा करने की बात रक्खी। श्रीकान्त ने, उसी क्षण इनकार कर दिया और मधुसूदन से साफ-साफ बतला दिया, कि मै मुहल्ले से बाहर न निकलूँगा। मुझे, सविता के साथ रहना है और जो कुछ वह करती हो, सो करना है। मधुसूदन को, यह बात अच्छी न लगी। वह, उस समय तो कुछ न बोला, लेकिन उसने यह बात अपने मन में रख ली।

पाँचवें दिन, श्रीकान्त के नाम के दो पत्र आये। एक को तो उसने अक्षर देखते ही पहचान लिया और दूसरे को डाकखाने की मुहर देखकर। एक पत्र घर का था और दूसरा रामदेव का। पहले, उसने घर का पत्र खोला। वह, उमादेवी का लिखा हुआ था। श्रीकान्त, गम्भीर बनकर उसे पढ़ने लगा। प्रत्येक शब्द और प्रत्येक वाक्य पर उसकी गम्भीरता बढ़ने लगी। पत्र में, श्रीकान्त के चले आने के बाद की स्थिति का वर्णन था। हरिदास सेठ की बीमारी ने पलटा खाया था। वे, रात-दिन श्रीकान्त का ही नाम जपा करते थे। उमादेवी, उन्हें शान्ति देती थीं और इस दुःख से उबारने के लिये, हृदय से ईश्वर की प्रार्थना करती थीं। उन्होंने, स्वतः अपने सम्बन्ध में लिखा था, कि—'तू चला गया, इसका मुझे कोई दुःख नहीं है। तुझे तो जाना ही चाहिये था। वही सत्य-मार्ग था। तेरा कल्याण हो। मैं, यहाँ हूँ और यहीं रहूँगी। किसी-किसी क्षण, जब तेरे पिता की वेदना असह्य हो पड़ती है, और उन्हें आधी-रात की शान्ति में अपना सिर पीटते अथवा चीख़े निकालते देखती हूँ, तब तुझे बुला लेने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है। किन्तु, तेरी व्यथा की मैं साक्षी हूँ। तू, अपने सुख के लिये नहीं गया है, यह बात मैं भली-भाँति समझती हूँ। सविता का दुःख याद कर लेती हूँ और शान्ति प्राप्त करती हूँ।' पत्र के अन्त में लिखा था—'तेरे पिता, कभी-कभी यह बात बोल जाते हैं, कि भले ही सविता आवे, भले ही देवाभाई आवें, लेकिन मेरे श्रीकान्त को लाओ। मैं, इन शब्दों की गहराई नहीं देखना चाहती।

इनकी स्थिति, अत्यन्त-कोमल है। मैं, जितनी शान्ति दे सकती हूँ, उतनी देती हूँ। तू, चिन्ता न करना। सविता को उसकी इस दुःखिनी-माता का आशीर्वाद। उससे कह देना, कि-मैं महल में हूँ, किन्तु उसकी अपेक्षा किसी तरह सुखी नहीं हूँ।'

पत्र पढ़कर, श्रीकान्त ने उसे सविता के हाथ में दे दिया। सविता, पढ़ने लगी। दूसरा पत्र हाथ में पकड़कर, श्रीकान्त अथाह-विचारसागर में डूब गया। कितना समय व्यतीत हो चुका है, इस बात का उसे किञ्चित् भी भान न रहा। सविता ने, मुक्त-हृदय से पत्र पढ़ा और फिर दुःख से घिरे हुए श्रीकान्त के चेहरे की तरफ देखने लगी।

श्रीकान्त, मानों नींद से जाग पड़ा हो, इस तरह उसने अपना सिर एकदम ऊपर उठाया और उसे थोड़ा-सा हिलाया भी। भावनाओं को दूर कर रहा हो, इस तरह वह कुछ हँसा और सीधा तनकर बैठ गया। स्थिर-हाथों से, उसने दूसरा लिफाफा खोला। उसमें भी दुःख था, वेदना थी और विरह की व्यथा थी। किन्तु, श्रीकान्त पर इसका कुछ और ही प्रभाव पड़ा। ये सब बातें भली जान पड़ने लगीं। रामदेव को, अब प्रेमाश्रम वीरान-सा जान पड़ता है और सुख-सुविधा होते हुए भी उसे शान्ति नहीं प्राप्त होती, यह बात श्रीकान्त को अच्छी लगी। 'आपके चले जाने के बाद से, मुझे ज़रा भी चैन नहीं पड़ती और वहाँ भाग आने को जी चाहता है, यह पढ़कर, श्रीकान्त के हृदय में, उसे देखने की इच्छा जाग्रत हो उठी। यह पत्र भी पढ़कर उसने सविता को दे दिया और ख़ुद दीवार के सहारे बैठकर विचार करने लगा। कुछ मिनिट बीतने के पश्चात्, उसका मन स्थिर होने लगा। सविता ने, दोनों पत्र पढ़कर श्रीकान्त के हाथ में लौटा दिये। श्रीकान्त ने, पत्र नीचे धर दिये और एक दुःखपूर्ण-हँसी हँसता हुआ सविता की तरफ देखने लगा।

"क्या है, सविता!" वह बोला।

"आप, बापूजी के पास जायँ, तो ?" सविता, श्रीकान्त की तरफ भावनापूर्ण-दृष्टि से देखती हुई बोली ।

"अब, ऐसा नहीं हो सकता" ।

"क्यों ? यदि आप नहीं जायँगे, तो पिताजी की स्थिति दिन-प्रतिदिन गम्भीर बनती जायगी" ।

"जो होना होगा, सो तो होगा ही" श्रीकान्त बड़ी कठिनाई से बोल पाया । थोड़ी देर, वहाँ शान्ति छाई रही ।

"मेरा जी चाहता है, कि मै एक बार पिताजी के पास हो आऊँ" ।

श्रीकान्त चौंक उठा । उसने पूछा—"क्यों ?"

"मै, ऐसा कोई काम नहीं करूँगी, जिससे उन्हे दुःख पहुँचे । मेरे मन में, बार-बार यह बात आती ही रहती है, कि एक बार माताजी तथा पिताजी से मिलूँ ।" सविता बोली।

"नहीं-नहीं, इससे तो उनका दुःख बढ़ेगा ही । तुझे देखकर, माताजी से न रहा जायगा और उस समय तो शायद पिताजी भी न रह पावें। किन्तु, पीछे से, वे इसका प्रत्याघात सहन न कर पावेंगे।"

सविता को, श्रीकान्त की बात अच्छी न लगी, किन्तु फिर भी उसने अपनी इच्छा को भीतर ही दबा डाला। श्रीकान्त ने, दोनों पत्रों के संक्षिप्त-उत्तर लिख डाले। लम्बे-जवाब, वह लिख ही न पाया ।

रात्रि और दिन तो अपने क्रमानुसार व्यतीत ही होते जाते थे। और चार दिन बीत गये। एक दिन रामदेव का पत्र आया। पत्र, हरिपुरा से लिखा गया था। उसमें, उसकी माता की गम्भीर-बीमारी का समाचार था। पत्र पढ़ने के पश्चात्, श्रीकान्त के हृदय में रामदेव के लिये चिन्ता पैदा होगई । दूसरे ही दिन, उमादेवी का पत्र आया। उसमें, ये समाचार थे—'अब, तेरे पिता के अन्तिम-दिन हैं । वे, बार-बार दुःखपूर्वक तेरी याद करते हैं। तेरे साथ ही, सविता को

लाने को भी कहते हैं। तुम दोनों, एक बार यहाँ आ जाओ। तार में, सब समाचार स्पष्ट नहीं भेजे जासकते थे, इसी लिये पत्र लिखा है।' श्रीकान्त, पत्र पढ़ते ही घबरा उठा। कर्त्तव्य का कठोर-कवच उतर गया—हृदय रोने लगा।

सविता ने भी पत्र पढ़ा। वह, जाने के लिये अधीर हो उठी। भाई-बहिन दोनों ने दुःखी-हृदय से बातचीत की और अन्त में जाना तय पाया। किसी को भेजकर सविता ने मधुसूदन को बुलवाया और उससे सारा हाल कहा। पहले तो मधुसूदन यह सुनकर कुछ उदास हुआ, किन्तु फिर उसने अपनी सहमति प्रकट की। थोड़ी ही देर में, मुहल्ले में यह बात फैल गई। सविता तथा श्रीकान्त के स्नेहियों को भी यह बात मालूम हुई। दूसरे दिन सबेरे जाना था, अतः रात्रि को तथा प्रातःकाल बहुत-से लोग मिलने आये। अपने सुख-दुःख में आये हुए मनुष्य, हमारे साथ सहानुभूति रखते हैं, इस ख़याल से सविता तथा श्रीकान्त के हृदय द्रवित हो उठे। मोती, शान्तिपूर्वक खड़ी-खड़ी यह सब देखती तथा सुनती थी। एकान्त मिलते ही, वह सविता के पास आई। उसके नेत्रों से आँसू टपकने लगे। सविता ने, उसे आश्वासन दिया, कि मैं आठ दिन में जरूर ही लौट आऊँगी।

सब का प्रेम तथा सहानुभूति प्राप्त करके, श्रीकान्त और सविता, दोनों गाड़ी पर चढ़े। अनेक स्त्री-पुरुष पहुँचाने आये थे। अश्रुपूर्ण नेत्रों से सबलोगों ने इन्हें बिदा किया। गाड़ी, अपना समय होने पर, निर्विकारभाव से दौड़ने लगी। प्रतिक्षण, रामनगर नजदीक होता जा रहा था और सविता का मुहल्ला दूर।

३२

क्या होगा ?

सविता और श्रीकान्त, दोनों माता-पिता के पास जा रहे हैं। उनके इस हलके-हलके आनन्द पर, शोक का एक गम्भीर-आवरण चढ़ा है। पिछले कुछ दिनों में, साथ-साथ रहते हुए, उन दोनों ने कुछ स्वप्नों की रचना की थी। किन्तु, इस समय उन दोनों के हृदय में यह विचार आ रहा था, कि हमारे उन मीठे-मीठे स्वप्नों की सफलता ईश्वराधीन है। थोड़े दिनों के भीतर ही, उनकी अपनी दुनिया, अनेक मर्यादाओं को भेदकर विस्तृत बनी है। किन्तु, भविष्य में उसका विस्तार बढ़ता ही रहेगा, अथवा संकुचित हो जायगा, यह बात कोई न जानता था। गाड़ी, सविता तथा श्रीकान्त को लिये, रामनगर की तरफ दौड़ी जा रही थी। दोनों के चेहरों पर अपार-गाम्भीर्य था। यद्यपि, दोनों के विचार का दृष्टिबिन्दु एक ही था, किन्तु फिर भी दोनों अपने-अपने विचारों को भीतर-ही-भीतर दौड़ा रहे थे।

दोपहर का समय बीत गया और सूर्य पश्चिम दिशा की तरफ झुकने लगा। गर्मी कम हुई और हवा में कुछ-कुछ ठण्डक जान पड़ने लगी। दोनों भाई-बहिनों ने सबेरे से कुछ न खाया था और खाने की याद भी नहीं आती थी। वे, कभी-कभी बोलते, किन्तु एक-दो वाक्यों में ही विषय समाप्त हो जाता था।

सन्ध्या समीप आगई और रामनगर भी नजदीक आने लगा। अँधेरा

होते–होते रामनगर पहुँच जायँगे, यह बात उन्हें मालूम थी। अब, विचारों का वेग बढ़ने लगा। मनःचक्षु के सन्मुख, कल्पना के दृश्य, एक के बाद एक आने लगे। घर, नजदीक आता जा रहा था। जिनकी गोद में खेले थे, वे माताजी और जिनकी प्रेमभरी दृष्टि के संरक्षण में पले थे, वे पिता, अब बिलकुल पास ही जान पड़ने लगे थे। किन्तु, हृदय में उत्पन्न होनेवाला वेग, पैदा होते ही शान्त पड़ जाता था। विचित्र –विचित्र प्रकार की कल्पनाएँ, उस वेग को शान्त कर देतीं और कलेजा फट जाय, ऐसी स्मृतियों को ताजा बना देती थी।

रामनगर आने में, अब केवल एक ही स्टेशन शेष रह गया था। श्रीकान्त ने, खिड़की से बाहर नजर फेकी। सविता, मानों कुछ कहना या कोई बात सुनना चाहती हो, इस तरह श्रीकान्त की तरफ देखने लगी।

"सविता" खिड़की के बाहर से अपना मुँह भीतर लेते हुए श्रीकान्त ने कहा—"रामनगर आ पहुँचा"।

"हाँ"

"यदि, बापूजी की तबियत अच्छी न होगी, तो सारी प्रसन्नता मिट्टी में मिल जायगी"।

"हाँ"

"माताजी बेचारी आज रास्ता देख ही रही होंगी। हमलोग तार देना भी भूल गये।"

"हाँ"

"सविता!" श्रीकान्त चौंककर बोला।

"हाँ"

"तू, कुछ बोलती क्यों नहीं है? व्याकुल होकर मेरी तरफ क्यों देख रही है?"

"कोई बात नहीं है, सिर्फ थोड़ी–सी घबराहट होती है"।

"क्यों ? क्यों ?" श्रीकान्त सविता के नज़दीक ही था, किन्तु और नज़दीक खिसककर बोला।

"कुछ नहीं" सविता ने शान्त होने का प्रयत्न किया।

गाड़ी ने सीटी दी, रामनगर की सीमा दीख पड़ने लगी।

"बापूजी को किसी तरह दुःख न होने पावे, इस बात का हमलोगों को ख़याल रखना है, हो!"

"हाँ"

"किन्तु, तू बोलती क्यों नहीं है ?"

"मै न आती, तो अच्छा था"।

"तू इसी लिये घबरा रही है ?"

अभी, बातें हो रही थीं, कि गाड़ी स्टेशन पर जा खड़ी हुई। श्रीकान्त ने, उजड़े हुऐ प्लेटफॉर्म पर दृष्टि डाली। स्टेशन मास्टर और पेटमैनों के सिवा, वहाँ और कोई न था। दोनों, गाड़ी से उतरकर स्टेशन से बाहर आये और वहाँ एक ताँगा खड़ा था, उसे भाड़े करके घर की तरफ चल दिये।

रात हो चुकी थी। श्रीकान्त को, अपनी बिदाई की रात्रि याद हो आई। अनेक विचार उत्पन्न हुए और विलीन होगये। सविता, मानों शून्यमनस्क हो गई हो, इस तरह ताँगे का सहारा लिये बैठी थी।

"सविता, तू इस तरह न रह। इससे, माताजी तथा पिताजी दुःखी होंगे। ऐसे मौके पर, मन को मज़बूत रखना चाहिये।"

"बड़े–भैया! मैने भूल की है। मुझे, यहाँ न आना चाहिये था। उतर जाऊँ ? वापस लौट जाऊँ ?"

ताँगा, बँगले के पास आ पहुँचा। ताँगे की आवाज़ सुनकर, उमादेवी बाहर निकल आई। श्रीकान्त और सविता को देखते ही, उनकी आँखे प्रसन्न हो उठी। चबूतरे से नीचे उतरकर, उन्होंने उन दोनों को छाती

से लगा लिया। सविता ने, बहुत–दिनों के पश्चात् विश्रान्ति अनुभव की। उसकी परेशानी दूर होगई, घबराहट मिट गई।

सबलोग भीतर आये। हरिदास सेठ, बिछौने में पड़े सो रहे थे। बातचीत की आवाज़ सुनकर, वे चौक पड़े और देखने लगे। उन्होंने, क्रमशः देखा—उमादेवी, सविता, श्रीकान्त! विश्वास न होता हो, इस तरह उन्होंने अपनी आँखे उधर से खींच लीं। श्रीकान्त, दौड़कर उनके चरणों में जा पड़ा। सविता की भी ऐसी ही इच्छा हुई, किन्तु उसके पैर जकड़ गये। हरिदास सेठ, श्रीकान्त के सिर पर हाथ फेरते हुए, सविता को देखने लगे। सविता को दूर खड़ी देखकर, उनके नेत्रों में पानी भर आया। "आ, बेटा!" बोलते हुए उनका गला भर आया। किन्तु, सविता अपनी जगह से न हिल पाई। हृदय पर चोट लगी, किन्तु रो न पाई। वह, मूर्त्ति की तरह स्थिर होकर देखती रही। उमादेवी, सविता की यह दशा देखकर डरी। उन्होंने, नजदीक जाकर उसका हाथ पकड़ा और पलँग के पास खींच लाईं। सविता, संकोच में पड़ती हुई, पलँग को थामकर खड़ी रही। हरिदास सेठ, उसकी तरफ सजल-नेत्रों से देखते रहे।

"सविता! देख, बापूजी बुला रहे हैं। तू, ऐसा न कर।" श्रीकान्त बोला।

सविता ने, सेठ की तरफ देखा। चार आँखें होते ही, सविता का जकड़ा हुआ हृदय खुल पड़ा। उसने, बापूजी की छाती पर अपना सिर डाल दिया। "बेटा" कहकर सेठ उसके सिर पर हाथ फेरने लगे।

सविता–श्रीकान्त को वहीं खड़े छोड़कर, उमादेवी घर में गई और लौटते ही उन दोनों से नहाने को कहा। भाई–बहिन, दोनों ने एक–दूसरे की तरफ देखा और दोनों भीतर चले गये।

"देखा? एक पत्र मिलते ही आगये, न!" उमादेवी तथा हरिदास सेठ के बीच बातें शुरू हुईं।

"सविता के चेहरे का तेज जरा भी कम नहीं हुआ" हरिदास सेठ बोले "और श्रीकान्त थोड़े ही दिनों में कुम्हला गया"।

"वहाँ रहता, तो यह भी ठीक हो जाता"।

"देखो" हरिदास सेठ ने धीरे-से कहा—"अब, इन लोगों को यहीं रख लेना है। जाने न पावें।"

"लेकिन......"

"हमलोगों को, अब वहाँ जाना ही नहीं है। सम्पत्ति का कामकाज चलता रहेगा। अब, शेष जीवन, इसी तरह रोगशय्या पर पड़े-पड़े कटेगा।"

"इसी समय क्या अटका है ? आप, जरा शान्ति रखिये। इन्हें, दो-तीन दिन रहने तो दीजिये।"

हरिदास सेठ चुप हो रहे।

"क्यों, सविता !" दूसरे कमरे में पहुँचकर श्रीकान्त ने हर्ष से कहा।

"माताजी और बापूजी बहुत दुबले पड़ गये हैं !" सविता ने हर्ष के बदले दुःख प्रकट किया।

"अब, थोड़े दिनों के भीतर ही स्वस्थ हो जायँगे। उनके मन का रोग आज नष्ट होगया है।"

"बेचारे बापूजी, आखिर थक ही गये !"

"ऐसा नहीं है। वे, सब समझते तो थे ही।"

"आप, यहाँ से न जाते, तो बापूजी को इतना दुःख कदापि न होता और उनका स्वास्थ्य भी इतना न गिर जाता"।

"अच्छी-बात है, तो अब हमलोग स्नानादि से निवृत्त हो लें" कहकर श्रीकान्त स्नान करने गया। सविता भी तैयारी करने लगी।

स्नान के पश्चात्, भोजन की बारी आई...। हरिदास सेठ तो दूसरी जगह जा न सकते थे, अतः उनकी इच्छानुसार, उनके पलँग के सामने ही उमादेवी, श्रीकान्त और सविता, ये तीनों भोजन करने बैठे। हरिदास सेठ के नेत्रों मे, हर्ष दीख पड़ता था। उमादेवी, कुछ चिन्तातुर जान पड़ती थीं। श्रीकान्त और सविता, दोनों का ध्यान इस तरफ गया, किन्तु दोनों में से कोई भी इसका कारण न समझ पाया। बातें करते-करते, भोजन समाप्त किया।

भोजन के पश्चात्, शान्तिपूर्वक बातें प्रारम्भ हुईं। श्रीकान्त ने, सेठ की बीमारी के समाचार पूछे। उसे, यह जानकर आश्चर्य हुआ, कि उसके जाने के पश्चात्, हरिदास सेठ ने रोगशय्या न छोड़ी थी और अब इतने निर्बल हो चुके थे, कि अभी और बहुत-दिनों तक बिछौना छोड़ सकने की कोई आशा न थी।

"श्रीकान्त ! यदि मैं अच्छा होता, तो ख़ुद ही वहाँ आता" हरिदास सेठ ने कहा।

उमादेवी, किसी भी बात को आगे नहीं बढ़ने देती थीं। वे, सभी बातें शान्तिपूर्वक सुनती थीं और जब उन्हें जान पड़ता, कि अब इस बात का स्वरूप भावनाओं में परिणत हो जाना चाहता है, तब वे उस बात को ही बदल डालतीं। सेठ के मुँह से उपरोक्त वाक्य निकलते ही, उन्होंने कहा—"मै कहती न थी, कि हमारा पत्र पाने के बाद, वे लोग क्षणभर भी न रुकेंगे"।

थोड़ी देर शान्ति रही। उमादेवी ने सविता तथा श्रीकान्त की तरफ देखकर कहा-"अब नींद आने लगी होगी! आज तो शान्तिपूर्वक सो जाओ!" दोनों उठे। "सविता! तू मेरे साथ इस कमरे में सोना" उमादेवी ने प्रेमपूर्ण-स्वर में कहा और सविता को बग़लवाला कमरा बतला दिया। भाई-बहिन, दोनों अपनी-अपनी जगह सोने चल दिये।

"आप, अभी कुछ न बोलियेगा" उमादेवी ने धीमे-स्वर में हरिदास सेठ से कहा—"देखिये, इन दोनों के हृदय ही बदल चुके हैं। इन्हें, दो-चार दिन यों ही रहने दो, फिर जो करना हो, सो कीजियेगा।"

"यानी ?" हरिदास सेठ आश्चर्य में भरकर बोले।

"ये, यहाँ रहने नहीं आये हैं"।

"तो क्या वापस चले जायँगे ?"

"जरूर। यह बात तो मैंने पत्र लिखते समय ही आपसे कह दी थी। सविता, यहाँ किसी तरह न रहेगी और फिर श्रीकान्त क्यों रहने लगा ?"

"किन्तु, मैंने प्रतिष्ठा, धर्म, कीर्ति और स्वास्थ्य आदि सब का त्याग आखिर क्यों किया है ?"

"धीरे बोलिये। भगवान् सब का भला ही करेंगे। अब सो जाइये, वर्ना तबियत फिर बिगड़ जायगी।"

उमादेवी, उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना अपने कमरे में चली गई। हरिदास सेठ ने एक निःश्वास छोड़ा और आँखे बन्द करके सोने का प्रयत्न करने लगे। किन्तु, उनके लिये नींद इतनी सुलभ न थी। आधी रात तक उन्होंने न-जाने-क्या विचार किये और फिर बदल डाले। चित्त मे, किसी तरह शान्ति न आई। पिछली-रात्रि की ठण्डी हवा ने उन्हें कुछ शीतलता प्रदान की, अतः अशान्त-चित्त एवं अनेक स्वप्नों से भरी हुई निद्रा की गोदी में सेठ ने विश्राम पाया।

३२

अन्तिम-समय.

श्रीकान्त के चले जाने के बाद, रामदेव को अकेलापन जान पड़ने लगा। एकाध दिन तो अपने धर्मपरिवर्तन तथा श्रीकान्त के संयोग-वियोग के आश्चर्य में व्यतीत होगया, किन्तु फिर शान्त पड़ी हुई आन्तरिक-व्यथाएँ जाग्रत हो उठीं। उसने, ईसामसीह का नाम रटना प्रारम्भ किया, किन्तु इससे भी शान्ति न मिली। श्रीकान्त द्वारा पूछे हुए कितने ही प्रश्न, उसे अब हैरान करने लगे। हृदय का बल, दिन-प्रतिदिन कम होने लगा, मानों वह कोई उफान ही रहा हो! विलियम साहब के शब्द, उसे शान्ति या चेतनता न दे सके। उसके हृदय में, उद्विग्नता पैदा होगई।

रामदेव की ऐसी मान्यता थी, कि दीक्षा लेने के बाद तो उसके चित्त को अपार-शान्ति मिल जायगी। वह सोचा करता था, कि मैं प्रेमधर्म का उपदेशक बनूँगा, हिन्दुओं को उनके धर्म के नागपाश से छुड़ाऊँगा और अपने पर हुए जुल्मों का बदला लूँगा। किन्तु, वस्तुतः उसके हृदय से शान्ति ग़ायब होगई, उपदेश देने की भावना उत्पन्न न हुई और वैरवृत्ति भी भीतर-ही-भीतर टकराने लगी।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते थे, श्रीकान्त की याद बढ़ती जा रही थी। उधर, माता के दुःख की कल्पना हृदय बेधे डालती थी। पाँच-सात दिन के भीतर ही, रामदेव, प्रेमाश्रम में सब से अधिक गम्भीर

"क्या ?"

"यदि आप न चले, तो ?"

"यानी ?" सविता की तरफ ताकते हुए श्रीकान्त ने कहा।

"बापूजी बेचारे नहीं सहन कर सकते" सहानुभूतिपूर्ण-स्वर में सविता बोली।

"तू, बापूजी को ही क्यों नहीं समझाती ?"

"मैं !" सविता आश्चर्य में पड़कर बोली—"मैं ही तो इस सारे मामले की जड़ हूँ"।

श्रीकान्त, चुप हो रहा। उसके मन में उठा हुआ विचार, जहाँ-का-तहाँ दब गया। थोड़ी देर रुककर उसने कहा—

"बापूजी, किसी के समझाये तो समझेंगे नहीं! हमलोगों के प्रति, क्या उनके हृदय में कुछ कम स्नेह है! माताजी, उन्हें कितना समझाती रहती हैं!"

"वे, अपने मन में क्या सोचते होंगे-बड़े-भैया!"

"मेरे मन में भी यही ख़याल आता है। पहले, मैं समझ तो न पाता था, फिर भी ऐसा जान पड़ता था, कि उनका दुःख सत्य है। अब तो मेरे मन में भी यह बात आती है, कि यदि उन्हें हमारे प्रति प्रेम है, तो जैसा हम चाहते हैं, वैसा क्यों नहीं करने देते ?"

सविता, इसके उत्तर में कुछ न बोली। वह जानती थी, कि श्रीकान्त ने अभी जो कुछ कहा है, वह कोई प्रश्न नहीं, बल्कि एक दुःखपूर्ण-मनोभाव है। दोनों भाई-बहिन, बड़ी देरतक नदी की तरंगों पर आँखें जमाये मौन बैठे रहे।

"अब चलें ?" विचारों से जाग्रत होकर सविता ने पूछा। श्रीकान्त बिना कुछ बोले उठा और दोनों, घर की तरफ चल दिये।

"हमलोग, यहाँ कबतक रहेंगे—बड़े-भैया !" थोड़ी दूर चलकर सविता ने पूछा ।

"मुझे जान पड़ता है, कि अब हमलोगों को चल देना चाहिये" विचार में पड़े-ही-पड़े श्रीकान्त बोला ।

"आप, यदि कुछ दिन यहीं रहें, तो ?"

"क्यों ?"

"बापूजी की तबियत बिलकुल-अच्छी हो जाने पर चले आइयेगा" ।

"तो तू क्यों नहीं रहती ?"

"मेरा तो अब जीवन...

"और मेरा नहीं ?"

सविता, चुप रही ।

"सविता ! तुझे मेरी दृढ़ता के सम्बन्ध में अब भी सन्देह है ?"

"सन्देह नहीं, लेकिन बापूजी की स्थिति देखकर समवेदना का भाव उत्पन्न हो जाता है" ।

"ये सभी भावनाएँ मैं एक बार अनुभव कर चुका हूँ" ।

"यह तो सच ही है" ।

"तो फिर ?"

सविता को, इसका कोई उत्तर न सूझ पड़ा । वह मौन हो रही, अतः वार्तालाप रुक गया । दोनों, घर के समीप आ पहुँचे । ठीक इसी समय हरिदास सेठ और उमादेवी की बातचीत की ध्वनि सुन पड़ी । अनिच्छापूर्वक ही क्यों न हो, श्रीकान्त तथा सविता के पैर धीरे पड़ गये । बातें सुनाई देने लगीं—

"क्या, ये लोग इतना भी नहीं समझते, कि अब मैं कभी बिछौने पर से न उठ सकूँगा?"

लेकिन, समझकर ही क्या कर सकते हैं?"

भाई-बहिन, दोनों ने एक-दूसरे की तरफ देखा। सविता को, अपनी बिदाई का दिन याद आगया। किन्तु, आज की परिस्थिति दूसरी थी और व्यथा भी दूसरी ही।

"सविता को यहीं रख लिया जाय, इस बात से भी क्या उन दोनों को सन्तोष नहीं होता?"

"उनका असन्तोष बहुत-भारी है। अब, केवल सविता का ही प्रश्न नहीं रह गया। कल को श्रीकान्त का उस दिनवाला दोस्त आवेगा, और परसों वह भंगीपुरे के लोगों को अपने घर बुलावेगा। आप नहीं जानते। अब, उनलोगों के हृदय बदल गये हैं। मैं, बारीक़-दृष्टि से ये सब बातें देखा करती हूँ।"

"तब, मुझे पुत्र होते हुए भी तरस-तरसकर मरना होगा?"

श्रीकान्त, कुछ पीछे हट गया। सविता, स्थिर होकर सुनने लगी।

"वे अपने हैं, इस बात को भुला दीजिये। अब, वे सब के हैं, परमात्मा के हैं।"

"मै, इस बात को नहीं भुला सकता और न वैसा मान ही पाऊँगा।"

"तो फिर उन्हें बुलाना न था"।

"मैं, ऐसा नहीं जानता था"।

"मैने, आपसे कहा तो था!"

"हाँ, कहा था। लेकिन, मुझे उन शब्दों में विश्वास न था। मेरा ख़याल था, कि वे लोग मेरी असमर्थता पर विचार करेंगे।..."

श्रीकान्त, इन बातों को सुनकर चौंक पड़ा।

"मैं, मर रहा होऊँगा, तब भी वह चला जायगा, ऐसा मैंने कभी सोचा तक न था। तुमने...तुम्हें क्या कहूँ? तुम ख़ुद ही श्रीकान्त को समझाओ। जो दो-चार साल मैं जिन्दा रहूँ, वह समय तो सुख से ही गुजरवा दो। मुझे, परमात्मा ने पुत्र दिया है, तो उसे मेरे पास रहने दो।" सेठ की वाणी करुण हो पड़ी।

श्रीकान्त से, यह न सुना गया। वह, वापस लौटकर बाहर जाने को तैयार हुआ।

"बड़े-भैया!" सविता ने श्रीकान्त को रोका। "चलो, घर में ही चलें"।

"यह सब सुनने को!"

"और क्या हो सकता है? कभी-न-कभी सुनना तो पड़ेगा ही!"

"मैं नहीं सुन सकता"।

"इसीलिये तो मैं कहती हूँ, कि आप यहीं रहिये और मुझे जाने दीजिये। मुझे मत रोकिये।"

श्रीकान्त सावधान होगया और घर में घुसा। सविता भी उसके पीछे-ही-पीछे भीतर आई। इन दोनों को देखते ही माता-पिता की बातचीत बन्द होगई। भाई-बहिन दोनों ने, पिता के चेहरे पर सूखे हुए आँसू देखे। किन्तु, इस सम्बन्ध में कुछ ज्ञात न होने दिया।

३६

प्रेम के धागे में.

माता का अग्निसंस्कार करके घर आने तक तो रामदेव का मन बधिर ही रहा। उसकी आँखों के सामने, चिता की जो लपटें उठ रही थीं, वे उसे ऐसी भयंकर जान पड़ीं, कि वह रो भी न पाया। मुहल्ले के लोगों ने उसे आश्वासन दिया, किन्तु वह आश्वासन सूखा था यह बात रामदेव भली-भाँति जानता था। कारण, कि चिता के सामने ही खड़े होकर कुछ लोग बात कर रहे थे, कि—'ख़ून पिलाकर पाले हुए लड़के ने आख़िर धोखा दे ही तो दिया'। कुछ लोग, रामदेव की तरफ कड़ी एवं तिरस्कारपूर्ण-दृष्टि से भी देखते थे। रामदेव, ये सब बातें जानता था, किन्तु उसे बुरा नहीं लगता। कारण, कि पिछले दिनों की एक के बाद एक होनेवाली घटनाओं ने, उसका चित्त अशान्त बना डाला था और इसी स्थिति में उसे माता की मृत्यु का धक्का सहन करना पड़ा था।

वापस लौटकर, वह अपनी झोंपड़े जैसी कोठरी में बैठा। बड़ी देरतक मौन बैठे रहने के पश्चात्, वह एकदम ज़ोर-से रो पड़ा। कोई भीतर न आ जाय, इस ख़याल से उसने उठकर किंवाड़ बन्द कर लिये और जिस खाट पर उसकी माता ने अन्तिम-साँसें ली थीं, उसी खाट पर औंधा होकर पड़ रहा।

वह, जी भरकर रोया। मुहल्ले के एक–दो जान–पहचानवालों ने आकर दरवाज़ा खटखटाया और रोटी खाने के लिये बुलाया, लेकिन रामदेव ने भीतर पड़े–ही–पड़े सब को नाहीं कर दी। सन्ध्या तक, वह दरवाज़ा बन्द किये भीतर ही पड़ा रहा। ख़ूब रो चुकने के बाद, उसका मन कुछ हलका पड़ा और विचार आने लगे। उसने, एक बार घर में नज़र दौड़ाई। फिर, वह उठा और सब चीज़ें टटोलने लगा। ज्यों–ज्यों वह देखता गया, त्यों–ही–त्यों माता की प्रतिमा उसके नेत्रों के सन्मुख आती गई। उसने, जब कोने में पड़ी हुई अनाज की खाली–मटकियाँ देखीं, तब वह फिर रो पड़ा।

हताश होकर, वह फिर खाट पर जा बैठा। रात होगई, अँधेरा पड़ गया, किन्तु फिर भी उसने दिया न जलाया। मानों अन्धकार ही उसकी चित्तवृत्ति के अनुकूल हो, इस तरह वह बैठा रहा। एक के बाद दूसरा घण्टा बीतता जा रहा था। सारी सृष्टि सो गई, किन्तु रामदेव की आँखों में नींद का नाम भी न था। ज्यों–ज्यों समय बीतता गया, त्यों–त्यों उसका मन नई–नई बातें सोचने के लिये स्वस्थ होता गया। भूतकालपर दृष्टि डालते ही, उसे अपना जीवन एक भयानक–नाटक–सा प्रतीत हुआ। 'जिस वस्तु के लिये, मैंने अपनी माता की मृत्यु की भी परवा न की, वह वस्तु क्या वास्तव में ऐसी महत्त्वपूर्ण है?' यह शंका उसके मन में उत्पन्न हुई। किन्तु, इसका कोई निश्चित–उत्तर वह ढूँढ ही न पाया। सब से बड़ा और सब से गम्भीर–प्रश्न तो बार–बार यही उठता था, कि–'अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और किसके पास रहूँ?' जीवन में, जिन्हें प्रेमसम्बन्ध कहा जाय, ऐसे सम्बन्ध तो आजतक केवल तीन ही हुए थे। एक माता से, सो वह तो चल दी। दूसरा प्रेमाश्रम से, किन्तु वही सम्बन्ध तो आज की व्यथा का कारण था! तीसरे सम्बन्ध में श्रीकान्त का स्मरण हुआ। रामदेव को विश्वास होगया, कि श्रीकान्त के पास पहुँचकर ही उसके चित्त को शान्ति मिलेगी। रामदेव को यह बात मालूम थी, कि

अन्धकार था। किन्तु, बाहर तो रामदेव के चित्त को शान्ति प्रदान कर सके, ऐसी पिछली–रात्रि की चाँदनी फैली हुई थी। चाँदनी में खड़े रहकर, खुले दरवाज़े में से, रामदेव ने घर के भीतर का अन्धकार और उसके बीच पड़ी हुई अस्पष्ट दीख पड़नेवाली खाट देखी। कुछ क्षण इसी तरह बीत गई। हृदय की वेदनाएँ फिर जाग्रत होने लगीं। रामदेव को जान पड़ा, कि मैं अभी फिर अपनी चेतनता खो बैठूँगा, अतः वह सिर हिलाकर तत्क्षण ही शान्त होगया। वह, घर में जाकर आँगन में पड़ी हुई अपनी सायकल बाहर निकाल लाया और उस पर चढ़कर प्रेमनगर की तरफ रवाना होगया। दो–तीन बार पीछे घूमकर देखने की इच्छा हुई, किन्तु उसके ज़ोर–ज़ोर से घूमनेवाले पैरों ने सायकल को वेग प्रदान किया और वह प्रतिक्षण दूर जाने लगा।

उसने, अपने मन में निश्चय कर डाला था, अतः अब और कुछ सोचना शेष था ही नहीं। विलियम साहब के प्रताप से जेब में पैसों की कमी न थी, अतः उसने सीधे स्टेशन पर जाकर टिकिट ख़रीद लिया। टिकिट लेकर प्लेटफॉर्म पर जाते समय, उसके मन में दो विचार उत्पन्न हुए। पहला यह, कि—'क्या श्रीकान्त को तार दे दूँ?' लेकिन फौरन ही ख़याल आया, कि इसकी कोई ज़रूरत नहीं है, मैं योंही उन्हें ढूँढ लूँगा। दुसरे विचार से कुछ भय प्रतीत हुआ। 'आश्रम का कोई आदमी देख लेगा, तो?' रामदेव, अपने–आपको छिपाता हुआ प्लेटफॉर्म में दाखिल हुआ और गाड़ी आने तक, प्लेटफॉर्म के एक सिरे पर आड़ में खड़ा रहा।

गाड़ी आने पर उसने सारा प्लेटफॉर्म देख लिया और इस सन्तोष से गाड़ी में सवार हुआ, कि यहाँ मुझे जाननेवाला कोई नहीं है।

३७

धर्ममन्थन.

"किन्तु, आप क्रिश्चियन हुए ही क्यों थे ?"

रामदेव की इच्छा न थी, फिर भी उसके सामने यह प्रश्न आ खड़ा हुआ। गाड़ी चल देने के बाद ही, उसके सामने बैठे हुए एक अधेड़-पुरुष ने उससे परिचय करना प्रारम्भ कर दिया था। रामदेव दुःख में था और कोई बात छिपाने का उसका स्वभाव न था, अतः उसने सब बातें ज्यों-की-त्यो बतलाकर अपना परिचय दिया। रामदेव ने देख लिया था, कि प्रश्न पूछनेवाले महाशय, एक सभ्य-व्यक्ति हैं। उनके प्रश्नों में ओछापन न था और न अनावश्यक कौतूहल ही। वे, केवल प्रेम से ही पूछ रहे थे। किन्तु, अनेक प्रश्नोत्तरों के पश्चात् जब "किन्तु, आप क्रिश्चियन हुए ही क्यों थे ?" यह प्रश्न सामने आया, तब रामदेव को जान पड़ा, कि शुरू से ही यदि मैं मौन रहा होता, तो अच्छा था। किन्तु, अब तो उत्तर दिये बिना काम ही नहीं चल सकता था, अतः उसने संक्षेप में कह दिया, कि—"क्या करता ? दुःख से छुटकारा पाने का और कोई उपाय ही नहीं दीख पड़ा"।

रामदेव को भय था, किन्तु पूरा विश्वास न था, कि मेरे उत्तर में से और भी अनेक प्रश्न उत्पन्न हो जायँगे। उन सज्जन ने फौरन ही पूछा—

"दुःख से छूटने का यही मतलब है न, कि आप अस्पृश्य न समझे जायँ ?"

'हाँ, यही" रामदेव ने धीमे-स्वर में उत्तर दिया।

"आप, उसके बाद अपने गाँव गये थे ?"

"हाँ"

"वहाँ के लोग तो अब भी आपको अस्पृश्य ही समझते होंगे"।

रामदेव को, अपने पहले जवाब पर खेद हुआ। फिर भी, उसने सच बोलने के ख़याल से हाँ कर दी।

"ऐसी दशा में तो यदि आप क्रिश्चियन न होते और अपनी जाति छिपाकर दूसरे किसी ग्राम में जाते, तो वहाँ के लोग आपको ज़रूर ही छूते एवं आपसे सभी व्यवहार भी करते"।

रामदेव अकुलाया। उसके जी में आया, कि किसी तरह इस चर्चा से पिण्ड छूटे। लेकिन, उन सज्जन ने फौरन ही फिर कहा—

"इस तरह तो आपकी जाति के हज़ार-दो हज़ार आदमियों में से सिर्फ एक-दो आदमी ही दुःख से छुटकारा पा सकते हैं। किन्तु, सारी जाति का क्या हो ?"

"वे भी क्रिश्चियन होजायँ" कुछ-कुछ डरते हुए रामदेव ने कहा।

"तब सभी क्रिश्चियनों को हिन्दूलोग अस्पृश्य घोषित कर देंगे"।

"लेकिन, सरकार......

"सरकार इसमें क्या कर सकती है ? इस रेलगाड़ी में तो सब को बैठने की स्वतन्त्रता है, न ? फिर भी आपने देखा होगा, कि भंगी-चमारों को कितनी परेशानी का मुक़ाबिला करना पड़ता है !"

रामदेव की समझ में बात आगई। उसके पाठशाला के अनुभवों को ताज़े होते देर न लगी।

"इसके मानी यह हैं, कि इस तरह भी अस्पृश्यता तो नहीं मिट सकती" उन सज्जन ने सारी बातचीत का सार कह सुनाया।

"किन्तु, हिन्दूधर्म में......" रामदेव ने विलियम साहब की सहायता लेने का प्रयत्न किया।

"आप, उस धर्म के सम्बन्ध में क्या कुछ जानते हैं?"

रामदेव ने साहस करके कहा—"जानने की क्या बात है? मैंने तो ख़ुद ही जो अनुभव किया है!"

"यह तो जैसा आपने हिन्दुओं से अनुभव किया है, वैसा आधी-दुनिया ने क्रिश्चियनों से अनुभव किया है।"

रामदेव, इस बात को न समझ पाया। उसने आश्चर्यपूर्वक पूछा—"क्या मतलब?"

"आज, क्रिश्चियन प्रजा भी तो अन्य लोगों पर ज़ुल्म कर ही रही है, न!"

"ज़ुल्म!" रामदेव आश्चर्य में भरकर बोला।

"आपको, क्रिश्चियन होने की प्रेरणा देनेवालों ने, क्या यह बात नहीं बतलाई, कि आज संसार पर उन्ही का राज्य है?"

"यह तो बतलाया है"।

"तो इसका क्या अर्थ है?"

"यह धर्म सत्य है, इसीलिये इसके अनुयायी संसार पर राज्य करते हैं"

"यह बात नहीं है। उस धर्म के अनुयायी इतने अधर्मी और ऐसे घातकी हैं, कि जिस तरह हिन्दूलोग निर्बल-हरिजनों पर अत्याचार करते हैं, उसी तरह वे लोग भी दूसरी निर्बल-प्रजाओं पर जुल्म करते हैं!"

रामदेव निरुत्तर होगया। उस बेचारे ने हरिपुर तथा प्रेमाश्रम के वातावरण में, इस तरह की बातें कभी सुनी ही न थीं।

"आप घबराइये मत" वे सज्जन आश्चर्य से बोले—"धर्म तो कोई भी ख़राब नहीं है। इसी तरह कोई सर्वथा-अच्छा भी नहीं है। आप, भले ही क्रिश्चियन रहें और भगवान् ईसामसीह के जीवन से प्रेरणा लेकर सारे संसार के प्रति प्रेम रक्खें। किन्तु, अब आप किसी और को क्रिश्चियन बनने की प्रेरणा न कीजियेगा और न कभी हिन्दूधर्म का विरोध ही कीजियेगा।"

रामदेव, कुछ न बोल पाया। वह, अपने तई बिलकुल बुद्धिहीन जान पड़ा। आजतक, वह ऐसा समझता था, कि मैं बहुत-अधिक पढ़ा-लिखा हूँ और मैंने काफी ज्ञान प्राप्त कर लिया है। किन्तु, इस समय उसे पता चला, कि मैं तो कुछ भी नहीं जानता। रामदेव, अपने अज्ञान पर विचार करने लगा और वे सज्जन अपने हाथ का अख़बार पढ़ने लगे।

पन्द्रह मिनिट, इसी तरह मौन छाया रहा। रामदेव, विचार करता-करता उन सज्जन की तरफ देख रहा था और कभी-कभी मन में सोचता था, कि क्या सभी शंकाएँ प्रकट करके उनका समाधान करवा लूँ? कभी यह इच्छा हो जाती और कभी मन पीछे हट जाता। एक बार, प्रबल इच्छा होने पर उसने उन सज्जन की तरफ देखा। उनके चेहरेपर सौजन्य के भाव देखकर, पूछने की हिम्मत हो-गई। वह धीरे-से बोला—

"आप, क्या कार्य करते हैं?"

"मैं, अहमदाबाद में व्यापार करता हूँ" अखबार से नज़र हटाते हुए उन्होंने उत्तर दिया।

"मैं, आपसे अपनी कुछ शंकाएँ पूछूँ?" रामदेव ने हिचकते-हिचकते कहा।

"ज़रूर पूछो"।

"यदि, भंगी-चमार क्रिश्चियन न बनें, तो उन्हें इस दुःख से छूटने के लिये क्या करना चाहिये?"

"आपको मालूम है, कि हिन्दुस्तान में इस समय एक लड़ाई चल रही है?"

"नहीं तो, कौन-सी लड़ाई?" रामदेव को कुछ भी ख़बर न थी।

"हमारे देश पर विदेशियों का राज्य है और उसी के कारण हमलोग बिलकुल कंगाल, पतित एवं निःस्वत्व होगये हैं!"

रामदेव के लिये, ये सब बातें नई थीं।

"इससे छुटकारा पाने के लिये, हमारे देशवासी वर्षों से प्रयत्नशील हैं। जिस तरह गुलामी से छूटने के लिये सारा भारतवर्ष प्रयत्नशील है, उसी तरह हिन्दूजाति के ज़ुल्मों में से छूटने के लिये आपलोगों को परिश्रम करना चाहिये।"

"किन्तु, क्या परिश्रम किया जाय?"

"हिन्दूओं के हृदय पिछानने चाहिएँ। आपको स्वतः कष्ट सहन करके उनके सामने यह बात सिद्ध कर देनी चाहिये, कि आपलोग भी उन्हीं के बराबर अधिकारी हैं!"

"मैं, इसमें कुछ भी नहीं समझा" रामदेव ने स्पष्ट-रूप से स्वीकार किया।

"तो और कुछ भी करने से पहले, आप इन सब बातों को समझिये। केवल मेरे कहने से ही आपकी समझ में ये सब नहीं आ सकतीं। इसके लिये, आपको, जहाँ-जहाँ आपकी जाति को उन्नत बनाने का कार्य होता हो, वहाँ-वहाँ जाकर समझने का प्रयत्न करना चाहिये।"

रामदेव, श्रद्धापूर्वक उन सज्जन की तरफ देखता रहा। मन में शान्ति तो न आई, लेकिन अधिक प्रश्न न पूछ सका।

"आप कहाँ उतरेंगे?" थोड़ी देर रुककर रामदेव ने कहा।

"आगे आनेवाले स्टेशन पर"।

रामदेव, कृतज्ञतापूर्ण-दृष्टि से उनकी तरफ देखने लगा। उन सज्जन के हृदय में भी मानों इस भोले-युवक प्रति सहानुभूति जाग्रत हो उठी हो, इस तरह वे इसकी तरफ ताकने लगे। स्टेशन नज़दीक आते ही उन्होंने कहा—

"यदि, कभी अहमदाबाद आओ, तो मुझसे जरूर मिलना। वहाँ, मैं आपको इस सम्बन्ध में अधिक समझा सकूँगा और बतला सकूँगा।"

रामदेव ने सिर हिलाकर अपनी सहमति प्रकट की।

"यह मेरा पता है" कहकर उन्होंने रामदेव के हाथ में एक लिफाफा दे दिया। रामदेव ने, उसे लेकर अपनी जेब में डाल लिया।

गाड़ी, स्टेशन पर आ पहुँची। वे सज्जन, 'नमस्कार' कह कर उठ खड़े हुए। रामदेव भी नमस्कार करता हुआ उठा और गाड़ी चलने तक रेल के दरवाजे में ही खड़ा रहा।

३८

"अब, यहीं रहोगे, न?"

बड़े सबेरे ही, बिछौने पर पड़ी हुई सविता के कानों में, धीरे-धीरे बातचीत की आवाज सुनाई देने लगी। वह, जाग पड़ी। थोड़ी देर तो कुछ समझ में न आया, किन्तु फिर आवाज़ स्पष्ट सुन पड़ने लगी। सविता ने, पड़े-ही-पड़े अपने कान उधर लगा दिये।

"अगर आप मेरी बात मानें तो अब एक शब्द भी न बोलियेगा। ये लोग, धर्ममार्ग पर जा रहे हैं, उसमें अन्तराय डालकर, हमलोगों को अधिक पाप में न पड़ना चाहिये।" उमादेवी कह रही थीं।

"किन्तु, मेरी सेवा करना भी उसका कोई धर्म है, या नहीं?" हरिदास सेठ बोले।

"हमें, अपने-आपको धोखा देने की क्या जरूरत है? आपको, श्रीकान्त की सेवा की क्या आवश्यकता है? क्या मैं नहीं हूँ? डॉक्टर और नौकर नहीं हैं?"

"किन्तु, श्रीकान्त के बिना इन सब का होना बेकार है"।

"यह बात तो आपका मोह कहला रहा है। यदि सेवा की ही जरूरत हो, तो हमलोगों को किस चीज की कमी है?"

"किन्तु, श्रीकान्त को यहाँ रहने में क्या आपत्ति है? भले ही सविता......

"एक ही बात बार-बार कहने से क्या लाभ है ? उसके मन की मशीन ही बदल गई है, इतने में सब बातें समझ लीजिये।"

"तब क्या करना चाहिये ?" निराशापूर्ण-वाणी में सेठ बोले।

"श्रीकान्त के बिना यदि न रहा जाता हो, तो......"

"तो क्या ? हमलोग भी उसके साथ ही चले जायँ, यही न?" हरिदास सेठ ज़रा मोटे-स्वर में बोले।

"हॉ, और हमलोग भी अपने-अपने आत्मा का कल्याण करें"।

"तुम्हें, इसमें अपने आत्मा का कल्याण जान पड़ता है ?"

सामने से कोई उत्तर न मिला।

"तो तुम भी जाओ" हरिदास सेठ बोले "तुम अपनी आत्मा का कल्याण करने का मौक़ा क्यों चूकती हो ?"

"मैं, यह सब समझती हूँ"।

"तो फिर श्रीकान्त की तरह तुम भी ज़िद्दी क्यों नहीं बन जातीं ?"

"मेरा हृदय कुचला हुआ है, इसीलिये"।

सविता ने, अपने कान ख़ूब सावधानी से लगा दिये, किन्तु इसके बाद कोई बातचीत ही नहीं हुई, तो वह क्या सुन लेती ? उसे जान पड़ा, कि अब वहाँ मौन छा गया है। उसके मस्तिष्क में, क्षणभर के लिये एक विचार उत्पन्न हुआ, अतः वह खड़ी होगई। कुछ देर ठिठकी और फिर गम्भीर बन गई, किन्तु तत्क्षण ही उसने पैर उठाया। धीरे-से दरवाज़ा खोलकर, वह माता-पिता के पास आ खड़ी हुई। उसे देखकर, हरिदास सेठ और उमादेवी, दोनों चौंक पड़े।

"क्यों, बहिन !" उमादेवी ने तुरन्त पूछा।

सविता, बिना कुछ बोले खड़ी रही। हरिदास सेठ ने उसकी तरफ देखा, किन्तु मानों अधिक देर न देख सकते हों, इस तरह उन्होंने अपनी दृष्टि खींच ली।

"बापूजी !" सविता बोली। सेठ, सहसा सविता की तरफ मुख़ातिब होगये। उमादेवी की आँखे, कुछ विह्वल हो पड़ीं।

"मै, अकेली ही जाऊँगी, बड़े-भैया यहीं रहेंगे"।

सेठ, कुछ न समझ पाये। यद्यपि, यह बात उनकी इच्छा के अनुकूल ही थी, किन्तु फिर भी वे घबरा गये।

"आप, बड़े-भैया से कुछ कहियेगा नहीं, मै रात को उनसे बिना कुछ कहे ही चली जाऊँगी"।

"नहीं-नहीं—सविता !" सेठ बोले "तू भी यहीं रह। मेरे मन में कोई बात नहीं है।"

"बापूजी ! अब मै यहाँ नहीं रह सकती, मेरा जीवन बदल गया है।

"किन्तु, मैं अपनी ख़ुशी से......"।

"यह तो मै भी जानती हूँ, लेकिन मुझे तो अब यहाँ चैन ही नहीं पड़ सकता। मेरी तो शान्ति ही अब वहाँ है।"

उमादेवी को कुछ विचार आया, अतः वे उठ खड़ी हुई। उन्हें उठते देखकर हरिदास सेठ बोले—"तुम क्यों उठ पड़ी ? बैठो...और सविता ! तू भी बैठ।......श्रीकान्त !" सेठ ने ज़ोर से पुकारा। सविता, आश्चर्य में पड़ गई। उसने देखा, कि अब वह बात नहीं कर सकती। सेठ की आवाज़ सुनकर, श्रीकान्त बिछौने से उठा और तत्क्षण ही वहाँ आया। सविता को माता-पिता के पास खड़ी देखकर, उसे आश्चर्य हुआ। वह, कुछ समझ न पाया और बारी-बारी से सब की तरफ देखने लगा।

"तुम, अब यही रहोगे, न ?" हरिदास सेठ बोले। परेशान श्रीकान्त कोई उत्तर दे, इससे पूर्व ही सविता बोल उठी—

"बापूजी, इस बातचीत की क्या जरूरत है ? मैं, आपसे कह तो रही हूँ, कि बड़े-भैया यहीं रहेंगे !"

श्रीकान्त, आश्चर्यपूर्वक सविता की तरफ देखता रहा।

"सच कहती हूँ—बड़े-भैया ! आप यहीं रहिये। मै, आज रात को जा रही हूँ।"

"इस तरह नहीं जा सकती—सविता !" अबतक मौन बैठी हुई उमादेवी बोली। सेठ उन्हीं की तरफ ताकने लगे। "अब, इन शोक के दिनों का अन्त आ जाना चाहिये"। यह कहकर उमादेवी, श्रीकान्त तथा सेठ की तरफ देखने लगी।

'बापूजी ! मै, यहाँ किसी तरह रह ही नहीं सकता" श्रीकान्त ने दुःखपूर्वक कहा।

"तुम्हे, रहना भी न चाहिये" उमादेवी बोली "संसार में, धर्म सब से महान् है"।

सेठ, आँखें फाड़कर देखने लगे।

"लेकिन, मेरे बापूजी......" सविता, कुछ बोलना चाहती थी।

"इनके पास मै बैठी हूँ, न !" उमादेवी बोलीं।

श्रीकान्त, सविता और सेठ, उमादेवी के चमकते हुए मुखमण्डल की तरफ देखते रहे। किसी की समझ में न आया, कि अब क्या बोलना चाहिये।

●

३९

नये-स्वजन.

मौन असह्य होते ही, उमादेवी उठीं और उन्होंने सविता तथा श्रीकान्त को भी उठने को कहा। अब, कमरे में हरिदास सेठ अकेले ही रह गये। उन्हें जान पड़ने लगा, कि अब मेरे मन की सभी शक्तियाँ हार गई हैं। परेशानी बढ़ने पर, उन्होंने सिर से पैर तक चादर ओढ़ ली और पड़ रहे। कमरे से बाहर निकलकर उमादेवी एक तरफ खड़ी होगईं और दुःखपूर्ण-आकृति से यह सब देखती रहीं। जब सेठ ने सिर से कपड़ा ओढ़ लिया, तब वे वहाँ से हटकर कमरे में चली गईं।

श्रीकान्त और सविता, दोनों वहाँ से जाकर बातें करने लगे। उन्हें, यह आशा होगई, कि आज वे लोग जा सकेंगे। उनकी बातों में यह आशा थी, किन्तु उनके हृदय में, पिता को होनेवाले दुःख की प्रतिध्वनि भी मौजूद थी। सविता के मन पर, सब से अधिक प्रभाव तो उमादेवी के शब्दों और उनके जीवन का पड़ रहा था। वह, भीतर-ही-भीतर आश्चर्यचकित थीं। इसी समय श्रीकान्त बोला—

"सब से अधिक करुण-स्थिति तो माताजी की है"।

"हाँ, सब से अधिक तो वे ही सहन कर रही हैं" सविता ने कहा। "यदि, माताजी की सहायता न मिलती, तो मुझ में हृदयबल आ ही नहीं सकता था।"

मैंने भी माताजी के ही संस्कारों का पान किया है, न !"

"सविता !" श्रीकान्त ने एक सत्य-बात कही—"तूने, विशेषतः माताजी के ही संस्कारों का पान किया है, अतः तू सत्य-मार्ग पर दृढ़ रह सकती है। किन्तु, मेरे शरीर में तो पिताजी की निर्बलता के संस्कार भी मौजूद हैं, न !"

"जो है, सो ठीक है" सविता को अपनी प्रशंसा अच्छी न लगी, अतः वह बोली—"क्या माताजी सारी जिन्दगी यों ही रहेंगी ?"

"और क्या हो सकता है ?" श्रीकान्त बोला।

सविता भी यही प्रश्न पूछ रही थी, अतः दोनों भाई-बहिन थोड़ी देर मौन धारण किये बैठे रहे।

"हमलोग आज रात को जरूर चलेंगे ?" सविता ने पूछा।

"हाँ, जायेंगे"

"मुझे, वहाँ की चिन्ता होती रहती है। बेचारी मोतीबहिन घबराती होगी और मधुसूदनभाई को भी सूना-सूना लगता होगा।"

"तूने, वहाँ बहुत-से प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर लिये हैं। है, न ?"

"बहुत तो नहीं, लेकिन एक छोटा-सा कुटुम्ब जरूर ही बन गया है। देवाभाई तो बिलकुल बदल ही गये हैं। वे, कभी एक अक्षर भी नहीं बोलते और जो कुछ होता है, उसे चुपचाप देखते रहते हैं।"

"मधुसूदन से तुझे ख़ूब सहायता मिली है। क्यों ?"

"हाँ, उन्हीं ने मुझे इस नये-जीवन की दीक्षा दी है, ऐसा समझना चाहिये"।

"बड़े तेजस्वी-युवक हैं" श्रीकान्त बोला। इसी समय, दरवाजे में किसी के पैरों की आहट पाकर दोनों का ध्यान उस तरफ आकर्षित हुआ। उमादेवी, हाथ में एक लिफाफा लिये आ रही थीं। 'किसका पत्र होगा ?' भाई-बहिन दोनों को एक साथ विचार आया। उमादेवी,

लिफाफा देकर फौरन ही वापस लौट गईं। लिफाफे पर, सविता का पता था। श्रीकान्त की समझ में न आया, कि यह किसका पत्र होगा। सविता, लिफाफा खोलती हुई बोली—"मधुसूदनभाई का जान पड़ता है"। और था भी ऐसा ही। लिफाफे में से एक बड़ा-सा पत्र निकला। भाई-बहिन, दोनों साथ ही उसे पढ़ने लगे।

बहिन सविता,

यहाँ से आपको गये बहुत दिन बीत गये। मैं, प्रतिदिन आपके पत्र अथवा स्वतः आपके लौटने की प्रतीक्षा करता था। मैंने सोचा था, कि आपका पत्र आने के बाद ही मैं पत्र लिखूँगा। किन्तु, दो दिन हुए, श्रीकान्त के मित्र रामदेव यहाँ आये हैं। उन्हीं के आग्रह से विवश होकर मैं यह पत्र लिखने बैठा हूँ। पहले तो यह सोचा था, कि केवल रामदेव के आने के समाचार लिखकर ही पत्र समाप्त कर दूँगा। किन्तु, पत्र लिखना प्रारम्भ करने के पश्चात्, मन हाथ से जाता रहा। मुझे भय है, कि जो कुछ मेरे मन में है, वह सब पत्र पर अंकित होकर रहेगा।

आपके लौटने में इतना विलम्ब क्यों हुआ, इस बात की तो मैं कल्पना कर सकता हूँ। कभी-कभी, मेरे मन में श्रीकान्तभाई के सम्बन्ध में शंका आ जाती है, कि वे माता-पिता की दुःखमय-स्थिति देखकर कहीं फिर शिथिल न पड़ गये हों। किन्तु, उनके साथ आप भी शिथिल हो जायँ यह बात तो मैं कभी स्वप्न में भी नहीं सोच सकता। कारण, कि यदि आपके सम्बन्ध में मेरा अध्ययन सत्य हो, तो आपके जीवन का सारतत्त्व और कहीं नहीं, बल्कि यहीं पड़ा है। यहाँ के, एक हजार के लगभग जीव, आपको अपनी भाग्यदेवी समझते हैं और आप भी इन सब को अपने स्वजन जैसे मानती हैं, ऐसा मेरे हृदय में दृढ़तम-विश्वास है। उन एक हजार के अतिरिक्त, उन सब की बराबरी कर सके, ऐसी एक भावना तो आप यहाँ छोड़ ही गई हैं,

जो आपको रात-दिन याद आती होगी। आपको मालूम है, कि मोती को, इस जीवन में, आपके अतिरिक्त और किसी का सहारा नहीं है। आपने, यदि उसे पंख न दिये होते, तो वह बेचारी उन छोटे-छोटे बच्चों को अनाथ छोड़कर, इस संसार से शायद जमादार का अनुसरण करके चली जाती। इन सब के अन्त में, मैं आपको अपनी भी याद दिलाता हूँ। मै, आपके परिचय में बहुत दिनों से आया हूँ, लेकिन आजतक मैने कभी अपना हृदय आपके सामने खोलकर नहीं धरा। हमलोगों का सम्बन्ध ऐसा बन गया, कि मानों मै आपका मार्गप्रदर्शक होऊँ। कुछ दिन बीतने के बाद, मैंने समझ पाया, कि आपको मार्ग दिखलाने की किंचित् भी योग्यता मुझ में नहीं है। किन्तु, यह योग्यता और अयोग्यता का विचार तो मुझे आपके चले जाने के पश्चात् आया है।

एक बात की सूचना मै आपको दे दूँ। यह बात, मै आपको अभी नहीं मालूम होने देना चाहता था और यहाँ आने पर आपको आश्चर्य में डालना चाहता था। किन्तु, आजतक आपका कोई पत्र नहीं आया, अतः मुझे भय है, कि कहीं आपके लौटने में अधिक विलम्ब तो न होजाय! कहीं, आपको फिर भावनाओं के समुद्र तैरने की आवश्यकता तो न आ पड़े! इसीलिये यह बात आपको लिख रहा हूँ।

आपलोग गये, उसके दूसरे ही दिन से मैं हरिजनवास में रहने आगया हूँ। क्यों आगया हूँ, यह बतलाने की भी क्या जरूरत है? बहुत दिनों से हृदय में जो उथलपुथल मची थी, उसे श्रीकान्त के आ जाने से बल मिला, उसी का यह परिणाम है। भाई रामदेव, मुझे हरिजनवास में देखकर, आश्चर्यचकित होगये हैं। वे बेचारे, अत्यन्त-भोले और निष्पाप-मनुष्य हैं। वे, स्वतः अपने दुःख से बहुत दुःखी हैं, किन्तु अभीतक उन्हें सत्य-मार्ग नहीं सूझ पड़ा है। पिछले दो दिनों में, मेरी उनके साथ जो बातचीत हुई है, उससे मै, इस निर्णय पर पहुँचा हूँ, कि उनकी यहीं जरूरत थी। मुझे आशा है, कि हमलोगों के कार्य में तो वे सहायक होंगे ही, किन्तु इसके साथ-ही-साथ

उनके अस्थिर तथा उद्विग्न-चित्त को भी यहाँ शान्ति मिलेगी। श्रीकान्त-भाई को वे ख़ूब याद करते रहते हैं। श्रीकान्तभाई ने, उन पर कौन-सा जादू कर दिया है, यह बात मैं बिलकुल नहीं समझ पाया। किन्तु, उनके मन से तो श्रीकान्तभाई की अपेक्षा दुनिया में और कुछ बड़ा ही नहीं जान पड़ता। मैंने, उनसे अलग पत्र लिखने को कहा। किन्तु, वे तो इसी पत्र में लिखवाते हैं, कि यदि श्रीकान्तभाई यहाँ न आते हों, तो मैं स्वयं वहाँ आ जाऊँ। अब, उनके जीवन में, श्रीकान्तभाई के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह गया है। उनकी बूढ़ी माता, उनके धर्मपरिवर्तन के आघात से दुःखी होकर अन्त में मर गई है। जान पड़ता है, कि माता की मृत्यु का उनके जीवन पर ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा है। इस समय, उनमें उस मज़हबी पागलपन का अंश भी शेष नहीं रह गया है, जिस का वर्णन श्रीकान्तभाई ने उनका ज़िक्र करते समय किया था। वे, अब भी अपने-आपको क्रिश्चियन तो कहते ही हैं, किन्तु उस पर गर्व करनेवाली मनोवृत्ति का आज उनमें अभाव है। अस्तु।

आप तथा श्रीकान्तभाई वापस कब लौट रहे हैं, यह लिखिये। यहाँ, हम सबलोग आपका रास्ता देखते हैं। मुहल्ले के आदमी, प्रतिदिन आपके समाचार पूछते हैं और नगर के सभी युवक आपलोगों के हाल जानने को अत्यन्त-उत्सुक रहते हैं। आप दोनों आ जावेंगे, तब तो हम सब का एक बड़ा-सा संघ बन जायगा।

कब आइयेगा? माताजी तथा पिताजी को मेरा प्रणाम कहियेगा।

आपका बन्धु-
मधुसूदन देसाई.

पत्र पढ़ लेने में, ज़रा-सी देर लगी। पत्र में लिखे समाचारों को पढ़कर, श्रीकान्त तथा सविता, दोनों के हृदय हिल उठे। रामदेव की माता की मृत्यु के समाचार पढ़कर श्रीकान्त को दुःख हुआ, किन्तु

रामदेव के हृदय का प्रतिबिम्ब देखकर उसे गहरा-सन्तोष भी मिला। सविता, मधुसूदन की भावनाएँ पढ़कर, थोड़ी देर के लिये तो ऐसी तन्मय होगई, कि उसे और कोई भान ही न रहा। भाई-बहिन दोनों ने एक साथ ही दो नये-मित्रों के प्रेम के समाचार पढ़े और थोड़ी देर उन्हीं के विचारों में मौन धारण किये बैठे रहे।

"हमलोग, अपने पहुँचने के समय की सूचना उन्हें दे क्यों न दें ?" सविता विचार करती-करती हर्ष में भरकर बोली।

"माताजी से पूछ लें" श्रीकान्त ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया। सविता को, उसकी बात सत्य जान पड़ी। इसी समय, एक और विचार आगया, अतः उसने श्रीकान्त से पूछा—

"हमलोग जा रहे हैं, इस बात का माताजी को भी दुःख तो होता ही होगा ?"

"वह तो न जाने पर भी होगा। उनकी स्थिति अत्यन्त-नाज़ुक है।"

"बापूजी, अब क्या वहाँ आवेंगे ही नहीं ?"

"यह तो कैसे कहा जा सकता है ? किन्तु, जबतक इसी प्रकार की मानसिक-स्थिति रहेगी, तबतक तो किसी तरह आ ही नहीं सकते।"

"बापूजी, लोगों से बहुत डरते हैं। है, न यही बात ?"

"हाँ"

"ऐसा क्यों है ?" बालक बोल रहा हो, इस तरह सविता ने पूछा।

'भगवान् जाने !" श्रीकान्त ने बात ख़तम की। "अब, हमलोग माताजी से पूछने चलें ?"

सविता तो तैयार ही थी। दोनों, विचार करते-करते उमादेवी के पास गये। वे, अभी पूजा की कोठरी में थीं, अतः भाई-बहिन दोनों उनकी प्रतीक्षा करते हुए बाहर बैठे रहे।

४०

आशीर्वाद एवं प्रयाण.

"मेरा तो आशीर्वाद ही है"।

माताजी के सामने बात पेश करते ही उन्होंने कहा—"मैं तो प्रयत्न करती हूँ, कि तुम्हारे बापूजी भी तुम्हें आशीर्वाद दें और तुम्हारे हृदय की समस्त वेदनाएँ दूर करें"।

"यह तो नहीं हो सकता" श्रीकान्त बोला।

"होगा, तू ज़रा देख तो सही। अब, उन्हें विश्वास होने लगा है, कि तुमलोगों को रोकने का प्रयत्न मिथ्या है।"

"लेकिन, वे आशीर्वाद तो किसी तरह भी न देंगे"।

"तू, माता-पिता के हृदय अभी नहीं जानता है। उन्हें, यदि पूर्णरूपेण यह विश्वास होजाय, कि तू किसी भी तरह अपना मार्ग न छोड़ेगा, तो वे ज़रूर ही आशीर्वाद दे देंगे।"

"तो क्या उन्हें अभीतक विश्वास नहीं है!" श्रीकान्त आश्चर्य में भरकर बोला।

"हाँ, उन्हें अभी आशा है, कि उनका दुःख देखकर तू पिघलेगा। तू, यदि उनके सामने बार-बार ढीला न पड़ जाता, तो उन्होंने आज से बहुत-दिन पहले ही तुझे आशीर्वाद दे दिया होता।"

श्रीकान्त समझ गया। पिता की निर्बलता में, स्वतः उसका प्रति-बिम्ब पड़ा है, यह विश्वास होते ही, उसे थोड़ी लज्जा बोध हुई।

"लेकिन, माँ !" सविता बोली "ऐसा न हो, कि बापूजी की भावनाओं का हमलोग ध्यान न रक्खे, तो अन्त में उन्हें रोष आ जाय"।

"नहीं-नहीं, तुमलोग उनका स्वभाव ही नहीं पहचानते। वे, क्रोध तो कर ही नहीं सकते। यदि, उनमें यह दोष होता, तो मैं उनके पास रहने ही न पाती। उनका अन्तस्तल द्रवित हो गया है। वे, दुःख नहीं सहन कर पाते।"

"लेकिन माताजी, आप यह कबतक सहन करती रहेंगी?"

"जबतक सहन होगा, तबतक" उमादेवी की वाणी करुण हो पड़ी। भाई-बहिन, दोनों पर इसका असर पड़ा।

"अब, क्या बापूजी यहाँ कभी न आवेंगे?"

"आवेंगे। अभी नहीं, तो सालभर या दो बरस बाद।"

"यह घाव सूख जायगा, तब?"

"हाँ और जब तुमलोगों के बिना जीवन नीरस जान पड़ेगा, तब!"

"माँ" सविता विह्वल होकर बोली—"कोई ऐसा भी दिन आवेगा, जब हम सबलोग साथ-साथ रह सकेंगे?"

"भगवान् जाने, बेटा!" उमादेवी का हृदय भी आर्द्र हो उठा।

"माँ!" श्रीकान्त बोला "आप, सब से अधिक सहन कर रही हैं"।

"नहीं, बेटा! कौन अधिक सहन करता है, यह बात तो केवल परमात्मा ही जान सकता है। तेरे पिता की पीड़ा क्या कुछ कम है?"

"किन्तु, उन्हें तो केवल एक ही तरफ का दुःख है"।

"नहीं–नहीं, तू यह बात नहीं जानता। उन्हें, सभी तरफ का दुःख है। प्राणों से अधिक प्यारे बच्चे उन्हें छोड़कर जा रहे हैं। सारे जीवन क़ायम रक्खी हुई उनकी प्रतिष्ठा, आज क्षीण होती जा रही है। यही नहीं, प्रत्येक क्षण उनके साथ रहनेवाली मैं भी, अब उनके हृदय के आदेशों का पूर्णरूपेण पालन नहीं कर पाती। सब से बड़ा दुःख तो उन्हीं को प्राप्त हो रहा है–बेटा!"

"किन्तु, ऐसा कबतक चलेगा?"

"यह बात तो परमात्मा जाने। प्रत्येक युग में, पुरानी और नई पीढ़ियों का मन्थन तो चलता ही रहता है! तुमलोग, यदि भावनावश होकर हमलोगों की तरह ढीले न पड़ो, तो हम भी गिरते–पड़ते किसी तरह तुम्हारे पीछे घिसटते ही आवेंगे।"

"हमलोग जा रहे हैं, इसका क्या आपको कोई दुःख नहीं होता?"

"दुःख? मैं तो कुछ समझ ही नहीं पाती। तुमलोगों के बिना, यह घर खँडहर की तरह भयंकर जान पड़ता है। किन्तु, फिर हृदय की गहराई में एक सन्तोष उत्पन्न होता है। यह विचार आता है, कि मेरे बालक सत्यप्रेमी तथा पराक्रमी निकले।"

"मेरे पिताजी को भी ऐसा......" सविता कहना चाहती थी, कि इसी समय हरिदास सेठ ने उमादेवी को पुकारा, अतः वे उठ खड़ी हुई। बात, अधूरी ही रह गई। किन्तु, सविता और श्रीकान्त को जिस चीज़ की ज़रूरत थी, वह मिल चुकी थी। भाई-बहिन दोनों वहाँ से उठकर अपने कमरे में आये। दोनों के चेहरों पर, हर्ष का उल्लास तो न था, किन्तु नये–जीवन का गाम्भीर्य अवश्य दीख पड़ता था।

"बड़े–भैया! हमलोगों में जो कुछ तेज हो सकता है, वह इन माताजी का दिया हुआ ही है" सविता ने गम्भीर–स्वर में कहा।

"हाँ" श्रीकान्त ने संक्षिप्त–उत्तर में ही यह बात स्वीकार कर ली।

दोनों, रात को जाने की तैयारी करने लगे। मधुसूदन को, तार द्वारा अपने आने का समय सूचित कर दिया। एक इच्छा, उन दोनों के मन में निरन्तर पैदा हो रही थी, कि यदि पिताजी भी प्रसन्नतापूर्वक हमलोगों को बिदा कर दें, तो कैसा अच्छा हो! किन्तु, दोनों यह बात जानते थे, कि ऐसा होना लगभग असम्भव ही है। दोपहर के बाद, उमादेवी, हरिदास सेठ के पास ही बैठी-बैठी बातें कर रही थीं, यह बात श्रीकान्त तथा सविता को मालूम थी। वे दोनों जानते थे, कि रात को हमलोग पिताजी का आशीर्वाद प्राप्त करके जा सकें, इसके लिये माताजी अपनी सारी शक्तिभर प्रयत्नशील हैं।

आखिर रात आ पहुँची। गाड़ी का समय भी नजदीक आगया। श्रीकान्त और सविता ने भोजन किया। माताजी, वहीं बैठी रहीं। इन लोगों के घर से जाने का समय हुआ, तब वे आई। उनके चेहरे पर आँसुओं के चिह्न मौजूद थे, किन्तु उसके साथ ही मुस्कराहट भी।

"तैयार होगये?" उन्होंने पूछा।

दोनों ने सिर हिलाकर हाँ की और अशीर्वाद माँगा। उमादेवी ने, क्रमशः दोनों के सिर पर हाथ फेरा और कहा—"सत्य का आचरण करना और पराक्रमी बनना"।

माता के आदेशानुसार, दोनों भाई-बहिन बापूजी के पास गये। बापूजी, पलँग पर ही पड़े थे। चेहरे पर साधारण-शान्ति का भाव लाकर, उन्होंने सविता तथा श्रीकान्त की तरफ देखा। भाई-बहिन, धीरे-धीरे चलते हुए पलँग के पास पहुँचे और दोनों ने पिता के चरणों में सिर झुकाये। हरिदास सेठ के काँपते हुए हाथ उठे, किन्तु बालको के मस्तक तक न पहुँच सके। हाथ, बीच ही में रुक गये और उनके नेत्रों से आँसुओं की बूंदें टपकने लगी। श्रीकान्त और सविता, दोनों ने अपने सिर धीरे-से उठाये और चलना प्रारम्भ कर दिया।

"श्रीकान्त ! सविता !" बिछौने पर से, काँपती हुई आवाज़ सुन पड़ी। दोनों, वापस लौटे। "यहाँ आओ" हरिदास सेठ ने अपने हाथ लम्बे कर दिये। दोनों झुक गये। उद्विग्न-पिता ने, उन दोनों के सिर अपनी छाती के पास लिये, उन्हें दाबा, चूमा और आँसुओं से भिजोया। श्रीकान्त और सविता, थोड़ी देरतक इसी स्थिति में रहकर, पिता के निर्बल-हृदय में होनेवाली धड़कन श्रवण करते रहे। उन लोगों के सिर पर, एक काँपता हुआ हाथ फिर रहा था। अन्त में, उन दोनों ने अपने मस्तक ऊँचे किये और अश्रुपूर्ण-नेत्रों से फिर पिता को नमस्कार करके बिदा हुए।

धीरे-धीरे चलते हुए दोनों बाहर निकले और रात्रि के हलके-अन्धकार में, स्टेशन की तरफ़ चल दिये। उमादेवी, घर के चबूतरे पर बड़ी देर तक खड़ी-खड़ी अपने प्यारे-बच्चों को देखती रहीं। वे, बाहर खड़ी थीं, उसी समय भीतर से रोने की हिचकियाँ सुन पड़ीं। वे वापस लौटी और जिनके साथ जीवन जुड़ा हुआ था, उन वृद्ध पुरुष के शरीर पर हाथ फेरती हुई पलँग के किनारे बैठ गई।

* * *

स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर और किसी दिन नहीं, लेकिन आज रंग-बिरंगे कपड़ेवाले स्त्री-पुरुषों की भीड़ लगी थी। श्रीकान्त तथा सविता के आगमन का समाचार, मधुसूदन ने सारे हरिजनवास में फैला दिया था। इसीलिये, आज स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर एक हज़ार से अधिक स्त्री, बच्चे एवं पुरुष इकट्ठे हो रहे थे। यह आश्चर्यजनक-दृश्य देखने के लिये, सवर्णों की भी एक ख़ासी भीड़ स्टेशन पर जमा होगई थी। श्रीकान्त तथा सविता को, इस बात का किंचित् भी पता न था, कि हमारा ऐसा भव्य-स्वागत होनेवाला है। उन्होंने तो यह सोचा था, कि मधुसूदन तथा रामदेव ही स्टेशन पर आये होंगे। गाड़ी, जब प्लेटफॉर्म के पास आई, तब भाई-बहिन दोनों ने खिड़की से बाहर

झाँका। स्टेशन पर, उन्हें मनुष्यों की ठसाठस भीड़ दीख पड़ी। उनकी समझ में यह बिलकुल न आया, कि यह ज़बरदस्त-भीड़ यहाँ क्यों इकट्ठी हो रही है! 'आख़िर, ये सब किसका स्वागत करने आये हैं?' इस जिज्ञासा का समाधान होने में, एक मिनिट की भी देर न लगी। गाड़ी, ज्योंही प्लेटफॉर्म पर आकर खड़ी हुई, कि त्योंही मोती, रामदेव और मधुसूदन, तीनों भीड़ चीरते हुए इनके डिब्बे के पास आ पहुँचे। जिधर ये लोग बढ़े थे, उधर ही हरिजनों के झुण्ड का घूम पड़ना स्वाभाविक ही था। डिब्बे के आसपास दूर तक तिल धरने को जगह न रही। भाई-बहिन, दोनों ने, खिड़की में खड़े-ही-खड़े, भक्तिपूर्वक अपनी तरफ ताकते हुए बालकों, स्त्रियों, युवकों और वृद्धों को देखा। उनके नेत्रों में जल भर आया। कौन जाने, किस कारण! हर्ष के आधिक्य से, या करुणा के बाहुल्य से, यह बतलाना सरल न था।

अनूठा—मौलिक उपन्यास

घर की राह

ले. इन्द्र वसावड़ा

प्रेमचंदजीः—इस रचना में जो मौलिकता, चरित्रों के मर्म तक पहुँचने की जो शक्ति, कल्पना का जो विस्तार, वर्णन-शैली का जो प्रवाह है, वह कह रहा है कि यहाँ ऊँचे दरजे की प्रतिभा है, और वह चुप बैठनेवाली नहीं। यह उपन्यास इस बात का प्रमाण है कि हमारे साहित्य का भविष्य कितना आशापूर्ण है। चरित्रों का इतना सजीव दर्शन और हमारी दुर्बलताओं पर इतना कटोर संयम और भिन्न-भिन्न परिस्थितियों की इतनी गहरी अनुभूति, उपन्यास-कला के ये सभी अंग इस तरह मिल गये हैं कि यह उपन्यास जीवन का जीता जागता चित्र बन गया है।

मेघाणीजीः—सोमवार का प्रभात पड़ता है और मंगलवार की संध्या की छाया मन पर गाढ़ बनती है। क्योंकि बुधवार की 'कलम किताब' में पुस्तकों का अवलोकन लेना है। सोमवार के बारह बजते हैं—और मेरे भी बजते हैं—इतनी दाझ चढ़ती है-इन तमाम पुस्तकों का ढेर सम्पादक के सिर पटक आऊँ? किन्तु इस गर्म मनोदशा पर

गत एक घंटे ने शीतलता छिड़की है। अकस्मात् से इस कचरे के ढेर में से एक सांत्वन की वस्तु प्राप्त हुई है।...बस इस एक ही पुस्तक ने आज का सोमवार मीठा किया है।

जनार्दनराय नागरः—इस उपन्यास का प्रत्येक पात्र वसावड़ाजी के परिचित संसार में रहनेवाली जीती जागती मूर्तियों की वर्षो संसर्गित प्रेरणाओं पर रचा गया है।...वसावड़ाजी की यह प्रवृत्ति बहुत कुछ 'हार्डियन' सी मालूम होती है। अपने पात्रों को इतना सजीव और मूर्तिमान करने का सारा श्रेय लेखक की इस 'जेन अस्टिन' की-सी लालसा को है...

रानी जीजी लेखक के दिल का सारा सौंदर्य, सारी कोमलता, सारी करुणा और स्नेह की पूर्ति है। उसने हमें रुला दिया...रानी जीजी हमारी राय में वसावड़ाजी की कोमल उदात्त समवेदना तथा उदार मानवता की प्रतिनिधि है-अतः कलम की भी। 'पानी पीकर आँचल से मुँह पूँछना' रानी जीजी के सारे अन्तर बाहर की कल्पना के लिये बस है।